मैं आपको बता सकता
हूँ कि डॉ. स्मिता वरडे

तूज सगूण म्हणू की

डॉ. स्मिता वराडे

मैं आपको सब कुछ बता सकता हूँ।

सर्व हक्क @ लेखकाधीन

प्रथम संस्करण,

1.5 20 200

स्मिता वराडे

smitarvarade@gmail.com

इस पुस्तक का कवर लेखिका ने स्वयं डिजाइन किया है।

प्रस्तावना

मैंने दो कविता संग्रह प्रकाशित किए हैं, “मनातले मनकड़े”। मैंने दो पुस्तकें लिखी हैं, “स्वाचि संपर्क:- प्रकाशाचि संपर्क” भाग 1 और भाग 2। लेखन जारी है। इस पुस्तक में मैंने वही लिखा है जो मैंने समझा। मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि मैं लिखूंगा, किताबें लिखूंगा। लेकिन मैंने यह समझा कि थोड़ा पढ़ना और जितना हो सके लिखना जीवन का हिस्सा बन गया। मैं उन सभी लेखकों से नहीं मिला जिन्हें मैंने पढ़ा। तब मुझे समझ आया कि विचार आते रहते हैं, भले ही मैं प्रसिद्ध लोगों से न मिलूं। प्रसिद्ध लेखक बनना मेरा सपना नहीं है। लेकिन मैंने जो कुछ भी लिखा है, मुझे आशा है कि दूसरों को कुछ पल आनंद मिलेगा, बस इतना ही। यही है स्वयं को निर्गुण के रूप में देखना। यह कोई आध्यात्मिक पुस्तक नहीं है। लेकिन इसका नाम “तुझ सगुण मुहों की निर्गुण” रखा गया है। समर्थ रामदास स्वामी कहते हैं, जो कुछ भी कहना हो, सबको बताओ, उन्हें ज्ञान दो और फिर उसे सब पर छोड़ दो। जो बड़े-बुजुर्ग और अनुभवहीन लोग कहते हैं, वह सत्य होता है। मैं यह नहीं कह सकता कि मेरा लेखन ज्ञान देगा या नहीं। लेकिन इससे निश्चित रूप से अच्छा लगेगा। लिखने के पीछे प्रेरणा क्या है?

इसलिए, हमें जो समझ आता है और जो सुझाव देते हैं, उसे लिख लेना चाहिए। गौतम बुद्ध ने नियमों के महत्व के बारे में बताया है। कई अनुभवी लोग/जीवन को समझने वाले लोग नियमों के महत्व को बताते हैं, कुछ लोग उनका पालन भी करते हैं। एक दिन, 4-5 विषय मन में आए, भले ही वे समझ में आ गए हों, उन्होंने धीरे-धीरे लिखने का नियम बना लिया। मैंने अपनी आत्म-पहचान के भाग 1 और 2 इसी तरह पूरे किए। मैंने इसे अभी तक पूरी तरह से नहीं जिया है। इसका एक छोटा सा हिस्सा मराठी लेखन, कुछ वर्षों तक इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ाना, कभी-कभी गाना है। यही मेरी पहचान है। कुछ लोग बेहद आज़ाद जीवन जीकर बहुत ही अद्‌भुत काम करते हैं, जो वे नहीं कर सकते। यही बात सामान्य जीवन जीने पर भी लागू होती है। यह कुछ ऐसा है जिसे हमें खुद खोजना चाहिए। यह आत्म-पहचान की यात्रा है। वैसे, यह किताब "तुझ सगुण मुहम्मो की" अवश्य पढ़ें।

१ मई महाराष्ट्र दिन

1 मई को महाराष्ट्र दिवस और कर्मचारी दिवस के रूप में भी मनाया जाता है। भाषाई, सांस्कृतिक और जनसंख्या समायोजन के लिए इसी दिन अलग-अलग राज्यों का गठन हुआ था। मैं जन्म से महाराष्ट्रीयन हूँ। लेकिन अपनी पढ़ाई के लिए मुझे गुजरात राज्य के सूरत शहर को देखने का अवसर मिला। मुझे गुजराती भाषा का संक्षिप्त परिचय प्राप्त हुआ। हम सभी जो भारत को अपना देश और सभी भारतीयों को अपना भाई मानते हैं, वे राज्य की विविधता को समझेंगे, यहाँ कोई भेदभाव नहीं है। जिस मिट्टी में जन्म होता है, वह गौरव और आनंद का स्रोत होती है। मुझे भी महाराष्ट्रीयन होने का यही अहसास है। 1 मई को कर्मचारी दिवस के रूप में भी मनाया जाता है। मैं महाराष्ट्र दिवस और कर्मचारी दिवस के अवसर पर यह पुस्तक प्रकाशित कर रहा हूँ। इस वर्ष बुद्ध पूर्णिमा भी इसी दिन है। आज का दिन बुद्ध के दर्शन को श्रद्धांजलि अर्पित करने और उन्हें सम्मान देने का दिन है। महाराष्ट्र दिवस, कर्मचारी दिवस और बुद्ध पूर्णिमा की हार्दिक शुभकामनाएँ। एक छोटे से गाँव से लेकर राज्य, देश और वैश्विक एकता तक, आइए इस दिन ईश्वर से प्रार्थना करें।

आभार:- मेरा लेखन कार्य जारी है। इस यात्रा में लोग मुझे लगातार समझते आ रहे हैं। मेरे माता-पिता, बहन, मेरा परिवार, मुझे जानने वाले मित्र, फेसबुक पर मेरे छात्र और अन्य परिवार, कॉलेज में काम करते हुए दोस्त बने सहकर्मी, स्कूल और कॉलेज के संकाय सदस्य हमेशा मेरी मदद के लिए मौजूद हैं। परिवार के सभी सदस्यों और अन्य सभी को मेरी शुभकामनाएं। मैं इसके लिए सभी का आभार व्यक्त करता हूं।

विषयसूची

अ.क्र. विषय
01. बेस्टसेलर और फैनबेस
02. कोई दुःख नहीं होता।
03. कौन सा क्षेत्र: क्यों और कैसे तय करें
04. सुखी और जिम्मेदार जीवन
05. समेकन करने की क्षमता
06. एक गाँव, एक सपना
07. सरस में
08. समय के साथ
09. अंतर कहाँ था?
10. प्रश्न
11. कारण और शिकायतें
12. आपने किसी के साथ कैसा व्यवहार किया?
13. आपकी उपस्थिति का अनुरोध किया जाता है।
14. मकर संक्रांति
१५. आत्मचिंतन
16. बच्चे कैसे पैदा होते हैं?
17. हमारे प्यार में
18. विचार करने योग्य बातें
19. बैठक और सिलाई
20. आत्म-साक्षात्कार के क्षण
21. अलेक से सरिपत
22. मीडिया और आप
23. उकाडा से उकाडा तक
24. आगे क्या हुआ?
25. इस वृत्त में
26. एक कार्यालय की कहानी
27. एक दिन
28. बेल पर जीवन यापन करना

29. कर्म का सिद्धांत
३०. समय के साथ
31. भूमिकाओं का तनाव और एकता
32. ऐसा क्यों हुआ?
33. आलस्य
34. मुझे बताओ कि कैसे जीना है?
35. क्या हुआ?
३६. आभास
३७. शीडी
38. सुख का संदूक
39. हमारी इच्छा
40. मास्काचस्का की कहानी
41. पहल करना
42. कार्य में सटीकता और जिम्मेदारी
43. उससे
४४. संगीत
45. प्रेम दिवस
46. घृणा की आग
47. सहअस्तित्व के सुख
48. जिज्ञासा की यात्रा
49. सब कुछ ऑनलाइन
50. अवधारणा
५१. आस्था
52. एक ऐसी चीज़ जिसे चूकना नहीं चाहिए
53. अधल स्थिति
54. कठिन बात
55. बच्चों के जन्मदिन
56. सभी प्रकार के भागफल
57. किस दिशा में?
58. मेलोड्रामा और मेलोडी

59. एक पल में अजनबी
60. मानसिक गिरावट के कारण
61. हमेशा खुद को अभिव्यक्त करते रहें
62. नौकरी छोड़ने के कारण
63. प्रकृति नामक स्थान
६४. तरंग
65. ट्रैकिंग
66. आत्म-अनुशासन
67. जीवन में सामंजस्य
68. पार्टी कार्यकर्ता
६९. आने वाला पल
70. सुख का सृजन
71. आत्मसम्मान और श्रेष्ठता की भावना
72. सामाजिक संस्थाओं की आवश्यकता
73. आत्मसम्मान और श्रेष्ठता की भावना
७४. प्रथा
75. धन जुटाने का व्यवसाय
76. स्थिति और पहचान
77. परिप्रेक्ष्य
78. वहनीयता
79. कृतियों की प्रतिष्ठा
80. ब्रह्म की अवधारणा
81. यह जारी रहेगा।
82. समय क्या है?
खर्च करना?
83. इतने दिन
84. फजिती की कहानी
85. सामाजिक सहायता
86. लापरवाही से आत्म-अनुशासित होने की ओर
87. सूर्योदय और सूर्यास्त

88. ध्यान का विषय
89. जीवन की धुन
90. दृढ़ता
91. भ्रामक मन
92. सम्मान
९३. टोकन
94. बवंडर
95. केवल लालची
96. स्वतंत्रता का स्वाद
97. बच्चों के व्यक्तित्व
98. हम जीवन कब जिएंगे?
99. क्या यही जीवन है?
100. खिल
101. मैं तुम्हें सगुन कहकर बुलाऊंगा।
दिनांक:- //
बेस्टसेलर और फैन बेस
मैं बचपन से ही किताबें पढ़ता आ रहा हूँ—शुरू में तो बस स्कूल की किताबें ही पढ़ता था। तब मेरी पढ़ाई-लिखाई से अलग किताबें पढ़ने की आदत कम थी; कॉम्पिटिटिव एग्ज़ाम की तैयारी और इंजीनियरिंग की पढ़ाई के दौरान यह थोड़ी बढ़ी। वह मोटी-मोटी किताबें पढ़ने का दौर था। कितने ही लोग अपने-अपने क्षेत्र में लिखते हैं। आखिर यह 'बेस्टसेलर' वाली बात क्या है? असल में, मेरी मातृभाषा मराठी है; मैंने पाँचवीं कक्षा में अंग्रेज़ी सीखना शुरू किया था! (आजकल के बच्चे शायद इस बात पर हँसेंगे)। फिर, एक दोस्त ने मुझे 'ऑथर' (लेखक) शब्द से परिचित कराया। तभी मैंने सोचा... चलो, अंग्रेज़ी सीखते हैं! और उस सफ़र ने मुझे आखिरकार 'बेस्टसेलर' के कॉन्सेप्ट तक पहुँचाया। अलग-अलग तरीकों से फ़ैन बनाना—या खुद किसी का फ़ैन बनना—एक लंबा और टेढ़ा-मेढ़ा सफ़र है। आम तौर पर, हम हर चीज़ में शॉर्टकट ढूँढ़ते हैं। लेकिन कुछ मामलों में शॉर्टकट मुमकिन नहीं होते; 'बेस्टसेलर' का मामला भी ऐसा ही है। हर साल उन्हीं आंटी और अंकल को एक ही जगह पर फल या सब्ज़ी की रेहड़ी लगाते हुए देखना मुझे अपनापन महसूस कराता था—ऐसा लगता था जैसे, "अरे, मैं तो इन्हें जानता हूँ।" बाद में, जब भी मैं खुद चीज़ों से थक जाता, तो सोचता: क्या वे सिर्फ़

गुज़ारे के लिए वहाँ बैठते हैं? क्या किसी ने उन्हें मजबूर किया था, या वे अपनी मर्ज़ी से, फ़र्ज़ की भावना से वहाँ थे? इसके अलावा, उनका लगातार वहाँ मौजूद रहना मेरे ज़हन में बसा रहता था। इसका बेस्टसेलर से क्या लेना-देना है? बेस्टसेलर किताबें रातों-रात बेस्टसेलर नहीं बनतीं। कॉम्पिटिटिव एग्ज़ाम और इंजीनियरिंग के दिनों में, मुझे जो भी किताब मिलती, मैं पढ़ लेता था। फिर भी, मुझे हमेशा यह एहसास होता था कि जन्मजात जुनून, खास हालात और लगातार लिखने की आदत का मेल ही इंसान को सफलता के उस मुकाम तक पहुँचाता है—चाहे वह खाना बनाना हो, गाना हो या कुछ और। तारीफ़ मिलने की कोई गारंटी नहीं होती। 'बेस्टसेलर' का मामला भी इससे अलग नहीं है। सिर्फ़ इसलिए कि आपने कुछ बनाया है, इसका मतलब यह नहीं है कि वह आपको खुद भी पसंद आएगा; इसी तरह, इस बात की भी कोई गारंटी नहीं है कि कोई और उसे अपनाएगा—या अगर अपनाएगा भी, तो उसकी तारीफ़ करेगा। और इन सबके अलावा, जिस तरह से ये काम इंसान के व्यक्तित्व को गढ़ते हैं—वह तो एक अलग ही विषय है। फ़ैन बेस हमेशा फ़ैन बेस ही नहीं रहता। और यह तो स्वाभाविक ही है। एक ही जगह पर एक ही तरह का काम करने के अनुभव से—चाहे प्यार से हो या मजबूरी में—मुझे *कर्म योग* (निस्वार्थ काम का रास्ता) का कॉन्सेप्ट समझ आने लगा। कोई शानदार आइडिया होना और उसे किसी भी तरह से सफलतापूर्वक बेचना बिल्कुल अलग बात है। हालाँकि, जब भी मैं मराठी या हिंदी में सदाबहार, गहरे अर्थ वाले गाने सुनता हूँ, तो मुझे लगता है कि मुझे थोड़ी समझ आती है कि असल में किसी चीज़ को "बेस्टसेलर" क्या बनाता है। और फ़ैन्स की बात करें तो? यहाँ तक कि जो माँ रोज़ आपको अपना लाडला कहती है, वह भी आपसे नाराज़ हो सकती है; आख़िरकार, फ़ैन्स तो फ़ैन्स ही होते हैं। आज का लेख—"क्या कोई चुने हुए रास्तों पर चल सकता है?"—एक ऐसा सवाल था जो मैंने खुद से पूछा था; यह लेख उसी का जवाब देने की कोशिश है। हम स्कूलों या कॉलेजों में फ़ुल-टाइम या पार्ट-टाइम टीचर के तौर पर काम कर सकते हैं, फिर भी अक्सर हमें सिर्फ़ अपने ही लेक्चर पसंद आते हैं। हम यह नहीं समझ पाते कि कोई भाषा या विषय कितना गहरा और अर्थपूर्ण हो सकता है, और हम बहुत जल्दी बोर हो जाते हैं। मेरे लिए, वे वेंडर—वे अंकल और आंटी जो रोज़ प्याज़, आलू और सब्ज़ियाँ बेचते हैं—असली "बेस्टसेलर" हैं, क्योंकि उन्होंने लगातार काम करने का अनुशासन सीख लिया है। बहुत से लोग नियमों का पालन करते हैं, हर कोई अपनी-अपनी वजहों से। कुछ "बेस्टसेलर" बिल्कुल नई दुनिया दिखाते हैं। मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि मेरी लिखावट कभी

बेस्टसेलर बनेगी या मैं लगातार लिख पाऊँगा। यह एक प्रेरणा थी—जो एक खास तोहफ़ा मिलने के बाद मिली। वह सफ़र आज भी जारी है। शायद कई और लोगों ने भी ऐसे ही सफ़र शुरू किए होंगे। मैं उन सभी को शुभकामनाएँ देता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि वे जो भी काम करें, उससे हमेशा संतुष्ट रहें। "बेस्टसेलर" और "फ़ैन बेस" जैसे शब्द कभी मेरे लिए बिल्कुल अनजान थे; इस सफ़र को शुरू किए हुए तीस साल हो गए हैं। ज़िंदगी के उतार-चढ़ाव खूबसूरत होते हैं—बशर्ते इंसान कर्म के रास्ते पर अडिग रहे। सभी को उनके जीवन के सफ़र के लिए शुभकामनाएँ।

दिनांक :-//

मैं कष्ट नहीं सहना चाहता।

हम दूसरों के सहारे बड़े होते हैं। जो लोग सहारा देते हैं, वे हमें बहुत हिम्मत देते हैं; वे हमेशा अपना सब कुछ बांटते रहते हैं। नतीजा यह होता है कि हमें सिर्फ़ लेने की आदत पड़ जाती है, जबकि वे देने के आदी हो जाते हैं। फिर भी, इन देने वालों के मन में गहरी निराशा हो सकती है, क्योंकि उन्हें लगातार काम करना पड़ता है। भले ही सीधे तौर पर न हो, लेकिन अक्सर उन्हें कई लोगों के लिए सहारे का काम करना पड़ता है, और आखिर में, यह भूमिका उनके लिए भी एक आदत बन जाती है। इस स्थिति की अजीब बात यह है कि दोनों पक्षों के खुश और ज़िम्मेदार बनने के बजाय, अक्सर एक पक्ष दुखी रह जाता है, जबकि दूसरा पक्ष ज़िम्मेदारी का बहुत ज़्यादा बोझ उठाता है। मुझे याद है कि बचपन में मुझे बहुत कुछ मिला और मैंने वह काम भी किया जो मुझसे उम्मीद की जाती थी, फिर भी मैं दुखी रहा; कई बार मैं दुख में रहा। इसकी वजह यह थी कि मुझमें आत्म-जागरूकता की कमी थी। शिक्षा का मतलब सिर्फ़ यह नहीं है कि कोई और निर्देश दे और हम उनका पालन करें—यह तो सीखने का शुरुआती चरण या ज़िम्मेदार व्यवहार का एक पहलू है। असली शिक्षा खुद को खोजने और आत्म-जागरूकता में है। मैं बचपन से ही भगवान में विश्वास करता रहा हूँ, हालाँकि मैंने कभी खास मंदिरों में नियमित रूप से जाने की आदत नहीं डाली; मुझे यह समझने में कई साल लग गए कि मेरा असली आध्यात्मिक झुकाव किस तरफ़ है। ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। कोई पूछ सकता है, "खुद को खोजने के दौरान कोई बस खाली कैसे बैठ सकता है?" यह एक सही बात है। हालाँकि, अगर हम बिना दुख में डूबे अपने चुने हुए या तय काम को करते रहें—चाहे कितनी भी रुकावटें आएँ —तो हम ज़रूर नए रास्ते खोज लेते हैं। जैसा कि कवि प्रार्थना करता है, "हे भगवान, मुझे यह वरदान दो: मैं तुम्हें कभी न भूलूँ।" अक्सर, हम अपने माता-पिता,

अभिभावकों, रिश्तेदारों और भगवान को तभी याद करते हैं जब हम मुश्किल में होते हैं; फिर भी, खुशी के समय—और हर समय—उन्हें याद करने और अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाने से हमारे लिए नए रास्ते खुलते हैं। एक खुशहाल, ज़िम्मेदार नागरिक बनना हमारा मुख्य मकसद होना चाहिए। ज़िम्मेदारी के कई रूप होते हैं—एक ऐसा विषय जिस पर मैं शायद कभी लिखूँ—लेकिन मेरा मानना है कि अगर खुशी हमारी बुनियादी अवस्था बन जाए, तो भगवान हमें सचमुच कमाल की चीज़ें हासिल करने में मदद करते हैं। क्या इसका मतलब यह है कि दुख की भावनाएँ कभी नहीं आएँगी? वे आती हैं, बेशक; फिर भी, दुख भी कई तरह के होते हैं। हम दूसरों को देखने में बहुत समय बिताते हैं। हम ज़िंदगी में कॉम्पिटिशन के बारे में सीखते हैं—खासकर उस तरह के कॉम्पिटिशन के बारे में जहाँ कोई दूसरे से चीज़ें छीनकर आगे बढ़ता है। हम इस अनकहे नियम को मान लेते हैं कि ज़िंदगी जीने का कोई और तरीका नहीं है। हालाँकि, स्कूल में कॉम्पिटिशन का मकसद स्किल डेवलप करना होता है। जो बच्चे स्वभाव से निडर होते हैं, वे जल्दी स्किल सीख जाते हैं; वे स्कूल कॉम्पिटिशन जीतते हैं और धीरे-धीरे ज़िंदगी में आगे बढ़ते हैं। दूसरे बच्चे निराश रह जाते हैं। अक्सर इसकी वजह यह होती है कि वे घर पर पढ़ाई नहीं करते, और इसकी वजह यह होती है कि उनके माता-पिता उनकी तुलना दूसरों से करते हैं। इस प्रोसेस की वजह से बच्चे को ऐसा लगता है कि वह सच में जीने के बजाय हर पल थोड़ा-थोड़ा मर रहा है। एजुकेशन एक पर्सनल सफ़र है जो खुद को जानने से शुरू होता है। तब तक, बस काम करते रहना चाहिए—चाहे वह काम दिया गया हो या खुद समझा गया हो। लोग अक्सर हमें नौकरी से निकाल देते हैं या हमारी बात को नज़रअंदाज़ कर देते हैं—इस बारे में मैं बाद में लिखूँगा—लेकिन यहाँ मैं बस यह पूछना चाहता हूँ: बुरा महसूस करने में हम कितना समय बर्बाद करते हैं, और इससे हमें क्या मिलता है? और जब हम चीज़ें *पाने* के जुनून में पड़ जाते हैं, तो हम असल में क्या *देते* हैं? हमारे पास बस वही एक इच्छा रह जाती है। इसीलिए रोज़ाना का रूटीन बहुत ज़रूरी है; यह हमें खुशहाल और ज़िम्मेदार ज़िंदगी जीना सिखाता है। एक बार जब हमें दुखी रहने की आदत पड़ जाती है—या खुशी मिल भी जाती है—तो हम अक्सर उसी चक्र में फँस जाते हैं और उसके आगे ज़िंदगी को नहीं देख पाते। हम साधनों की कमी का रोना तो रोते हैं, लेकिन उन्हें बनाने की कोशिश नहीं करते। यह आसान काम नहीं है। दुखी होना, खुश होना या बस एक जगह अटके रहना कहीं ज़्यादा आसान है (और मेरा मतलब प्यार में अटके रहने से नहीं है; प्यार तो हमें सिखाता है)। शिकायत करने में

समय बिताने के बजाय, हमें कोशिश करने में समय बिताना चाहिए। तुकोबा कहते हैं कि खुशी सरसों के दाने जितनी होती है जबकि दुख पहाड़ जितना बड़ा होता है; फिर भी, मुझे लगता है कि दुख के बारे में सोचते रहने की हमारी *आदत* ही पहाड़ जितनी बड़ी होती है। आखिरकार, खुशी तो जन्म से ही हमारी ज़िंदगी का हिस्सा रही है। तो आइए, खुश रहना चुनें।

दिनांक :- 200/200/2002

वह कैसे संभव है?

आइए पिछली पीढ़ी और अगली पीढ़ी के बीच संघर्ष से मिलने वाले सबक को समझें, जो है मदद और सम्मान का सबक। हम अगली पीढ़ी को ईमानदारी से तभी बताते हैं जब कहीं कोई कुछ गलत करता है। अक्सर, बहुत से लोगों ने इसका अनुभव किया है, क्या हमें भी ऐसा अनुभव हुआ, क्या हमारे साथ ऐसा हुआ, क्या हमारे समय में ऐसा हुआ, क्या हमारे समय में ऐसा हुआ। कभी-कभी उस अनुभव को बस दर्ज कर लेना होता है। कभी-कभी बहुत दुख होता है, जिसके कारण मन कहीं भटक जाता है। इसमें कुछ लाभ भी है और कुछ हानि भी। हमारी संस्कृति महान है। यह हमें याद दिलाती है, "भगवान सबको खुश रखें, सबको उज्ज्वल बनाएं, किसी को किसी के बारे में गलत न सोचने दें।" यही शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षा केवल किताबों तक सीमित नहीं है। हर दिन नियमों के अनुसार कोई भी काम करना, जिम्मेदारी से व्यवहार करना भी शिक्षा है। दूसरों से तुलना करने, प्रतिस्पर्धा करने, या अपने दुखों को याद करके बहुत बुरा महसूस करने और क्रोधित होने में बहुत बड़ा अंतर है। जो चीजें अत्यधिक पीड़ा का कारण बनती हैं, यदि हम उनके कारणों को समझ लें, तो वे पीड़ा का कारण तो बन सकती हैं, लेकिन कम से कम हमारे पास उसे सहने की शक्ति तो होती है। कोई भी मनुष्य का मन पीड़ा सहन नहीं कर सकता। एक दुखी व्यक्ति दूसरों को क्षमा कर सकता है और उनकी सफलता का जश्न मना सकता है। लेकिन जो व्यक्ति कष्ट भोग रहा होता है, वह ऐसा कभी नहीं करता। वह केवल अपनी सफलता प्राप्त करने में ही लगा रहता है। वह दूसरों के बारे में नहीं सोचता। जीवन में दर्शन के सिद्धांतों को कैसे लागू किया जा सकता है...? क्या एक ही जन्म में हमारे सभी प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं...? प्रश्न समाप्त होने से पहले ही नए प्रश्न उठ खड़े होते हैं... इसका अंत कैसे संभव है? ऐसा किसी के साथ होता है...

दिनांक – //

खुशहाल और जिम्मेदार जीवन

वह कितना स्वार्थी है? उन्होंने तुरंत मदद की। उन्होंने कुछ नहीं माँगा। उन्होंने कुछ बाँटा भी नहीं। हम ऐसा कहते हैं। जब आप अपनी ज़िम्मेदारी निभाना नहीं जानते, तो आपको हर बार मदद की ज़रूरत पड़ती है। इस तरह, खुशी धीरे-धीरे फीकी पड़ जाती है और अपार दुख पैदा करती है। इसका कारण एक ही है। हमें हर दिन दुख के ढेर जमा करने की आदत होती है। जबकि कुछ लोगों को हर दिन खुशी के ढेर जमा करने की आदत होती है। इसी तरह एक रवैया बनता है। जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि चाहे कुछ भी हो जाए, मुझे खुश रहना है, वह किसी भी रास्ते पर चलकर इसे हासिल कर लेता है। इससे छोटे बच्चे जो देखते हैं, वही सीखते हैं। खुद से या शिक्षकों द्वारा तय की गई दिनचर्या आपको बहुत समझदार और ज़िम्मेदार बनाती है। बड़े होते हुए, कई लोग थोड़े से पैसे हाथ में आने पर, या उसमें कोई उलझन होने पर, या उसे देखकर बहुत दुखी हो जाते हैं। हाथ में पैसा आने पर जो अपार खुशी महसूस होती है, उतना ही अपार दुख भी होता है जब आप उसे नहीं देखते। और यह समझा जा सकता है कि शांत रहना, खुश रहना, ज़िम्मेदार होना भी एक रवैया है। और यह एक दिन में नहीं बनता। यह कई दिनों की मेहनत का फल है। माँ बनने के बाद कोई भी माँ नहीं चाहती कि उसके बच्चे दुखी रहें। यहाँ तक कि खुद माँ भी अपना समय सबको खुश, प्रसन्न और ज़िम्मेदार बनाने में लगाती है। अगर बच्चे समझ जाएँ तो ठीक है। वरना उसे खुद दुखी रहना पड़ता है। जिसे भी लगता है कि समाज का संतुलन बिगड़ रहा है, वह या तो अत्यधिक दुखी होता है या अत्यधिक प्रसन्न। एक बार यह ज्ञान प्राप्त हो जाए तो ये दोनों ही अवस्थाएँ समाप्त हो जाती हैं।

दिनांक:- / / ...

सहयोग क्षमता - सहयोग करने की क्षमता

एक छोटा बच्चा और एक पेड़ काफी हद तक एक जैसे होते हैं; जब आप उन्हें देखते हैं, तो आपको उनमें बढ़ने और जीने की एक सच्ची इच्छा महसूस होती है। क्या आपने कभी दो पेड़ों को एक-दूसरे के बहुत पास उगते देखा है? अगर वहाँ बेलें हों, तो वे आपस में उलझ जाती हैं; पेड़ों की शाखाएँ भी आपस में जुड़ जाती हैं। लोग अक्सर कहते हैं, "इससे रुकावट आ रही है; यह पेड़ ठीक से नहीं बढ़ेगा," और इसलिए हम शाखाओं को काट देते हैं। इससे हमें अच्छा लगता है। फिर भी, शाखाएँ तभी टूटती हैं जब तेज़ हवा चलती है—और अकेले खड़े पेड़ की शाखाएँ भी ऐसी हवाओं में वैसी ही टूटती हैं। यह सब मिट्टी के हिसाब से ढलने की बात है; इसीलिए फसलें ऐसी मिट्टी में भी अच्छी तरह उगती हैं जिसमें भरपूर पोषक तत्व नहीं होते। इंसान इससे कैसे अलग

हैं? मैं ऑर्गनाइज़ेशनल बिहेवियर (संगठनात्मक व्यवहार) का एक्सपर्ट नहीं हूँ, लेकिन आजकल कंपनियाँ नए कर्मचारी के शामिल होने से पहले ट्रेनिंग देती हैं। यह वाकई तारीफ़ के काबिल है। इसकी अवधि व्यक्ति की क्षमता के आधार पर अलग-अलग हो सकती है, लेकिन वहीं वे मिलकर काम करने की कला सीखते हैं। हालाँकि, यह बात प्रोफेशनल दुनिया पर लागू होती है। इसकी ज़रूरत वहाँ और भी ज़्यादा है जहाँ हम पनाह लेते हैं या अपना घर बनाते हैं। काम पर, काम साफ़ तौर पर तय होते हैं। घर पर, भले ही ज़िम्मेदारियाँ बाँट दी जाएँ, अक्सर बोझ दूसरों पर डालने की आदत होती है, जिससे नाराज़गी और रिश्तों में खटास आती है। ऐसा वर्कप्लेस पर भी होता है। जिन लोगों पर काम का बहुत ज़्यादा बोझ होता है—चाहे घर पर हो या ऑफ़िस में—वे अक्सर यह नहीं समझ पाते कि अपने खाली समय का सही इस्तेमाल कैसे करें। इसके अलावा, हर किसी का जॉब प्रोफ़ाइल अलग होता है; इससे कंपनी को तो नुकसान होता ही है, और नतीजतन, इसमें शामिल लोगों को भी और ज़्यादा नुकसान होता है। एजुकेशनल इंस्टिट्यूशन भी इससे अछूते नहीं हैं। टीचर का बार-बार न आना छात्रों के लिए सज़ा या बहुत ज़्यादा मज़ा करने का बहाना हो सकता है, क्योंकि हर टीचर का सिलेबस पूरा करने का एक तय लक्ष्य होता है। फिर भी, हम अक्सर यह कहकर बात टाल देते हैं कि "चीजें ऐसी ही होती हैं; तुम इसे बहुत गंभीरता से ले रहे हो।" अगर सरकारी छुट्टियाँ एक जैसी हों, तो सबसे गंभीर लोग भी मुस्कुराने लगेंगे; ज़ाहिर है, मिलकर काम करने की क्षमता भी बेहतर होगी। मेरा पक्का मानना है कि लोग स्वभाव से ईमानदार होते हैं; अक्सर सही हालात न होने की वजह से ही समस्याएँ पैदा होती हैं। एक बार जब गिरावट का दौर शुरू होता है, तो स्थिति हाथ से निकल सकती है। भले ही लोगों में मिल-जुलकर काम करने की क्षमता अलग-अलग हो, लेकिन इसे विकसित करने की कोशिश से सबसे पहले उस व्यक्ति को और फिर बिज़नेस या समाज को फ़ायदा होता है। बिज़नेस के मालिक अक्सर सोचते हैं कि ट्रेनिंग कितने समय की होनी चाहिए, क्योंकि पहले संसाधनों की कमी, खराब माहौल और खराब कम्युनिकेशन इंफ्रास्ट्रक्चर की वजह से ज़्यादा जानकारी देना मुश्किल होता था। लोगों की ज़िंदगी को बेहतर बनाना और उसे बनाए रखना कोई आसान काम नहीं है। किसी चुने हुए क्षेत्र के लिए सच्चा जुनून स्वाभाविक रूप से उस क्षेत्र में मिल-जुलकर काम करने की क्षमता को बढ़ाता है। मुझे हमेशा से सिविल इंजीनियरिंग पसंद रही है—और सिर्फ़ वही विषय। जब मुझे कॉलेज में अपनी विशेषज्ञता से अलग विषय पढ़ाने की ज़िम्मेदारी दी गई, तो मैं शुरू में खुश नहीं था क्योंकि मेरा असली जुनून जल संसाधन

(water resources) में है। हालाँकि, मैंने सिविल इंजीनियरिंग के प्रति अपने बुनियादी लगाव के कारण अपनी ज़िम्मेदारी पूरी की; मैं किसी और क्षेत्र के साथ ऐसा नहीं कर पाता। इसीलिए 10वीं और 12वीं कक्षा के स्तर पर शिक्षा और आत्म-जागरूकता विकसित करने पर बहुत ज़ोर दिया जाना चाहिए। आजकल 'मैनेजमेंट' की पढ़ाई को जो अहमियत दी जाती है, उसे देखकर मुझे अक्सर हैरानी होती है; कम परिपक्वता वाले युवा अक्सर दूसरों से 'काम करवाने' का सबक ही सीखते हैं, जो पूरी तरह से अलग बात है। हालाँकि, अगर कोई कम उम्र से ही आत्म-जागरूकता और हालात के अनुसार ढलने की क्षमता विकसित कर ले, तो नतीजा बहुत अलग होगा। इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि तालमेल न बिठा पाना। उदाहरण के लिए, एक ऐसे घर के बारे में सोचिए जहाँ आप रसोइए के तौर पर काम करते हैं और आपसे खास तरह से खास व्यंजन बनाने की उम्मीद की जाती है—उस रीति-रिवाज़ को समझना और उसका पालन करना ज़रूरी है। इसी तरह, किसी कंपनी में, यह बताना पड़ सकता है कि काम की गुणवत्ता सिर्फ़ शेड्यूल का पालन करने से ज़्यादा मायने रखती है। ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। ऐसी आदतें न सिर्फ़ काम का अच्छा माहौल बनाती हैं, बल्कि यह भी दिखाती हैं कि आपसी सहयोग से कामों को कितनी अच्छी तरह पूरा किया जा सकता है। कार्यस्थल के अलग-अलग पहलू होते हैं: किए गए काम की गुणवत्ता, लोगों का पेशेवर विकास और काम के माहौल को बनाए रखना। ड्रेस कोड को अक्सर काम के माहौल का हिस्सा माना जाता है, हालाँकि उपयुक्तता और खास भूमिका की प्रकृति जैसे कारक भी इसमें भूमिका निभाते हैं। जब ध्यान काम के बजाय पहनावे पर चला जाता है, तो पेशेवर लक्ष्यों से ध्यान भटक जाता है। अगर कोई महिला सहकर्मी काम पर आती है, तो लोग अक्सर उसकी पेशेवर क्षमताओं के बजाय उसके कपड़ों या दिखावट पर ध्यान देते हैं; इस भटकाव के कारण बेहतरीन काम पर ध्यान नहीं जा पाता। इसी तरह, जब कोई ऑफ़िस देर से पहुँचता है, तो भले ही सभी लोग ट्रांसपोर्ट सिस्टम पर पड़ने वाले दबाव को समझते हों, लेकिन यह स्थिति दूसरों की उस क्षमता की भी परीक्षा लेती है कि वे एक प्रोफ़ेशनल माहौल में कैसे तालमेल बिठाते हैं और खुद को ढालते हैं।

दिनांक :-//

एक गाँव, एक सपना

सपनों के सहारे जीने वाले व्यक्ति के लिए, दूसरों की परवाह करते हुए (या परवाह न करते हुए) जीना एक कठिन राह है। जो कुछ मैंने देखा, उसे देखकर

मेरे मन में जो विचार आए, उन्हें मैंने कागज पर उतार दिया।

एक दिन मैंने सोचा: असल में एक गाँव कैसे बनता है? जिस गाँव में मैं बड़ा हुआ, वह ऊपर से कैसा दिखता है? यह एक काफी व्यवस्थित गाँव है और इसके विकास में कई लोगों का योगदान रहा है। फिर भी, मुझे अक्सर लगता है कि उन क्षेत्रों में बहुत बड़ी ज़िम्मेदारियाँ होती हैं जहाँ शिक्षा और जीवन की असल हकीकतें पूरी तरह मेल नहीं खातीं। नए गाँव, कस्बे और हाउसिंग सोसायटियाँ बनाना बेशक सिविल इंजीनियरों का काम है, लेकिन क्या इस प्रक्रिया के दौरान रोज़मर्रा की ज़िंदगी की व्यावहारिक ज़रूरतों का सचमुच ध्यान रखा जाता है? पुराने प्रोजेक्ट्स को एक पाठ्यक्रम—यानी आगे बढ़ने के लिए एक आधार—के तौर पर इस्तेमाल किया जाना चाहिए। बिल्डिंग डिज़ाइन और ड्राफ्टिंग के बारे में सीखते समय गाँव का अध्ययन करना बहुत ज़रूरी है। चूँकि गाँवों का विकास क्रमवार होता है, इसलिए पानी की प्रणालियों—जैसे नहरें और खेत के तालाब—के साथ-साथ खेती के खेतों और परिवहन नेटवर्क की पहले से योजना बनाना ज़रूरी है। गाँव का एक खास एरियल व्यू (ऊपर से नज़ारा) ज़रूरी है। गाँव के अष्टकोणीय (आठ कोनों वाले) लेआउट पर विचार करें: आठ कोनों पर आठ कार्यालय होने चाहिए, जिनमें अलग-अलग काम करने वाले विभाग हों। इनमें पानी, कृषि, पर्यावरण और निगरानी (बीज और अनाज/राशन रिकॉर्ड सहित), परिवहन, साहित्य और पत्रकारिता, कपड़ा और आभूषण, जनगणना, और इंजीनियरिंग और चिकित्सा सेवाओं जैसे ज़रूरी क्षेत्र शामिल होने चाहिए। ये सभी विभाग नगरपालिका प्रमुख को औपचारिक रिकॉर्ड सौंपने के लिए जवाबदेह होंगे। इस प्रक्रिया में स्थानीय बच्चों को शामिल करने से एक सामाजिक ज़िम्मेदारी भी पूरी होगी, हालाँकि ऐसी भागीदारी अनिवार्य नहीं है। हालाँकि, अगर मकसद बिना मकसद के घूमने-फिरने को कम करके और प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम करके प्रकृति की रक्षा करना है, तो स्थानीय स्कूल प्रशासकों और अभिभावकों के साथ चर्चा करके एक नए गाँव के विचार को एक सुंदर हकीकत में बदला जा सकता है। ये गाँव ग्राम पंचायत, नगरपालिका या नगर निगम से जुड़े होंगे। सभी नागरिकों और व्यवसाय मालिकों को गाँव में ही पंजीकरण कराना होगा; फिर गाँव के अधिकारी इन रिकॉर्ड्स को ग्राम पंचायत और संबंधित अधिकारियों को भेजेंगे। सभी अधिकारियों और नगर निगम के साथ मासिक बैठकें होंगी और औपचारिक रिपोर्ट पेश की जाएँगी। स्कूलों को क्यों शामिल करें? इससे यह सुनिश्चित होता है कि इलाके का हर बच्चा स्कूल में दाखिला ले और स्थानीय गाँव के निर्माण में भाग ले, जिससे वे बिना मकसद के घूमने-फिरने के बजाय

रचनात्मक कार्यों में लगे रहें। गाँव के भीतर की संरचनाओं—जैसे मंदिर, घर, मस्जिद और स्कूल—को छात्रों की आबादी के आधार पर डिज़ाइन किया जाना चाहिए। योजना बनाने की प्रक्रिया में कृषि, जल प्रणालियों और परिवहन नेटवर्क को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, और उसके बाद संबंधित प्रशासनिक कार्यालय स्थापित किए जाने चाहिए। असल काम करने के लिए स्कूलों और कॉलेजों के ज़रिए एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ़ चुना जाएगा, जबकि एनवायरनमेंट मॉनिटरिंग डिपार्टमेंट के लिए लोगों को इन्हीं शिक्षण संस्थानों में होने वाले पब्लिक इंटरव्यू के ज़रिए चुना जाएगा। दूसरों की मदद करना। यह पहल गाँवों के बेतरतीब फैलाव को रोकने और जगह का सही इस्तेमाल सुनिश्चित करने में मदद करेगी। हर गाँव में हर हाउसिंग सोसाइटी के पास तय पार्किंग एरिया होने ही चाहिए—चाहे वे सरकारी हों, सेमी-गवर्नमेंट हों या प्राइवेट। बुज़ुर्गों को अक्सर पैरों में दर्द की तकलीफ़ होती है, फिर भी उन्हें गाड़ी मिलने में मुश्किल होती है। 'वन विलेज, वन कॉन्सेप्ट' (एक गाँव, एक कॉन्सेप्ट) के विचार के बारे में आप क्या सोचते हैं?

दिनांक:- / /

मैं ठीक हूँ।

बचपन से ही हम स्वाभाविक रूप से नकल करके सीखते हैं। नकल करने का यह दायरा अलग-अलग हो सकता है। हम अपने माता-पिता को लगातार देखकर सीखते हैं—उनके कपड़े पहनने का तरीका, खान-पान की आदतें, व्यवहार और रिश्तेदारों व परिवार के साथ उनका मेल-जोल। इनमें से कुछ गुण हम अनजाने में अपना लेते हैं, जबकि कुछ हम पर थोपे जाते हैं। माता-पिता ज़ोर दे सकते हैं, "तुम्हें यह *करना ही होगा*; वरना लोग तुम पर हँसेंगे, कोई तुम्हारी मदद नहीं करेगा और तुम अकेले रह जाओगे।" चूँकि हमारे मन में एक बेचैनी होती है, इसलिए हम अक्सर दूसरों के साथ दोस्ताना रिश्ते नहीं बना पाते। इस बेचैनी के कई कारण हैं—जिन पर मैं बाद में लिखना चाहूँगा—लेकिन अक्सर यह अधूरी इच्छाओं और उम्मीदों से पैदा होती है। इच्छाएँ निजी होती हैं, जबकि उम्मीदों में किसी खास चीज़ की पक्की माँग होती है। ये बातें हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग होती हैं। हम बेचैन महसूस करते हैं क्योंकि हमें नहीं पता कि जो हम चाहते हैं, उसे कैसे पाएँ। इसका समाधान आत्म-चिंतन है। अपने अंदर देखने के बजाय, हम बाहर की ओर देखते हैं। "खुद का बेहतर रूप" बनने की कोशिश का मतलब है व्यक्तिगत विकास, लेकिन इस प्रक्रिया से हमें किसी का दुश्मन नहीं बनना चाहिए। इसके अलावा, हम अक्सर काम—खासकर भौतिक चीज़ें खरीदना

—सिर्फ़ इसलिए करते हैं क्योंकि हम दूसरों को ऐसा करते देखते हैं और हमें पल भर के लिए आकर्षण महसूस होता है। यह एक गलती है; आमतौर पर हमें इसका एहसास नुकसान उठाने के बाद ही होता है। कुछ नुकसानों की भरपाई किसी न किसी तरह की जा सकती है, लेकिन कुछ नुकसान हमें सिर्फ़ पछतावा और मन में बनी रहने वाली बेचैनी देकर जाते हैं। बेहतर इंसान बनना केवल आत्म-चिंतन से ही संभव है। क्या इसका मतलब दिन में बारह या चौबीस घंटे ध्यान में बैठे रहना है? बिल्कुल नहीं। काम करते समय भी आत्म-चिंतन का अभ्यास किया जा सकता है। अगर हाथ खाली हों, तो मन भटकने लगता है—अक्सर ऐसी दिशाओं में जिनका अंदाज़ा भी नहीं लगाया जा सकता। यह हमें ऐसी जगहों पर ले जा सकता है जहाँ हम कभी जाना नहीं चाहते थे; शायद हमेशा नहीं, लेकिन अक्सर ऐसा होता है। तो, क्या हमें बस एक छोटे बच्चे की तरह बैठे रहना चाहिए? ज़रा सोचिए: हम एक छोटे बच्चे की ओर इतने आकर्षित क्यों होते हैं? क्योंकि उससे शुद्ध आनंद मिलता है। मन की उस अवस्था को बनाए रखना—और साथ ही अपनी पेशेवर ज़िंदगी को भी संभालना (जो निश्चित रूप से चुनौतीपूर्ण है, पर किया जा सकता है)—मुझे "खुद के बेहतर रूप" की ओर ले जाता है। यह कोई पागलपन नहीं है; यह बरसों की कड़ी मेहनत का नतीजा है—उन लोगों को नज़रअंदाज़ करते हुए जो *तपस्या* (अनुशासित आध्यात्मिक प्रयास) जैसे शब्दों का मज़ाक उड़ा सकते हैं। किसी एक कॉन्सेप्ट को भी पूरी तरह समझने में बहुत समय लगता है। अगर हम खुद को ही नहीं समझते, तो दूसरे हमें कैसे समझेंगे? मुझे नहीं पता कि इस सफ़र का नतीजा क्या होगा, लेकिन सफ़र अपने आप में बहुत खुशी देने वाला है। मुझे नहीं पता कि यह "बेहतर मैं" मज़बूत होगा या कमज़ोर, लेकिन वह अंदर की रोशनी ही मुख्य गाइड का काम करती है। क्या इसका मतलब यह है कि कोई बाहरी गाइड—कोई शुभचिंतक—कीमती नहीं है? वे ज़रूर कीमती हैं। लेकिन इंसान उस फ़र्क को भी समझने लगता है! हम सबके पास सिर तो है, लेकिन क्या हमारे पास ऐसा दिमाग है जो सच में काम करता है? तो, दुनिया की यह सारी भाग-दौड़ असल में "बेहतर मैं" बनने के सफ़र के लिए ही की जाती है।

दिनांक:- / /

अधिक समय तक

जीवन के व्यापक परिदृश्य को देख चुके लोगों के मुंह से यह मुद्दा अक्सर निकलता है। बहुत समय बीत चुका है। अब ऐसा नहीं रहा। इसका कारण क्या है? लोग जो भी करते हैं, हर पल कुछ न कुछ अनुभव करते हैं। यह हर किसी का अनुभव स्तर है। लेकिन

जो कुछ भी होता है, वह अपने आप होता है। तो फिर क्या होता है? जब कोई नई व्यवस्था आती है, तो क्या उन्हें उसे स्वीकार करना आसान लगता है? नहीं, और फिर वे लगातार यही कहते रहते हैं, हमारे समय में ऐसा नहीं था। फिर नई पीढ़ी इससे बहुत ऊब जाती है। आखिर क्या करें? उन्हें क्या करना चाहिए? चलो इसे धीरे-धीरे कहीं छोड़ देते हैं। क्योंकि यही सबसे आसान है। हमेशा ये करो, वो मत करो, जैसी बातें होती रहती हैं। हमारे पास करने को इतना कुछ है कि सुनने का समय ही नहीं। समय के साथ क्या होता है? शोध एक आनंद है, एक जिम्मेदारी है, एक मदद है। मैं हमेशा सोचता हूं। यह मदद कैसे, किसके द्वारा, कब और किस उद्देश्य से उपयोग की जाती है? एक समय ऐसा आता है जब संबंधित व्यक्ति को लगता है कि वह कुछ पूछना नहीं चाहता, कुछ करना नहीं चाहता, और इस तरह हम भी धीरे-धीरे इस व्यवस्था का हिस्सा बन जाते हैं। क्या हमें दूसरों की मदद से अपनी संवेदनशीलता धीरे-धीरे खो देनी चाहिए या उसे बनाए रखना चाहिए? इसे खोना कितना आसान और सरल है। जब ऐसे चार लोग एक साथ आते हैं तो बहुत अच्छा होता है। बात वही रहेगी। फर्क क्या है? जब बहुत से लोग ऐसे हो जाते हैं या ऐसे बन जाते हैं, तो हमारे सामने बहुत अच्छे लक्ष्य आते हैं। संवेदनशीलता बनाए रखना अभी तक किसी बाजार में उपलब्ध नहीं है। हम यह कहकर दुकान खोल लेते हैं कि हमारी कोई दुकान नहीं है। अगर कोई ऐसा कहता है तो हमें अभी भी बुरा लगता है। क्या किसी ने आपकी संवेदनशीलता को बनाए रखा है? समय के साथ सब कुछ बदल सकता है। हम बदलने वाली चीजों की तलाश क्यों करते हैं? इन न बदलने वाली चीजों का क्या फायदा? जब आप इसका अनुभव करते हैं, तो आपको एहसास होता है कि जो चीज लगातार बदलती रहती है, वह किसी के लिए भी फायदेमंद नहीं होती। सबके लिए एक ही व्यवस्था लागू करना और जो उसमें फिट नहीं बैठते उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ती है, ऐसी चीजें होती हैं। इसके बजाय, जब कोई नई व्यवस्था आती है, तो पुरानी व्यवस्था की अच्छाइयों और गलतियों का अध्ययन करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि लोगों को प्रशिक्षित करना। साथ ही, उन्हें वर्षों से अर्जित कौशल का उपयोग करने के लिए प्रेरित करना आवश्यक है। तब लोगों को पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा। हमें यह भी विचार करना चाहिए कि क्या हम किसी स्थान पर लंबे समय तक काम करने के अनुभव के आधार पर पाठ्यक्रम तैयार कर सकते हैं।

दिनांक :- //

अंतर कहाँ था?

मुझे लगता है कि सिर्फ़ बोरियत या थकान के अलावा, अक्सर कुछ सामाजिक ज़िम्मेदारियाँ भी होती हैं जिनकी वजह से घर या ऑफ़िस से छुट्टी लेनी पड़ती है। चाहे घर हो या काम की जगह, हमारी कुछ ज़िम्मेदारियाँ तो होती ही हैं। ऑफ़िस से छुट्टी लेते समय, मैंने अक्सर सोचा है: मेरे न होने पर काम कौन और कैसे संभालता है? उदाहरण के लिए, स्कूल और कॉलेज को ही लें; ज़िम्मेदारियाँ सौंपने से पहले यह सोचना ज़रूरी है कि तय क्लास के दौरान सब्स्टिट्यूट टीचर क्या करेगा, क्योंकि छात्र आसानी से बोर हो सकते हैं। छात्रों को तो आना ही होता है, और उनकी छुट्टियाँ शायद ही कभी टीचर की छुट्टियों से मेल खाती हैं; इसलिए, टीचर के न होने पर भी वे आते हैं। ऐसी स्थितियों के लिए सही प्लानिंग ज़रूरी है—यह बात दूसरे ऑफ़िस पर भी लागू होती है। अक्सर लोग सोचते हैं कि रोज़ ऑफ़िस जाना फ़ायदेमंद नहीं है क्योंकि करने के लिए कोई खास काम नहीं होता। फिर भी, जब किसी को मदद की ज़रूरत होती है, तो संबंधित व्यक्ति अक्सर मौजूद नहीं होता। यह काम के माहौल के लिए अच्छा नहीं है; असल में, ऐसी जगहों पर अक्सर सही काम का माहौल ही नहीं होता। यह कोई आलोचना नहीं है, बल्कि चर्चा का विषय है। जो व्यक्ति कई ज़िम्मेदारियाँ उठाने और उन्हें पूरा करने के बाद थक जाता है, वह स्वाभाविक रूप से ब्रेक चाहता है। यह सोचना ज़रूरी है कि क्या छुट्टी की नीतियाँ सबके लिए एक जैसी होनी चाहिए या हर कर्मचारी की खास भूमिका और काम करने के तरीके के हिसाब से होनी चाहिए। छुट्टी देने के पीछे की वजह बताते हुए लिखित नोटिस या ईमेल—जिसमें "दूसरों को छुट्टी क्यों मिलती है और मुझे क्यों नहीं?" जैसे सवालों के जवाब हों—एक अच्छे ऑर्गनाइज़ेशनल कल्चर को दिखाता है। वर्कशॉप और सेमिनार के बारे में, क्या यह ज़रूरी नहीं है कि डिपार्टमेंट के अंदर चर्चा करके तय किया जाए कि कौन शामिल होगा, और ऐसे इवेंट का मकसद, समय, अवधि और जगह क्या होगी? क्या ऐसी चर्चाओं के संभावित असर का प्रैक्टिकल आकलन करके फ़ैसला लेना ज़्यादा समझदारी भरा नहीं होगा? अक्सर, कई लोगों को मौके नहीं मिलते, जबकि कुछ ही लोग कई वर्कशॉप में शामिल होते हैं; यह मामला डिपार्टमेंट हेड के अधिकार क्षेत्र में आता है। क्या डिपार्टमेंट हेड के लिए हर हफ़्ते या हर दो हफ़्ते में मीटिंग करना और उनकी रिपोर्ट रखना ज़रूरी नहीं है? चाहे ऑफ़िस सरकारी हो या प्राइवेट, यह आपके काम के माहौल को दिखाता है। ज़िंदगी एक सरल और अच्छी चीज़ है—एक बार जब आपके पास सब्ज़ी, दाल और चावल जैसी बुनियादी चीज़ें हों, तो ज़िंदगी खूबसूरत हो जाती है! लेकिन क्या कोई ऐसा समाज, जो सिर्फ़ अपनी ज़रूरी ज़रूरतों को पूरा करने

की होड़ में लगा रहता है, सच में एक मज़बूत काम-काज की संस्कृति (वर्क कल्चर) बनाने की कोशिश कर सकता है? आख़िरकार, ऐसी आदतें बचपन से ही पड़ जाती हैं। कम उम्र से ही बच्चों को सिखाया जाता है कि ज़िम्मेदारी का मतलब सिर्फ़ पैसे कमाना या घर-गृहस्थी संभालना है। फिर भी, ज़िम्मेदारी के कई रूप होते हैं—व्यक्तिगत जवाबदेही से लेकर कई तरह की दूसरी ज़िम्मेदारियों तक। हमें अभी इस बारे में बहुत कुछ सीखना है। जब भी मैं इतने सारे खाली ऑफ़िस देखता हूँ, तो सोचता हूँ: क्या ज़िंदगी पूरी तरह से मशीनी हो गई है? या फिर यह बस असरदार ढंग से प्लानिंग न कर पाने की समझ की कमी है? अगर इन ऑफ़िसों को बनाने में हुआ खर्च सही माना जाता है, तो वे खाली क्यों रहते हैं? कई सवाल उठते हैं, खासकर इसलिए क्योंकि हर कोई मानता है कि उसकी अपनी प्लानिंग सही है। मैंने अलग-अलग देशों के प्लानिंग कमीशन का अध्ययन तो नहीं किया है, लेकिन अपना घर असल में एक छोटा प्लानिंग कमीशन ही होता है। अगर घर ठीक से चलता है, तो किसी भी औपचारिक कमीशन का काम सिर्फ़ कागज़ों तक सीमित नहीं रहता। अक्सर, घंटों की चर्चा के बाद बनी योजनाएँ कभी भी कागज़ से आगे नहीं बढ़ पातीं क्योंकि उन्हें बिना किसी संभावित रुकावट के विश्लेषण के लागू कर दिया जाता है। ज़िम्मेदारी को मापने का अभी तक कोई तरीका नहीं है। कई जगहों पर, बेहतरीन काम करने के तरीक़े होने के बावजूद, अक्सर ज़िम्मेदार लोग मीटिंग से गायब रहते हैं, सिर्फ़ इसलिए क्योंकि उनका ईगो (अहंकार) आहत हुआ या उनकी भावनाएँ दुखी हुईं। नतीजा अक्सर पहले से ही पता होता है। नतीजतन, नए लोग अक्सर अपने काम खुद ही शुरू कर देते हैं, और उनके कामों का कोई आधिकारिक रिकॉर्ड नहीं रहता। यहाँ तक कि जब इंचार्ज किसी वजह से मौजूद नहीं होता, तो उसे इन गतिविधियों की कोई रिपोर्ट नहीं मिलती। काम बिखरे हुए तरीके से चलता रहता है, और ये लोग अलग-अलग मामलों की जानकारी अनौपचारिक रूप से हासिल करते हैं—एक ऐसा तरीका जो नई पीढ़ी के लिए सही नहीं है। काम के तय घंटे, तय छुट्टियाँ, रोज़मर्रा के और अचानक आने वाले काम, तय समय और जगह पर मीटिंग—और साथ ही उनसे जुड़ी रिपोर्ट, डिपार्टमेंट हेड को प्रेजेंटेशन और बाद में चर्चा—इसके अलावा वर्कशॉप या सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन (उनकी बारंबारता, जगह और डिपार्टमेंटल रिपोर्टिंग सहित): ये सब किसी भी क्षेत्र में काम करने का स्टैंडर्ड तरीका (SOP) बनाते हैं। क्या इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा?

दिनांक :- 1/20/20

सवाल

कक्षा शुरू हो रही थी। मुझे अपनी उम्र का एहसास नहीं था, इसलिए मैं खुद छात्र और सामने बैठा शिक्षक था। अब पढ़ाई शुरू हुई, सवाल उठे! शिक्षक बच्चों को सवाल पूछने का एहसास दिलाने में माहिर होते हैं, जिससे उन्हें खुशी मिलती है। क्योंकि बच्चों के मन में सवाल तो होते ही हैं। सवाल यह है कि उन्हें कहाँ, किससे, कैसे और किस उद्देश्य से व्यक्त किया जाए? अब आपको समझ आ रहा होगा कि इस वाक्य में कितने सवाल हैं, है ना? बच्चों के सवालों को दबाकर मेरी बात मानो, और सवालों के जवाब देकर मेरी बात मानो, क्या सोचते हो? हम कहते हैं कि बच्चे ईश्वर के घर के फूल हैं। लेकिन, क्या आपको नहीं लगता कि फूल बच्चों से ज़्यादा कीमती होते हैं? गुलाब की तरह बाँटे जाने वाले फूलों को भी सहेज कर रखा जाता है। लेकिन बच्चों को गुलाब की तरह बाँटने का तरीका बहुत अजीब लगता है। इससे भी बढ़कर, क्या गुलाब की तरह बाँटे जाने वाले बच्चे सचमुच गुलाब होते हैं? तो सवाल तो सवाल होते ही हैं, बच्चों के मन में भी, सबके मन में। चाहे गपशप हो या चुगली, जवाब यही नहीं था। इसके बजाय, मैं उन्हें देखकर ही कह देता हूँ, हम बाद में देखेंगे, यही बेहतर है। तब तक, अगर आप चाहें तो अपनी पढ़ाई जारी रखें... यही बेहतर है। शिक्षा क्षेत्र में कुछ समय काम करने के बाद, चाहे कितना भी उपहास सहना पड़े, अगर आप कोई प्रश्न पूछते हैं, तो उसका उत्तर देना आपका कर्तव्य है, यह एक ऐसी संस्कृति है जो सीखने के साथ विकसित हुई है। जानबूझकर शिक्षकों से प्रश्न पूछकर उन्हें परेशान करना और वास्तव में कोई काम न करना क्या बात है? बच्चों का चंचल और खुश रहना इस बात का संकेत है कि बच्चे जीवंत और बहुत खुश हैं। लेकिन जब काम की सीमा तय हो जाती है और यह महसूस होता है कि हमें वह करना चाहिए, तो मेरे मन में यह सवाल उठता है कि क्या शिक्षा क्षेत्र में इस जागरूकता को विकसित करना महत्वपूर्ण है या नहीं। कौन जानता है कि कितने बच्चे अपने प्रश्नों को स्वयं तक सीमित रखकर जीते हैं या जीना ही छोड़ देते हैं? एकीकृत शिक्षा प्रणाली का मुख्य हिस्सा एक ही किताब है, जो अवसर प्रदान करती है, प्रश्न देती है, पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देती है, या उन्हें उत्तर खोजने और खुशहाल और जिम्मेदार जीवन जीना शुरू करने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन इसके लिए शिक्षा, किताबें, अवसर, सवाल, जवाब, प्रयास... क्या यह एक लंबी यात्रा नहीं है? आप इसे करें, अगर हम साथ मिलें तो मज़ा आएगा, ज़रूरत पड़ने पर हम लुढ़केंगे या धक्का देंगे, अगर हम गिर जाएं तो हम संभालेंगे, गुलाब के फूल को कैसे बचाया जाए? और क्या हर कोई सोचता है कि यह मेरा गुलाब है? किस अर्थ में? कुछ

लोग ऐसे हैं जिनके पास केवल सवाल हैं, अनगिनत... ऐसे सवाल जिनका हल निकालना है, उन्हें छोड़ना नहीं है।

दिनांक :- 1//

कारण और शिकायतें

बचपन टिशू पेपर की तरह होता है; यह पहले सब कुछ सोख लेता है और बाद में उस पर प्रतिक्रिया देता है। जो बड़े लोग अपने बचपन की जिज्ञासा को बचाए रखते हैं, वे इस बात से सहमत होंगे। बच्चे कई चीज़ों को देखते और सुनते हैं, जो कुछ भी उपलब्ध हो उसका स्वाद चखते हैं, और जिसे भी छूते हैं उसका अनुभव करते हैं। इन अनुभवों से उनके मन में कई सवाल उठते हैं—क्या, क्यों, कब, किस मकसद से, किसके लिए, कितना और कैसे। जो बच्चे एक समय में एक ही विषय पर ध्यान केंद्रित करते हैं और ऐसे सवाल पूछते हैं, वे उन बच्चों की तुलना में अधिक आत्मविश्वासी होते हैं जो एक साथ कई चीज़ों को पढ़ने की कोशिश करते हैं। जब उनके सामने खाने की कई चीज़ें, कपड़े या दोस्त होते हैं, तो वे अक्सर यह तय करने में संघर्ष करते हैं कि क्या चुनें क्योंकि उनका "सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट" (CPU)—यानी उनका दिमाग—कुछ समय के लिए रुक जाता है या "जाम" हो जाता है। जो बच्चे एक साथ कई विषयों को पढ़ने और उनके साथ प्रयोग करने का आनंद लेते हैं, उन्हें अक्सर मानसिक उलझन या "जाम CPU" का अनुभव होता है। हालाँकि, जो व्यक्ति बिना किसी विशेष उपकरण के इस मानसिक उलझन को दूर करता है, वही असल कारणों को स्पष्ट करता है और शिकायतें भी बताता है। यह प्रक्रिया काम की गुणवत्ता में सुधार करती है। हालाँकि इसका शरीर पर असर पड़ता है, लेकिन व्यक्ति को दूसरों को बिना दुख पहुँचाए उन्हें समझने की समझ मिल जाती है। वे दूसरों पर भड़क सकते हैं—भले ही कुछ समय के लिए—और शिकायतें कर सकते हैं; ऐसा उन लोगों के साथ भी होता है जो एक ही विषय पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इसीलिए फीडबैक सिस्टम इतना मूल्यवान है। क्या कोई स्कूल में शिक्षकों को फीडबैक देने की हिम्मत करेगा? यह केवल वहीं संभव है जहाँ *तेजस्विना विधितमस्तु, मा विद्विषावहै* (हमारी सीख शानदार हो; हम एक-दूसरे के प्रति बुरी भावना न रखें) के सिद्धांत को अपनाया जाता है। फिर भी, इसका मतलब यह नहीं है कि सिर्फ़ इसलिए कि मैं आपसे आगे निकल गया हूँ, मैं "महान" बन गया हूँ। किसी को उस विशेषज्ञ को कभी नहीं भूलना चाहिए जिसके मार्गदर्शन और स्नेह ने उसे आगे बढ़ने में मदद की। हमें बच्चों के सवालों को केवल शिकायत या नाराजगी नहीं समझना चाहिए। मेरे पिता मुझे बताते थे कि बच्चे हमसे कहीं ज़्यादा काबिल होते

हैं; वे मुश्किल हालात में भी सीखते हैं। वे किताबें तब भी पढ़ते थे जब उन्हें वे पूरी तरह समझ नहीं आती थीं, और जो कुछ भी वे समझते थे, उसे उत्साहपूर्वक दूसरों को बताते थे। उन्होंने मुझे कभी भी सवाल न पूछने या मेरे किसी भी सवाल के जवाब में चुप रहने के लिए नहीं कहा। स्कूलों में, हम अक्सर हंगामा करने वाले बच्चों को "बेकाबू" कह देते हैं या अनुशासन बनाए रखने के लिए उन्हें डंडे से मारते या उन पर चिल्लाते हैं। कोई मुझसे कह सकता है, "सिर्फ़ इसके बारे में लिखो मत; खुद एक क्लास चलाकर देखो।" फिर भी, अपने घर में दो बच्चों—एक लड़का और एक लड़की—को देखकर मुझे एहसास होता है कि बच्चे सबसे पहले ज़िंदगी को पूरी तरह जीना चाहते हैं; सीखना तभी होता है जब वह स्वाभाविक रूप से हो—या शायद, वे औपचारिक तरीके से सीखना ही नहीं चाहते। हम उन्हें धमकियों और दबाव वाले घरेलू माहौल से स्कूल, फिर काम की जगह और आखिर में उनकी निजी ज़िंदगी में धकेल देते हैं। हम सचमुच अपने जीवन के अनुभवों से पैदा हुई चिंताओं को अपने बच्चों पर थोपते हैं और ज़ोर देते हैं कि यही सुरक्षा का रास्ता है। हालाँकि, सुरक्षा का स्वरूप ही बदल गया है, क्योंकि अब हमें बाघ या शेर जैसे खतरों का सामना नहीं करना पड़ता। इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चे असुरक्षित या असभ्य ज़िंदगी जिएं; बल्कि, खुशहाल और ज़िम्मेदार ज़िंदगी जीने के लिए उनके सवालों का जवाब मिलना ज़रूरी है—बशर्ते उनके मन में सवाल हों। बेशक, जो कहा जाए उसे बस मान लेने का एक सुरक्षित और अनुमानित रास्ता हमेशा होता है। लेकिन यह कहना बंद करें कि वे "बात नहीं मानते।" इसके बजाय, जो बच्चे बात नहीं मानते, उन्हें अपनी ज़िम्मेदारी खुद लेने दें। उन्हें साफ़-साफ़ बताएं कि आप अब उनका खर्च नहीं उठा सकते; उन्हें अपनी परवरिश की ज़िम्मेदारी खुद लेने दें। कम से कम, वे कुछ नया तो कर सकते हैं। जो बच्चे अपनी ज़िम्मेदारी खुद लेते हैं, उन्हें पहचानें और उन्हें शक या गलत नज़रिए से न देखें। मुझे नहीं पता कि ऐसे कितने लोग हैं, लेकिन समाज में आँखें खोलकर रहने वाले हम लोगों को ऐसे बच्चों को हतोत्साहित या परेशान नहीं करना चाहिए। आज भी, जब मेरी बेटी मुझे बताती है कि उसे डंडे से मारा गया, तो मैं पूछता हूँ, "क्या तुमने टीचर से पूछा कि *क्यों*?" जैसे अनुशासन सिखाना टीचर का फ़र्ज़ है, वैसे ही यह देखना कि कोई स्टूडेंट किसी काम में कितना समय ले रहा है—और उनसे इसके बारे में पूछना—भी पढ़ाई-लिखाई जितना ही ज़रूरी है। अगर हम सभी को सामाजिक अनुशासन के दायरे में लाकर कुछ हासिल करना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले स्टूडेंट्स का दिल जीतना होगा। कई स्कूल स्टूडेंट्स पर क्लासवर्क और होमवर्क का बहुत ज़्यादा बोझ डालते

हैं। जो बच्चे इसे करना चाहते हैं, उन्हें अपनी मर्ज़ी से करने दें; अगर वे इच्छुक हों, तो उन्हें और ज़िम्मेदारियाँ दें। कुछ बच्चों को बस अपनी ज़िंदगी चलाने के लिए साधनों की ज़रूरत होती है, और वह मौका बनाना भी एक ज़िम्मेदारी है। वे भी अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ेंगे। लड़के-लड़कियाँ बहुत सारे सवाल पूछते हैं; उन्हें उनके जवाब मिल पाने चाहिए। एक बहुत अच्छा माहौल बनेगा क्योंकि मैं आशावादी हूँ। स्कूलों में कभी-कभी खास तौर पर सवाल-जवाब का सेशन होना चाहिए। बच्चों को अपनी बात कहने की ज़रूरत होती है, न कि सिर्फ़ चुपचाप सुनने की। इससे वे सिर्फ़ बहाने बनाने और शिकायतें करने से आगे बढ़ पाते हैं। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मेरे मन में भी बहुत सारे सवाल थे—जैसा कि हर किसी के मन में होते हैं। अक्सर, हमारा दिमाग 'जाम' हो जाता है—जैसे कोई जमा हुआ CPU—जिससे हम चीज़ों को साफ़-साफ़ नहीं समझ पाते; इसीलिए हम दूसरों को दुख पहुँचाते हैं, अक्सर अनजाने में। वरना, दूसरों को दुख पहुँचाना इंसानी फ़ितरत नहीं है। मुझे बचपन से ही सीखने का शौक रहा है। मुझे एहसास हुआ कि ज़िंदगी चाहे कितनी भी तेज़ हो जाए या हालात कितने भी मुश्किल हों, अगर आप अपनी अंदर की आवाज़ सुनते हैं, तो आप सच में खुश रहेंगे। हम ज़रा सी भी मुश्किल पसंद नहीं करते। हालाँकि, मेरा मानना है कि जो कोई भी मौजूदा हालात में अपनी अंदर की आवाज़ सुन सकता है, वह न सिर्फ़ कुछ सार्थक बनाता है, बल्कि कई दूसरे लोगों के लिए सहारा भी बन जाता है। ऐसे व्यक्ति से नाराज़ होने से हमारा ही नुकसान होता है। आइए बच्चों के सवालों, वजहों और शिकायतों को सुनें; मकसद उन्हें उसी सोच में फँसाए रखना नहीं है, बल्कि उन्हें अपनी ज़िम्मेदारी खुद उठाने के लिए मज़बूत बनाना है। वरना, हम बस उसी ढर्रे पर चलते रहते हैं—या तो दूसरों के बहाने और शिकायतें सुनते रहते हैं या अपनी बातें कहते रहते हैं। जो टीचर या नेता अपनी ज़िंदगी सिर्फ़ सुनने (या बातें करने) में बिता देते हैं, वे अक्सर अपनी ज़िंदगी को सही मायनों में जी नहीं पाते। हमें ऐसा नहीं होने देना चाहिए। इसलिए, यह बहुत अच्छा होगा अगर स्कूल और घर, दोनों जगह रचनात्मक काम हो। क्या बच्चे शुरू में हर चीज़ पर सवाल उठाते हैं? अगर बड़े जवाब नहीं देना चाहते, तो वे अक्सर बच्चे से बस वही करने को कहते हैं जैसा बताया गया है। असल में, बच्चे उस तरीके से कभी पूरी तरह सहमत नहीं होते। जो लोग बच्चों की सोच को अच्छी तरह समझते हैं, वे कुछ ऐसा कहते हैं जिससे—भले ही बच्चे उसे पूरी तरह न समझें—वे कुछ समय के लिए तो मान ही जाते हैं। कम से कम, उस समय के लिए बार-बार सवाल पूछना या ज़िद करना बंद हो जाता है। कुछ बच्चों के साथ ऐसा होता

है। लेकिन कुछ और लोग भी हैं—'सच्चाई की तलाश करने वाले'—जो बस अपना काम करते रहते हैं। आप चाहें तो शिकायत कर लें।

अक्सर, "क्यों?" सवाल का कोई जवाब नहीं होता, और यहीं से संघर्ष शुरू होता है। जिन्होंने सच में ज़िंदगी के सभी उतार-चढ़ाव देखे हैं, उन्हें समझ आता है कि शिकायत करने का विचार—किससे, किस बारे में और कब शिकायत करें—आखिरकार बेमानी हो जाता है। कुछ छोटे बच्चों पर बहुत ज़्यादा दबाव डाला जाता है और उन्हें बहुत सारा ज्ञान हासिल करने के लिए मजबूर किया जाता है। मैं सोचता हूँ, ऐसा क्यों है? क्या ये बच्चे बड़े होने पर भी यही सोच नहीं रखेंगे और वैसा ही व्यवहार नहीं करेंगे? इसके उलट, जिसने सच में खुशी भरे माहौल में थोड़ा सा भी ज्ञान पाया है, वह सोचता है, "ऐसा क्यों है?" बच्चे के "क्यों?" को दबाने का मतलब है, असल में बच्चे को ही दबाना। नतीजा यह होता है कि कई बच्चे बिल्कुल भी नहीं बोलते, जबकि दूसरे बिना सोचे-समझे या गलत तरीके से बोलते हैं। शिकायतों को दूर करने वाले सेंटर्स से भरा समाज —जो मशरूम की तरह हर जगह उग रहे हैं—एक बिखरे हुए और टूटते हुए सामाजिक ढांचे को दिखाता है। दूसरी ओर, ऐसा समाज जहाँ शिकायत करने का कोई ज़रिया ही न हो, वह बहुत ज़्यादा सेंट्रलाइज़ेशन और चुपचाप, दबी हुई ज़िंदगी जीने वाले कल्चर को दिखाता है। इन सबके पीछे कई कारण हैं: ज़िंदगी के बारे में हमारी सोच, ज्ञान की प्रकृति (चाहे वह मिला हो या खुद हासिल किया गया हो), हाथों और दिमाग के लिए सार्थक काम की कमी, और इंसानी रिश्तों का कमज़ोर होना। ट्रेन के सफ़र में ऐसे लोग मिल सकते हैं जो पढ़-लिख नहीं सकते, फिर भी प्यार से अपना सादा खाना दूसरों के साथ बांटते हैं; ऐसा देखकर उनके कल्चर की प्रकृति के बारे में सोचने का मन करता है। दोबारा मिलने की कोई गारंटी न होने पर भी, वे सिर्फ़ दयालुता की वजह से ऐसा करते हैं। उन्हें कभी 'पद्म' सम्मान जैसे अवॉर्ड नहीं मिलते। फिर भी, मन में यह बात आती है: क्या लोगों का एक ऐसा ग्रुप भी है जो बिना किसी आभार के, बस दूसरों की प्लेट में खाना परोस देता है? रिश्ते ही असल में शिकायतों को दूर करने के केंद्र हुआ करते थे। ज़िंदगी के कई दौर गुज़रने के बाद ही यह समझ आता है कि एक औरत—चाहे वह आपकी दादी हो या कोई अजनबी—आपको प्यार से खाना खिलाती है। जो लोग गुलामी वाले कल्चर में पले-बढ़े हैं, उनके लिए भावनात्मक सुकून के ये असली केंद्र समझ से बाहर होते हैं। कुछ लोगों ने अपनी सुविधा के हिसाब से कल्चर के अलग-अलग पहलुओं का मतलब निकाल लिया है। जो लोग बहुत सादी ज़िंदगी जीते हैं और फिर भी इतना सारा असली काम करते हैं, वे

अपने अपनों से प्यार और सम्मान पाने के हकदार हैं—चाहे उन्हें इसका एहसास हो या न हो। कई लोगों को शिकायत करने की आदत पड़ जाती है, सिर्फ़ इसलिए क्योंकि उनकी शिकायतों को लगातार सुना जाता है। इसके उलट, कई समझदार लोग ऐसे भी होते हैं जो दूसरों को धोखा देते हैं, फिर भी उन्हें कोई शिकायत नहीं मिलती। अच्छे रिश्ते एक सुंदर समाज की पहचान होते हैं। आइए, शिकायतों की प्रकृति और उनके साथ अपने रिश्तों पर विचार करें।

दिनांक:- 12/202/202

आपने किसी के साथ कैसा व्यवहार किया?

मैंने बस में चढ़ने की कोशिश की। कई लोग समझते हैं कि मैं नहीं चढ़ सकती, लेकिन मैंने थोड़ा धक्का दिया, औरत है या मर्द? पहले तो कोई फर्क नहीं पड़ता। चलो बैठ जाओ। मैं समझ गई, ओह! यहाँ औरतें भी थीं। हाँ। धीरे-धीरे मेरा हौसला बढ़ा। धीरे-धीरे बच्चे देख रहे थे। ठीक है... फिर एक अच्छी दिखने वाली लड़की, उसे जानते हुए, धीरे से धक्का दिया। (उसे क्यों उतार रहे हैं, वो 30 साल की है, अभी तक सुधरी नहीं है, क्यों? वो अच्छी है या कैसी? किसकी? किस स्तर की है?) बस में हमेशा धक्का-मुक्की होती रहती है। सड़कें कैसी हैं? किसी ने उसे चुटकी काटी। बस चल पड़ी। चढ़ने का मामला अभी खत्म नहीं हुआ है। क्या तुम चढ़ना चाहते हो? हम नहीं? फिर बगल में एक लड़का, कृतज्ञता का भाव। बैठ जाओ, बैठ जाओ, जब सीट न हो तो उठो मत, बगल में बैठ जाओ। चढ़ते समय कुछ हो भी जाए तो लाइन में इंतजार नहीं करना पड़ेगा। और इसका हल है चार पहियों का इस्तेमाल! नहीं, मेरी किसी कंपनी से कोई दुश्मनी नहीं है। बात यह है कि क्या आपने कभी बसों में सफर करने का मकसद समझा है? उनके सही इस्तेमाल के लिए कौन ज़िम्मेदार है? और बसों में सफर करने वाले 60% लोग कम से कम एक बार स्कूल तो गए ही होंगे। क्या उन्होंने स्कूल में कुछ नहीं सीखा? अगर हमारा खाना अधूरा रह जाता है, तो हम दूसरों की थालियों को देखते हैं। लगातार होने वाले मज़ाकों का निशाना वही होती है। और फिर वो मैं/वो नहीं होती। चलिए इस पर गौर करते हैं। सीट हथियाने वाली औरत ही होती है! ये हर जगह है। कौन जानता है कि कहीं कोई अपवाद तो नहीं है। कई जगह ये सवाल उठता है कि मैंने बार-बार क्या गलती की? श्रेष्ठता का ये एहसास कहाँ तक पहुँच जाता है? हमें किन सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करना होगा, वे कैसे पैदा होती हैं, कौन, कैसे और किस तरह से उनका समाधान करता है। मैं आपको दिखावे और अगले भाग के बारे में नहीं बताऊँगा, हमें अपना खुद का रास्ता खोजना होगा। प्यार में कोई दिखावा नहीं

होता। हम आज के ज़माने के हिसाब से ढलने वाले व्यक्ति की बात नहीं करेंगे। लेकिन सादा जीवन जीते हुए, आइए याद रखें कि हम सबसे पहले खुद को जानते हैं। हमने किससे बात की? हमने क्या किया? क्यों? कैसे? कहाँ... किसी बात पर पछतावा करने का क्या मतलब होता है? एक मरता हुआ पेड़ किसी दूसरी परिस्थिति में मर जाएगा या जीवित रहेगा। आइए देखते हैं वह परिस्थिति क्या है।

दिनांक :- 1//

आपकी उपस्थिति का अनुरोध किया जाता है।

एक समय की बात है, एक चहल-पहल वाला शहर था। वहाँ प्यार, सम्मान, शांति और सहयोग का माहौल था—साथ ही, उन लोगों को सही राह दिखाने का रिवाज़ भी था जिन्हें असलियत का एहसास कराने की ज़रूरत होती थी। एक समय था जब किसी कार्यक्रम में किसी का आना बहुत ज़रूरी माना जाता था। लेकिन फिर यह सोच आ गई कि "समय बदलता रहता है; यह *कलयुग* है—इस मुसीबत को यहाँ क्यों बुलाएँ?" आजकल, जब कोई मशहूर हस्ती स्कूल, कॉलेज या दफ़्तर आती है, तो उनके स्वागत के लिए ज़ोर-शोर से तैयारियाँ की जाती हैं। हर किसी का काम करने का अपना तरीका होता है, और यहाँ बात उसकी नहीं है। लेकिन विडंबना यह है कि अगर किसी के काम करने का तरीका ज़्यादा मशहूर नहीं है, तो भावना यह बन जाती है कि "आपकी मौजूदगी चाहिए" के बजाय "यह मुसीबत क्यों आ गई?" ऐसा इसलिए होता है क्योंकि लोग उस व्यक्ति को ठीक से जानते नहीं हैं। लोग या तो डर जाते हैं या बहुत ज़्यादा घुल-मिल जाते हैं; वे या तो दूरी बनाए रखते हैं या लगातार बातें करते रहते हैं—फिर भी, चाहे तरीका कोई भी हो, बातचीत चलती रहती है। जो शिक्षक रोज़ क्लास लेते हैं, वे कभी-कभी इतने उबाऊ लग सकते हैं कि छात्र अक्सर छुट्टी की कामना करते हैं। फिर भी, अगर आप हाज़िरी का रिकॉर्ड देखें, तो शायद ही कोई गैर-हाज़िर होता है; बस यूँ ही कह दिया जाता है कि "सब मौजूद हैं।" (बेशक, यह सोचने के लिए कि छात्र उनसे मिलने आ रहे हैं, मज़ा करने आ रहे हैं या सच में कुछ सीखने आ रहे हैं, शिक्षक के पास दिमाग या दिल का होना ज़रूरी है।) शिक्षक का मन छुट्टी देने का हो सकता है, लेकिन डेस्क पर बैठते ही यह चिंता सताने लगती है: "क्या वे सच में घर या हॉस्टल में उन अधूरे सवालों को हल करेंगे?" कुछ लोग कहेंगे, "इन छात्रों को तो पहले से ही नौकरी मिल चुकी है; आप दिन भर इतनी मेहनत क्यों करते हैं?" क्या परीक्षा पास करने से पहले नौकरी पक्की होने का मतलब यह है कि हमें छात्रों को इतना तार्किक बनाना चाहिए कि वे बीज बोते ही फ़सल की सही पैदावार का अंदाज़ा लगा

सकें? नतीजे का इंतज़ार करते समय सूखे होंठों का एहसास याद आता है—यह सोचकर कि कहीं किसी विषय में फेल तो नहीं हो गए। वे दिन ऐसे लगते थे जैसे अचानक कोई ज़ोरदार झटका धीरे से लगा हो। असली इम्तिहान हमें मज़बूत बनाते हैं। मैंने कभी किसी से बदला लेने के बारे में सोचा भी नहीं। लेकिन क्या हो अगर कोई परीक्षा ही न हो? सच कहूँ तो: अक्सर इंसान को सिर्फ़ ऊपरी खुशियाँ ही मिलती हैं। कई लोग ऐसी स्थितियों से गुज़रते हैं जहाँ वे सोचते हैं, "मैं यहाँ आया ही क्यों?" यह ख्याल शॉल, गुलदस्ते, माला और दूसरे तोहफ़े जैसे सम्मान मिलने पर भी मन में आता है। इंसान खुद से पूछता है, "मैं आज यहाँ क्यों आया?" जब हर तरफ़ तारीफ़ हो रही हो लेकिन काम की जगह पर नकारात्मक प्रतिक्रिया मिले, तो इंसान सोचता है कि असल में कहाँ गड़बड़ हुई होगी। यह घर के मुखिया या घर संभालने वाले की उस आदत जैसा है जिसमें वे बार-बार यह पक्का करते हैं कि दरवाज़ा ठीक से बंद है या नहीं। कुछ लोग इस तरह के आदी हो जाते हैं कि—जैसे पैसे चेक करने के लिए हाथ अपने-आप जेब में चला जाता है—वे लगातार इस बात की चिंता करते रहते हैं कि कहीं उनसे कोई गलती तो नहीं हो गई। मुझे कभी नहीं लगता कि लोग स्वभाव से ही "गलत" होते हैं; मायने यह रखता है कि किन हालात ने उन्हें ऐसा बनाया है। बहुत से लोगों ने—शायद सभी ने नहीं—राहत का वह पल महसूस किया होगा जब कोई ज़रूरी मौजूदगी वाला कार्यक्रम आखिरकार खत्म होता है और वह मुश्किल घड़ी टल जाती है।

दिनांक :- 14/202/2020

मकर संक्रांति

बच्चे बड़े होकर यह सोचते हैं कि यह एक ऐसा त्योहार है जो उन्हें तिल बाँटने के द्वारा रिश्तों में प्रेम और बंधन बनाए रखना सिखाता है। इस दिन महिलाएं एक-दूसरे को अपने घर आमंत्रित करती हैं, उपहार देती हैं, बातें करती हैं और नई ऊर्जा के साथ अपना काम फिर से शुरू करती हैं। ऐसे कार्यक्रमों के माध्यम से घर और दफ्तर में मतभेदों को कम करने और एक खुला और अच्छा सांस्कृतिक वातावरण बनाने का प्रयास किया जाता है। मन हमेशा कुछ न कुछ चाहता रहता है। जरूरी नहीं कि वह चीजें ही चाहे। लेकिन मैंने अपने अनुभव से लिखा है कि इस इच्छा के कारण कितने कर्तव्य उपेक्षित हो जाते हैं। एक स्त्री भावनाओं का विशाल भंडार है। यदि इन भावनाओं को सही दिशा दी जाए तो ठीक है, अन्यथा, जैसे कोई नदी उग्र रूप ले लेती है, वैसे ही कुछ न कुछ हो जाता है। स्वयं का ध्यान रखते हुए कर्तव्यनिष्ठ होना जीवन की एक बहुत बड़ी परीक्षा है। ऐसा करते हुए, मुझे यह भी नहीं पता चलता कि मैं

अपना कर्तव्य कैसे पूरा करती हूँ। कर्तव्यनिष्ठ होते हुए भी, ऐसी भावनाओं को मन पर हावी न होने देना, एक प्रकार का कर्म योग है। भारतीय संस्कृति का हर त्योहार मुझे बहुत प्रिय है। क्योंकि हर त्योहार विचारों और भावनाओं का संगम है। मकर संक्रांति भी ऐसा ही एक त्योहार है। आज से हर महिला को अपनी भावनाओं को बदलने का पहला संकल्प लेना चाहिए। मैं इसकी शुरुआत करूंगी और स्वयं से यह प्रयास करूंगी। फूल देना धन का प्रदर्शन नहीं है। फूल स्मृति का प्रतीक हैं। भले ही हम एक-दूसरे से मिलें और नए संकल्प लें, त्योहार मनाया जाता है। आज सरकार, माता-पिता और दादा-दादी की कृपा से हर किसी के पास त्योहार मनाने की शक्ति है। यदि हम अपनी संस्कृति को साथ-साथ मनाते हुए, अपनी जीवनशैली और कार्य संस्कृति को उज्ज्वल तरीके से मनाते हुए अपनी संस्कृति को संरक्षित और समृद्ध करें, तो हम स्वयं को विजयी महसूस करेंगे। एक भारतीय होने में कोई शर्म नहीं है। मेरी यही कामना है कि यह त्योहार हर्षोल्लास से मनाया जाए।

दिनांक :- 1/20/20

आत्मचिंतन

किसी विषय या घटी हुई घटना पर लगातार चर्चा करने की आदत होती है। इसमें कई समस्याएं हैं। कभी आप अपनी गलती समझना चाहते हैं, कभी उसे स्वीकार करना चाहते हैं, कभी बच्चों को सही-गलत समझाना चाहते हैं, कभी चर्चा बस चलती रहती है। यहां तक कि जब कोई विषय न भी हो, तब भी आपको पता नहीं चलता कि ऐसा हो रहा है। हम सब बहुत बातूनी हैं। हम खुद भी बच्चों से कुछ न करने की उम्मीद करते हुए ऐसी ही गलती कर बैठते हैं। आत्म-चिंतन नहीं होता। बल्कि, इसके लिए इच्छाशक्ति चाहिए होती है। मन की चाल और आदत ऐसी है कि मैं उस पल सब कुछ खुद से कह देता हूं। आत्म-चिंतन से हम बहुत कुछ सीखते हैं। मैंने बचपन से ही हर दिन खुद को नए सिरे से जानने का ऐसा अनुभव किया है। दूसरे मुझ पर हंसते हैं, कुछ बातें मैं समझता हूं, कुछ नहीं समझता। और इस सफर में, अगर राहगीरों को पता न हो कि हम किस रास्ते जा रहे हैं, तो गलत गाड़ी में बैठकर गलत रास्ते पर जाने की संभावना बहुत अधिक होती है, है ना? यात्रा पर निकले यात्री एक-दूसरे को धक्का देकर बस में चढ़ जाते हैं। कुछ लोग अकेले जाना चाहते हैं, जबकि कुछ लोग किसी के साथ रास्ता ढूंढते हैं। यह एक प्रकार का आत्म-चिंतन है।

यह वैसा ही है जैसा दूसरे सोचते हैं। क्योंकि हमारी सामाजिक चेतना और इच्छा यही है कि दूसरे हमारे जैसे हों। लेकिन हम यह नहीं समझ पाते कि सबकी यात्रा कहाँ से शुरू

हुई या किसने कौन सा स्टेशन पकड़ा। आत्म-चिंतन जैसा सुखद और निःशुल्क मार्गदर्शक बाज़ार में नहीं मिलता। यह निःशुल्क तो है, लेकिन फिर भी इसकी पूरी कीमत चुकानी पड़ती है।

दिनांक:- 16/20/2002

बच्चे कैसे पैदा होते हैं?

क्या अच्छी आदतें हमेशा फायदेमंद होती हैं? हाँ, ये बच्चे के चरित्र को आकार देने का पहला कदम हैं। हालाँकि, जो आदत एक स्थिति में 'अच्छी' मानी जाती है, वह दूसरी स्थिति में सही नहीं हो सकती, जिससे बच्चे परेशान और उलझन में पड़ सकते हैं। इसलिए, बच्चों को कुछ हद तक खुद सोचना सीखने की ज़रूरत है। जिन बच्चों को हमेशा बहुत ज़्यादा सुरक्षा दी जाती है—जिनकी गलतियों को बताने के बजाय नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है—वे अक्सर अपने साथियों के प्रति दबदबा बनाने वाला रवैया अपनाते हैं, जिससे दूसरे बच्चे डरा हुआ या दबा हुआ महसूस करते हैं; इस तरह ऐसे व्यक्तित्व गुण पनपते हैं। बहुत ज़्यादा दबाव झेलने वाले बच्चे अक्सर बागी हो जाते हैं, छोटी-छोटी बातों पर परेशान हो जाते हैं, या अपनी बात मनवाने के लिए किसी का भी फायदा उठाना सीख जाते हैं—अक्सर अपनी बात मनवाने के लिए लगातार रोते रहते हैं। जिन लोगों को बचपन में बहुत सारे काम करने पड़ते थे, वे अक्सर बाद की ज़िंदगी में दूसरों से अपने काम करवाने का हक समझते हैं; जब ऐसा नहीं होता, तो वे ऐसी कड़वी बातें कह सकते हैं जिनसे दूसरे हैरान रह जाते हैं। इसलिए, छोटे बच्चों को सही दिशा देना आसान नहीं है। जिन बच्चों को सब कुछ आसानी से मिल जाता है, उनमें अक्सर खुद कुछ करने की इच्छाशक्ति की कमी होती है। इस श्रेणी के लड़के अपना बिस्तर ठीक नहीं करते, गद्दे पर खाने के टुकड़े छोड़ देते हैं, और चिड़चिड़े हुए बिना छोटे-छोटे काम करने से भी मना कर देते हैं; वे किसी से भी (लड़कियों सहित) गलत तरीके से बात कर सकते हैं और दूसरों की पढ़ाई में तरक्की से चिढ़ सकते हैं, अक्सर दूसरों से अपना स्कूल का काम पूरा करने की उम्मीद करते हैं। लड़के अपनी बहनों को लगातार परेशान कर सकते हैं (हालाँकि सभी ऐसा नहीं करते)। ऐसी स्थिति में लड़कियाँ घर को अस्त-व्यस्त रख सकती हैं, उनमें खाना पकाने के कौशल की कमी हो सकती है—या तो इसलिए कि उन्हें कभी खाना पकाने नहीं दिया गया या उन्होंने कभी कोशिश ही नहीं की—वे अपने कपड़े ठीक से नहीं रखतीं, छोटे भाई-बहनों की अनदेखी करती हैं, बड़ों से बदतमीज़ी से बात करती हैं, और घर के बाहर अपनी अहमियत साबित करने की कोशिश करती हैं; वे यह सोच सकती हैं कि पढ़ाई-

लिखाई से कोई फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि शादी तो होनी ही है—और यह सब भविष्य के पति पर छोड़ देती हैं। बहुत से लोग कह सकते हैं कि ज़माना बदल गया है और अब चीज़ें अलग हैं। फिर भी, असली प्रोफेशनलिज़्म की अभी भी कमी है। अगर हम ऐसी पीढ़ी देखना चाहते हैं जहाँ प्रोफेशनलिज़्म और इंसानियत साथ-साथ चलें, तो सिर्फ़ एक स्कूल या एक परिवार की कोशिश काफ़ी नहीं होगी; सभी को योगदान देना होगा। बच्चों को बुनियादी कौशल सीखने के साथ-साथ इंसानियत भी विकसित करनी चाहिए, बड़ों का सम्मान करना सीखना चाहिए और काम-काज के प्रति समझदार बनना चाहिए। वरना, ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जिनमें लोगों के पास बहुत ज्ञान तो होता है लेकिन वे एक रुपया भी नहीं कमा पाते, जबकि दूसरे लोग—जिनमें शायद खास हुनर की कमी हो—सफल बिज़नेस ओनर बन जाते हैं। बच्चे इस विरोधाभास को देखते हुए बड़े होते हैं, और इस प्रक्रिया में वे अपनी इंसानियत खो देते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि शाही परिवारों के सदस्यों को भीख मांगने की नौबत आ जाए; बल्कि, मेरा मानना है कि उन पर ज़्यादा सामाजिक ज़िम्मेदारी होती है। बिज़नेस का विस्तार इस तरह से करना ज़रूरी है कि दूसरों को भी साथ लेकर चला जा सके। (शाही परिवारों का विषय अलग है; मुझे इसके बारे में सिर्फ़ पढ़ने से जानकारी मिली है, निजी अनुभव से नहीं।) हालाँकि, हमें यह समझने के लिए इंतज़ार नहीं करना चाहिए कि कोई पीढ़ी कब और कैसे भटक जाती है—अक्सर ऐसा तब होता है जब बिज़नेस सिर्फ़ कमीशन पर बढ़ते हैं, जबकि हाथ खाली और अनुत्पादक रहते हैं। इसलिए, अगली पीढ़ी को सही दिशा देने के काम में उन लोगों की भूमिका अहम है जिनके पास औपचारिक शिक्षा या व्यावहारिक, वास्तविक दुनिया का अनुभव है; उन्हें स्कूलों और कॉलेजों में अपना ज्ञान साझा करना चाहिए और संस्थानों को ऐसे लोगों को पढ़ाने के लिए नियमित रूप से आमंत्रित करना चाहिए। कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि बच्चे समाज से क्या सीखेंगे। असली पीढ़ी-निर्माण का अर्थ है खास, बिज़नेस-ओरिएंटेड हुनर हासिल करना और उन्हें अपने करीबी दायरे में साझा करना। वरना, इस बात का जोखिम रहता है कि बच्चा भटक सकता है, बागी हो सकता है, या बस उतना ही करना सीख सकता है जितना ज़रूरी हो। अगर हम अगली पीढ़ी के लिए कुछ करना चाहते हैं, तो हमें खुद कदम उठाने होंगे। यह उन्हें बने-बनाए महल सौंपने के बारे में नहीं है; यह एक खुशहाल, ज़िम्मेदार सोच विकसित करने के बारे में है। उस सोच के साथ, वे कुछ भी बना सकते हैं—चाहे महल हों, उद्योग हों या खेत। अगर उन्हें समझदार, परिपक्व लोगों का मार्गदर्शन और साथ मिले, तो वे कभी

गलत रास्ते पर नहीं जाएंगे। कुछ लोगों को "मैं जो कहता हूँ वही परम सत्य है" वाला रवैया पसंद नहीं आता। ऐसे बच्चों की पहचान जल्दी करना और उन्हें सही मार्गदर्शन देना ज़रूरी है, क्योंकि अक्सर उन्हें सामाजिक समर्थन नहीं मिलता—समुदाय की तो बात ही छोड़िए, कभी-कभी उन्हें घर पर भी समर्थन नहीं मिलता। कई माता-पिता अफ़सोस करते हैं, "हमने सब कुछ दिया—खाना, रहने की जगह और भी बहुत कुछ; हमसे कहाँ कमी रह गई?" इतनी बड़ी आबादी के बावजूद, हमारा सामाजिक परिवेश बेहतर होना चाहिए। हम ऐसा क्यों नहीं कर पाते? अक्सर, बच्चे का मन किसी दूसरी दिशा में होता है, फिर भी हम उन्हें किसी खास सांचे में ढालने की कोशिश करते हैं। यह उन्हें फंसाने के बारे में नहीं है; अगर माता-पिता और शिक्षक इन बच्चों की ज़िम्मेदारी मिलकर उठाएं, तो उनकी ज़िंदगी को सही आकार दिया जा सकता है। इसके लिए बहुत कुछ करने की ज़रूरत नहीं है—बस अपनी ड्यूटी ठीक से निभानी है: क्लास लेना, हर दिन छात्रों से सार्थक बातचीत करना, पुरानी समझ को बनाए रखते हुए समाज के नए क्षेत्रों के बारे में जानकारी रखना, और बच्चे की काबिलियत को पहचानकर सही समय पर सही सलाह और मार्गदर्शन देना। क्या इससे एक आत्मनिर्भर, ज़िम्मेदार और अच्छे मूल्यों वाली पीढ़ी तैयार नहीं होगी? मुझे यकीन है कि होगी। हर स्कूल में बच्चों की दिलचस्पी के क्षेत्रों के लिए एक कैलेंडर होना चाहिए। भले ही छात्र उसे मानें या न मानें, लेकिन स्कूल को उन्हें यह मौका ज़रूर देना चाहिए। इसमें क्षेत्रवाद या "मेरा काम हो गया" वाली सोच के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। अनुशासन थोपने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी; यह अपने आप आएगा। शिक्षकों को भी अपने पेशे में आज़ादी का एहसास होगा—इसे सिर्फ़ रुतबे या सम्मान के लिए नहीं चुना जाएगा। बच्चों को सही ढंग से ढाला जाएगा, और लगातार निगरानी की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। हमें उस ज़बरदस्त आत्मविश्वास की ज़रूरत है—और बच्चों को भी। क्या हम कभी रुककर सोचते हैं कि हम अपने छोटे बच्चों को किसके हाथों में सौंप रहे हैं? बच्चे को सही आकार देना उतना ही ज़रूरी है जितना कि अपने अस्तित्व को बचाए रखना। नौकरी करने वाली माँ को अपने छोटे बच्चों को किसी और की देखरेख में छोड़ने से पहले दो बार सोचना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि उसे घर पर ही रहना चाहिए; बल्कि, यह इसमें शामिल सभी लोगों के लिए सही ट्रेनिंग की ज़रूरत को बताता है। अपने बच्चे को किसी जगह पर तभी छोड़ें जब आप वहाँ सिखाई जा रही चीज़ों और उनके दिमाग में डाले जा रहे विचारों से पूरी तरह संतुष्ट हों। कई बच्चे बिना किसी मक़सद के इधर-उधर घूमते रहते हैं, जैसे बेकाबू बछड़े; ऐसे

बच्चों पर कड़ी नज़र रखें। आपको चौथी कक्षा तक हर दिन अपने बच्चे की पढ़ाई के लिए उनके साथ ज़रूर बैठना चाहिए; उसके बाद, हफ़्ते में एक बार समीक्षा करना काफ़ी होगा। उन्हें रोज़ाना दबाव में रखने या डांटने की कोई ज़रूरत नहीं है।

दिनांक:- 17/20/2002

आपके प्यार में

मुझे बस इतना पता था कि प्रेस्टीज का एक कुकर है। इसके अलावा, प्रेस्टीज नाम के बारे में मुझे कुछ नहीं पता था। मैं बचपन से थोड़ा-बहुत लिखती थी। जब भी कुछ छपता या प्रकाशित होता, मुझे बहुत खुशी होती थी। लेकिन जब मैं दूसरों की रचनाएँ पढ़ती, तो सोचती, अरे! मेरी रचनाएँ तो बहुत ही घटिया हैं। परिवार के लोग, आस-पास के लोग उसकी सराहना करते थे और अनजाने में ही मुझे सम्मान से प्यार हो जाता था। मैं काम करती रहती थी। लेकिन जीवन में एक दिन ऐसा आता है या कोई मुझे उस दिन का एहसास कराता है जब मुझे पता चलता है कि काम के प्रति मेरी निष्ठा, एकाग्रता और जुनून पूरी तरह से खत्म हो गया है, और मेरा पूरा दिल, दिमाग और बुद्धि उस काम से मिलने वाले लाभों में लग गई है। और यह एहसास बहुत देर से आता है। तब तक मैं या तो बहुत घटिया काम कर रही होती हूँ या बिल्कुल काम नहीं कर रही होती। जिस दिन काम के प्रति मेरा प्यार खत्म होता है, उसी दिन से वह काम भी बंद हो जाता है। क्या आपने कभी सोचा है कि काम के प्रति प्यार क्या होता है? यह खुद से प्यार करना है। यह सफर तब इस मुकाम पर पहुँचता है जब आप खुद एक ही विषय पर कई बार लिखने को तैयार हो जाते हैं। यह हर क्षेत्र पर लागू होता है। खुद से प्यार करना किसी भी विषय पर हो सकता है। यहाँ तक कि रिश्तों में भी। अक्सर हम कई पहलुओं को समझते हैं। काम से प्यार करने वाले लोगों को काम के प्रति जुनूनी मान लिया जाता है और सब कुछ खत्म हो जाता है। लेकिन ऐसा नहीं है। काम के प्रति जुनून क्यों और कैसे बढ़ता है, यह भी अनुभव का एक हिस्सा है। लेकिन काम से प्यार करने के भी कई पहलू होते हैं। शुरुआत में, हम जैसे लोग जो किसी भी आलोचना को बर्दाश्त नहीं कर सकते, सिर्फ आलोचकों के साथ ही रह सकते हैं। इस पहाड़ पर चढ़ना एवरेस्ट पर चढ़ने से बिल्कुल अलग सफर है। हो सकता है एवरेस्ट पर चढ़ते समय किसी की मुलाकात संयोग से हो जाए, लेकिन प्यार और साथ काम पर ही मिलता है। खैर। क्या आप भी ऐसे लोगों में शामिल होंगे? अपने प्यार में...

दिनांक :- 18/20/2020

च्यूइंग गम

मानव समाज में लड़के-लड़कियों की दोस्ती, प्रेम, रिश्तों में तनाव, कार्यस्थल पर ऐसी समस्याएं जिनका कभी समाधान नहीं होता या जिनका समाधान होना तय नहीं होता, इतनी बड़ी हो जाती हैं... धरती का शायद ही कोई ऐसा हिस्सा हो जहाँ सुई की नोक से भी बात न की जा सके, जहाँ चर्चा के बाद सवालों का तुरंत समाधान हो जाता हो। मुझे कई सवाल हैं कि सालों तक एक ही विषय पर चर्चा करते रहना कैसा लगता है। अगर हम इसके कारणों का सही पता लगा लें, तो हमारे पास चर्चा करने के लिए कई विषय हैं। इस जागरूकता को पैदा करना शिक्षा का एक हिस्सा है। जिन विषयों पर चर्चा होनी चाहिए, वे कहीं कोने में पड़े हैं। मराठी संस्कृति में जो नाटक होता है, वह बहुत ही सुंदर होता है। पर्दा खुलने से पहले नंदी की मूर्ति होती है। वह भी बहुत सुंदर होती है। फिर नाटक शुरू होता है। अगर किसी भी महत्वपूर्ण विषय पर कम से कम जीवन का नाटक ही खेला जाए, तो आने वाली पीढ़ियाँ बेहतर होने की संभावना बढ़ जाती है। वरना, बड़े हमेशा सोचते हैं कि बच्चे अच्छे होते हैं। बच्चे अच्छे होते हैं, लेकिन बर्तन बनाते समय अगर एक बर्तन टूट जाए, तो वह बेकार चला जाता है... अगर ऐसा इंसानी बच्चों के साथ हो जाए... तो क्या वह बच्चा दुखी नहीं होगा जिसका पेट फट रहा हो? लेकिन तब तक, जो कुछ भी चबाना होता है, चबाया जाता है। क्या आपको लगता है कि यह एक बुरी आदत है? यदि हाँ, तो क्या ऐसी बुरी आदत बन जाने पर, यह आदत दिन-प्रतिदिन उसी प्रकार कम होती जाएगी जैसे चंद्रमा की कलाएँ घटती जाती हैं? ऐसा कुछ नहीं होता कि दिन इस तरह बीतते हैं। जो लोग शांतिपूर्ण जीवन का अर्थ समझते हैं, वे चबाने के विषय और चर्चा के विषय में अंतर को समझेंगे। आइए, दोनों प्रकार के विषयों पर विचार करें।

दिनांक :- 1/5/20

ब्यूटी पार्लर और टेलरिंग

मुझे लगता है कि ये दोनों चीजें आवश्यक सेवाओं के अंतर्गत आती हैं। कई महिलाएं सिलाई का काम करती हैं। अगर हम थोड़ा-बहुत काम भी कर लें, तो हम खुद को माहिर समझने लगते हैं। अच्छी तरह चलने वाले पार्लरों या सिलाई केंद्रों में, अन्य महिलाओं को कुछ दिनों के लिए उनकी देखरेख में काम करना चाहिए। यह काम व्यावसायिक आधार पर होना चाहिए। कुछ महीनों के अंतराल पर, देखरेख में काम करने के लिए थोड़ा भुगतान दिया जाना चाहिए। साथ ही, कभी-कभी काम बहुत ज्यादा होता है। ऐसे समय में, काम समय पर पूरा नहीं हो पाता। इसलिए, हमारी कार्य संस्कृति में दो व्यावसायिक साझेदारों का एक साथ काम करना, काम के पैसे को

आपस में बांटना और काम को समय पर पूरा करना शामिल है। यह पार्लरों और सिलाई केंद्रों दोनों पर लागू होता है। विभिन्न स्थानों पर स्थित ब्यूटी पार्लरों और सिलाई की दुकानों के लिए यह सलाह दी जाती है कि वे ग्राम स्तर पर या किसी विशिष्ट क्षेत्र में एक संगठन बनाएं। यदि जगह उपलब्ध हो, तो इस संगठन का अपना कार्यालय होना चाहिए। इस कार्यालय की अपनी कार्यकारी समिति होनी चाहिए। शुरुआत में, जगह की कमी के कारण कोई विशिष्ट कार्यालय नहीं होगा। लेकिन अच्छी तरह चलने वाले पार्लरों/सिलाई केंद्रों में, एक दिन के लिए स्वैच्छिक आधार पर बैठक करना आवश्यक है। हमारी समस्याओं, चुनौतियों, नए उत्पादों, नए डिज़ाइनों जैसे कई मुद्दों पर चर्चा होनी चाहिए। विचारों का आदान-प्रदान होना चाहिए। कोई भी व्यवसाय या तो चलता है या बंद हो जाता है। ऐसा होने से रोकने के लिए, कारण और उपाय किए जाने चाहिए। कई वर्षों से यह काम कर रही अगली पीढ़ी इस काम को करने के लिए तैयार नहीं है। ऐसे में, आपको किसी संगठन के माध्यम से किसी नए व्यक्ति को अपना काम सिखाना चाहिए। आप अपना सेटअप किसी को दे भी सकते हैं। पार्लर में थोड़ी सी शिक्षा प्राप्त करने और प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद, आप तुरंत अपने काम से परिचित हो जाते हैं। लेकिन क्या आप समझते हैं कि प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद किसी प्रतिष्ठित महिला के मार्गदर्शन में काम करना कितना महत्वपूर्ण है? आपको कम से कम एक वर्ष तक उनके अधीन काम करना चाहिए। तब आपको अपनी गलती का एहसास होगा। कई लोगों से किसी न किसी तरह काम करवाना सही नहीं है।

दिनांक :- 20//

आत्म-साक्षात्कार के क्षण

मैं बचपन से ही कुछ न कुछ पढ़ता रहता था। मैंने पहली बार घर में चूहा देखा। रात भर चीं-चीं की आवाज़ आती रही। फिर कभी-कभी चूहे और ऐसी ही आवाज़ें आती रहीं। मुझे एहसास हुआ कि यह उनके जीवन का एक हिस्सा है। हम भी चूहे जाति के ही हैं। हम पढ़ाई-लिखाई में इतने मग्न हो जाते हैं कि हमें पता ही नहीं चलता कि कब से हम रेंग रहे हैं। यही सच्चा प्रेम है। जब हम किसी से प्रेम करते हैं, किसी की देखभाल करते हैं और ऐसा करते हैं, तो हमें एहसास होता है कि यह शारीरिक आकर्षण से कहीं बढ़कर है। तिल और गुड़ स्नेह के प्रतीक हैं। प्रेम एक ऐसी भावना है जिसे हम अवचेतन रूप से महसूस करते हैं। जब हम जीवन में उतार-चढ़ाव का अनुभव करते हैं, तो हमें लगता है कि मन को सुख देने वाली बात यह है कि कोई मुझे समझे, उससे पहले मुझे खुद को समझना होगा। इसी को आत्म-साक्षात्कार कहते हैं। प्रेम का

नाटक, सुविधा के अनुसार प्रेम, कभी ऐसा नहीं होता। जब हम समुद्र के ज्वार-भाटे और तेज़ गति से आती लहरों को देखते हैं, तो हमें लगता है कि प्रेम और क्रोध एक समान हैं। दोनों में उतार-चढ़ाव होता है। अंतर यह है कि एक व्यक्ति प्यार जताने के साथ-साथ गुस्सा भी करना चाहता है! प्रकृति ऐसी नहीं है। उसका स्वरूप कैसा है? पेट में कुछ छिपा नहीं होता। एक छोटा बच्चा ऐसा ही होता है। हम उन्हें उनके वास्तविक स्वभाव से दूर कर रहे हैं। यह शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। अनादि काल से जो बात निरंतर कही जाती रही है, वह है आत्म-पहचान। स्वयं के प्रति ईमानदार होने से लेकर दूसरों के प्रति ईमानदार होने तक की यह यात्रा। ऐसे कई क्षण आते हैं, जब हम सोचते हैं, ऐसा क्यों हुआ? हमने ऐसा क्यों किया? किसी ने ऐसा क्यों किया? ऐसा क्यों बोला? अनुभवहीन होना धन का प्रतीक है। लेकिन अनुभव का क्या उपयोग है, यह नैतिकता का प्रतीक है। यदि हम स्वयं को उसकी जगह पर रखकर देखें, तो हम पाते हैं कि कई बार प्रकृति हमें जगाने के लिए दस्तक दे रही होती है। लेकिन जीवन के अनेक प्रलोभन हमें आत्म-साक्षात्कार के क्षण से दूर रखते हैं। हमें यह तय करना होगा कि जो परिस्थितियाँ हमें सिखाने आई हैं, उनसे सीखें या इसी तरह जीते रहें।

दिनांक ;- 19/19/2020

सरिपत का ग्राफ

हम स्कूल के दिनों में गणित में ग्राफ़ के बारे में सीखते हैं। फिर भी, ग्राफ़ का यही कॉन्सेप्ट ज़िंदगी में बहुत अहम साबित होता है। चाहे भाई-बहनों के साथ बड़े हों या माता-पिता के साथ, हम ग्राफ़ के आइडिया को सहज रूप से समझ जाते हैं। इस बहस से परे कि कोई रिश्ता लीनियर रिग्रेशन जैसा है या मल्टीपल रिग्रेशन जैसा, ग्राफ़ में ही एक दिलचस्प खूबी होती है। हम सभी अपनी ज़िंदगी के सफ़र पर आगे बढ़ रहे हैं; फिर भी, हम हमेशा सामने के सीधे रास्ते के अलावा दूसरे रास्तों को भी देखना पसंद करते हैं। और तब क्या होता है? सिम्बायोसिस (सहजीवन) के सिद्धांत के अनुसार, जब हमारे लिए चीज़ें अच्छी चल रही होती हैं तो हम खुश होते हैं, लेकिन हम दूसरों के बारे में भी सोचते हैं। अगर उनके लिए चीज़ें अच्छी नहीं चल रही होती हैं, तो हम उन्हें उपदेश देने लगते हैं या बुरा भी महसूस करते हैं। फिर, एक दिन, किसी भाई-बहन या साथी की तरक्की के बारे में सुनकर हमें अचानक निराशा हो सकती है—हम एकदम नीचे गिर जाते हैं। ऐसा ही है इस ग्राफ़ का सफ़र। आखिरकार, इंसान को समझदारी आती है; फिर भी, जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं, अपनी सीमित समझ के बावजूद, दूसरी तरफ़ देखने और अपने ग्राफ़ की दूसरों से तुलना करने की आदत बनी रहती है।

जवानी में ऐसा अक्सर होता है। सिर्फ़ उम्र बढ़ना काफ़ी नहीं है; बच्चों की परवरिश हमें अपनी सोच का दायरा बढ़ाने पर मजबूर करती है। यहाँ भी, ग्राफ़ वाली बात लागू होती है। चाहे बेटा हो या बेटी, या ज़िंदगी के बुनियादी सिद्धांत—या प्यार की तलाश—ग्राफ़ कभी भी पूरी तरह से अंतिम या पूर्ण अवस्था तक नहीं पहुँचता। यह सिर्फ़ रिग्रेशन के बजाय कोरिलेशन (सह-संबंध) का मामला नहीं है; यह दुनिया में खुद को शामिल करने और साथ ही अपनी बढ़ती उम्र की प्रक्रिया को शांति से देखने का ग्राफ़ है। अनगिनत विषयों के लिए बार चार्ट होते हैं, लेकिन इंसानी ज़िंदगी में, ग्राफ़ आखिरकार इस बात पर निर्भर करता है कि हमने कितने लोगों को दुख पहुँचाया और कितनों को खुश किया। लोग अक्सर कहते हैं—और मानते हैं—कि ज़िंदगी की रफ़्तार बहुत तेज़ हो गई है। फिर भी, समझदारी आने पर एहसास होता है कि ज़िंदगी एक कल-कल बहती हुई धारा की तरह है; रफ़्तार सिर्फ़ दिमाग में होती है। उस तेज़ धारा को शांति से देखने की ताकत पैदा करना—यह अपने आप में ज़िंदगी का एक अनोखा ग्राफ़ है। एक बच्चा जो कभी "माँ!" कहकर पुकारता था और उससे लिपट जाता था—उसकी मौजूदगी के लिए तरसता था—आखिरकार सोच-विचार के एक ऐसे मोड़ पर पहुँच जाता है जहाँ वह दोस्तों या जीवनसाथी के लिए बहस कर सकता है, या बस बातचीत से पूरी तरह बच सकता है। जब बेटी को घर-गृहस्थी की थोड़ी समझ हो जाती है, तो उसे यह बताने में भी संतुष्टि मिल सकती है कि उसकी माँ घर चलाने में कहाँ गलती करती थीं—या कर रही हैं। पिछली पीढ़ी ज़िंदगी के बदलते इन ग्राफ़ को लगातार देखती रहती है। गणित के नज़रिए से X और Y कोऑर्डिनेट पर लाइनें खींचना भले ही एक सफल ग्राफ़ बनाता हो, लेकिन ज़िंदगी का ग्राफ़ जब अस्तित्व के खेल के मैदान पर बन रहा होता है, तो उस पर शायद ही किसी का ध्यान जाता है। शिक्षक और छात्र के रिश्ते की असलियत यही है। कभी-कभी एक-दूसरे की ज़रूरत महसूस होती है, तो कभी-कभी ऐसा कोई एहसास नहीं होता। हो सकता है कि मन में गहरा सम्मान हो जो कभी ज़ाहिर न हो, या फिर सम्मान बिल्कुल न हो; हो सकता है कि शिक्षक छात्र को न समझ पाए, या छात्र शिक्षक को न समझ पाए। ऐसी बातें होती रहती हैं; ये शिक्षक और छात्र के बीच बनने वाले ग्राफ़ ही तो हैं। फिर भी, इनके पीछे का रिश्ता खूबसूरत बना रहता है। जब ये ग्राफ़ बनते हैं, तो लोगों को अक्सर लगता है कि अब सच्चे रिश्ते नहीं बन सकते, लेकिन ऐसा नहीं है। इन ग्राफ़ से गुज़रते हुए भी, प्यार और परवाह हमेशा महसूस की जा सकती है। आइए, अपने मन के कागज़ पर बनने वाले सभी ग्राफ़ को

देखना सीखें; ऐसा करने से हमें अपने बारे में और दूसरों के बारे में बहुत कुछ पता चलेगा।

दिनांक –//

मीडिया और आप

जिस दिन मैंने Facebook के बारे में जाना, मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने बस आगे बढ़कर एक अकाउंट बना लिया। धीरे-धीरे, मैं Instagram और WhatsApp से भी परिचित हो गया। मास मीडिया एक शक्तिशाली ताकत है। जैसे सही खाना खाने, सही लोगों के साथ रहने, सही किताबें पढ़ने और ऐसी ही दूसरी रचनात्मक चीजें करने से आंतरिक शक्ति बढ़ती है—जिसका समझदारी से इस्तेमाल करने पर खुशी और संतोष मिलता है, लेकिन गलत इस्तेमाल करने पर दुख होता है—मास मीडिया भी लगभग उसी तरह काम करता है। हम अक्सर खुद को नहीं समझ पाते; हर कोई यह नहीं जानता कि अपने भीतर मौजूद या पैदा होने वाली ऊर्जा का सही इस्तेमाल कैसे किया जाए। इसके बजाय, हम मास मीडिया के आसानी से उपलब्ध प्लेटफॉर्म की ओर रुख करते हैं। Facebook, Instagram, YouTube और Twitter को रोज़ देखें। आप पाएंगे कि वहां शेयर की गई जानकारी अक्सर सच्ची या तथ्यात्मक होने के बजाय भावनाओं को अपील करने के लिए बनाई जाती है। कौन इस बात पर विचार करता है कि इससे कितनी भावनात्मक ऊर्जा बर्बाद होती है? प्यार, देखभाल और अपनापन महसूस करने में बहुत ताकत होती है। इन प्लेटफॉर्म पर दूसरों के बारे में लगातार जानकारी फैलाना उस ताकत का गलत इस्तेमाल है। अगर हर कोई इन माध्यमों का ईमानदारी और समझदारी से इस्तेमाल करे, तो मेरा मानना है कि वे समाज के लिए ताकत का स्रोत बन सकते हैं। "कुछ करने" की लगातार इच्छा बड़ों के भीतर भी मौजूद बच्चे को दिखाती है; हालांकि, उस इच्छा को सही दिशा में ले जाना बहुत ज़रूरी है। बच्चे और युवा एक महत्वपूर्ण पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं—जो हमारे समाज की ताकत हैं। क्या हम उन्हें संवारना और आकार देना चाहते हैं, या बस उनकी ऊर्जा को हर पल बर्बाद होते देखना चाहते हैं? कुछ लोगों पर बहुत गंभीर होने और हर विषय को उसी दिशा में ले जाने का आरोप लगाया जाता है। फिर भी, मेरा मानना है कि 35 साल और उससे अधिक उम्र के हर व्यक्ति को रोज़ाना मास मीडिया को देखना और उसका विश्लेषण करना शुरू करना चाहिए—सिर्फ समय बिताने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले अखबारों, TV और Facebook प्लेटफॉर्म से आगे बढ़कर। यह क्या है, अगर प्रकृति (या भगवान) द्वारा हमें दी गई ऊर्जा का हमारे अपने कामों से पल-पल खत्म

होना नहीं है—जिज्ञासा में चीजों को देखना, उनकी सच्चाई की जांच करना, और फिर, उन सबको "गलती" मानकर खारिज कर देना, और बस उसी पुरानी दिनचर्या में वापस लौट जाना? बुद्धिजीवियों के लिए अपनी रिसर्च और उसके इस्तेमाल को दुनिया के सामने लाना ज़रूरी है; कभी-कभी, यह ज़रूरत उनके अपने अस्तित्व की ज़रूरत से ही पैदा होती है (यह लेख लिखना, मेरे लिए, खुद को व्यक्त करने और अस्तित्व की ज़रूरत है)। लेकिन क्या हर कोई इसकी उपयोगिता को समझेगा? इससे पहले कि ये आदतें आम हो जाएं, क्या हम अपने निजी अनुभवों के आधार पर ट्रेनिंग देंगे? या फिर बीमारियों से भरा समाज ही किसी के अस्तित्व का कारण है? मुझे यह सोचकर हैरानी होती है कि कैसे कुछ पेशे—जिन्हें "नेक" माना जाता है—चाय, चीनी या राशन के सामान के व्यापार की तरह रोज़मर्रा की ज़रूरतें बन गए हैं। आखिर, अगर हम यह मान लें कि इंसान सोचने-समझने की क्षमता रखने वाला प्राणी है—चाहे कम हो या ज़्यादा—तो वह सोच असल में कहाँ जाती है? हम अपने समाज को किस दिशा में ले जाना चाहते हैं (चाहे वह हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सिख आदि हो, या भारतीय, रूसी, फ़ारसी, चीनी, जापानी—मैं किसी को भी अलग नहीं रखना चाहता)? जब गंभीरता से कदम उठाने की असली ज़रूरत हो, और तब भी जो लोग हालात की गंभीरता को समझते हैं, वे भी "छोड़ो भी, कोई सुनता नहीं, चीज़ें जैसी चल रही हैं वैसी ही चलती रहेंगी और कभी खत्म नहीं होंगी" वाला रवैया अपना लें, तो क्या यह बुद्धि की हार नहीं है? क्या इससे इंसानी विकास के बजाय जानवरों जैसी फितरत को बढ़ावा मिलने का खतरा नहीं है? आइए हम सतर्क रहें—अपने लिए और आने वाली सभी पीढ़ियों के लिए—ताकि हम गहरी खुशी और सम्मान के साथ इंसानों की तरह जी सकें। जब कोई नई रिसर्च सामने आती है, और हम स्कूलों-कॉलेजों से लेकर बड़े संस्थानों तक घंटों उसके फायदे और नुकसान पर चर्चा करते हैं, लेकिन आखिर में किसी नतीजे पर नहीं पहुँचते और पुरानी स्थिति में ही लौट आते हैं, तो क्या हम असल में नई पीढ़ी के मन में यह बात नहीं बिठा रहे होते कि सभी सामाजिक संस्थान बस एक "बड़ी गलती" हैं?

दिनांक :- 23/202/2020

एक छोर से दूसरे छोर तक

सुबह दूध आता है, या घर का कोई सदस्य उसे लेने जाता है; दूध लाने वाले इस व्यक्ति को अक्सर *उकाडा* कहा जाता है। लेकिन, दिन का *उकाडा*—यानी वह दमघोंटू, भारी गर्मी—तभी शुरू हो जाती है। चादर ओढ़कर मजे से सो रहे बच्चों को मजबूरी में उठना पड़ता है; भले ही उनका मन न हो, वे नाराज़गी के साथ अपनी आँखें थोड़ी सी

खोलते हैं। किसने सोचा होगा कि चीजों को परखने—आकलन करने—की आदत दूध जैसी साधारण चीज से शुरू होगी? इसमें आमतौर पर घर की कोई महिला या बुजुर्ग—माँ, दादी, बुआ या कोई और—चुपचाप अपने काम में लगी होती हैं, है ना? दूध लाने वाले व्यक्ति (*उकाडा*) पर ध्यान देने के बजाय, बच्चे उस भारी गर्मी (*उकाडा*) पर ध्यान देने लगते हैं। धीरे-धीरे, वे ऐसे लोगों के साथ को देखते हैं। फिर, सब मिलकर *उकाडा* के इस विषय पर 'रिसर्च' करते हैं। मैं इसे 'रिसर्च' इसलिए कहता हूँ क्योंकि बड़ों ने खुद काफी 'खोजबीन' की है, हालाँकि मुझे अभी तक यह देखने का समय नहीं मिला कि उन्होंने असल में क्या खोजा! अगर मुझे कभी पता चला, तो मैं आपको जरूर बताऊंगा। लेकिन मुझे जल्दी ही एहसास हो गया कि *उकाडा* (भारी गर्मी) मेरा विषय नहीं था; बल्कि *उकाडा* (दूध वाला/डिलीवरी करने वाला व्यक्ति) ही मायने रखता था। तभी मैंने सोचना शुरू किया कि आखिर किस तरह का *उकाडा*—किस तरह का दमघोंटू दबाव या प्रभाव—हम पर असर डालेगा। हम अक्सर बच्चों को संजोने और उनकी सुरक्षा करने की बात करते हैं, लेकिन यह इतना आसान नहीं है। यहाँ तक कि जो व्यक्ति पूरी तरह आश्वस्त है कि उसने अपना चरित्र खुद गढ़ा है, वह भी अक्सर बच्चों पर नियंत्रण करने की कोशिश करता है। उनका मानना होता है कि चूँकि उन्होंने खुद को 'बनाया' है, इसलिए वे निश्चित रूप से बच्चों को ढाल सकते हैं—या ऐसा करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। हालाँकि, इस क्षेत्र में दस साल काम करने के बाद, मुझे एहसास हुआ कि यह दावा करना—पूरी निश्चितता के साथ—कि कोई बच्चों को पूरी तरह से ढाल सकता है, वास्तव में एक गलती है; चाहे किसी ने मुश्किलों भरी जिंदगी जी हो या सुख-सुविधाओं वाली। बच्चों के साथ चौबीसों घंटे बिताने और उनके लिए सब कुछ करने के बाद भी, यह बताना नामुमकिन है कि वे किस दिशा में जाएँगे या उनके व्यवहार के पीछे क्या कारण होंगे। असल में, पेरेंटिंग का सफ़र शायद हमारे बारे में कम और बच्चों के खुद यह समझने—या उन्हें यह समझने में मदद करने—के बारे में ज़्यादा है कि वे आगे क्या और कैसे करेंगे। मुझे अभी भी इस बारे में पूरी तरह यकीन नहीं है; फ़िलहाल, यह बस एक अंदाज़ा है। क्योंकि जब बच्चे खुद को जानने की प्रक्रिया से गुज़रते हैं—अक्सर सच्चे आत्म-मंथन के ज़रिए—तो उन्हें अक्सर सुरक्षा के नाम पर अपने ही माता-पिता की ज़बरदस्ती का सामना करना पड़ता है। मुझे नहीं पता कि कितने लोग इसे मानेंगे। फिर भी, चौबीसों घंटे की समर्पित कोशिश के बाद, मुझे एहसास हुआ कि अगर चौबीसों घंटे काम करने वाला व्यक्ति बच्चों को चिलचिलाती गर्मी के अनुभव से बचाता है, तो बच्चे उस स्थिति

में बहुत अच्छा रिस्पॉन्स देते हैं। लेकिन उस व्यक्ति का क्या जो उन्हें उस अनुभव से बचाता है? इस उम्मीद भरी सोच में सच्चाई है कि विचारकों के शब्द जीवन के हर पहलू और रिसर्च के हर रास्ते को मज़बूती देते हैं। हाँ, अगर कोई कोशिश करे, तो सच में अच्छी चीज़ें हो सकती हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अकेले की गई कोशिशें कैसे नाकाम हो सकती हैं, अजीब लग सकती हैं, या दूसरों के मज़ाक का कारण भी बन सकती हैं। फिर भी, जब कोई किसान पेड़ लगाता है या ज़मीन पर खेती करता है, तो वह इस उम्मीद के साथ ऐसा करता है कि बारिश होगी, फ़सल अच्छी होगी, और सबके लिए काफ़ी खाना होगा—है ना? अगर अगली पीढ़ी कमज़ोर, खोखली और हर समय रोने-धोने वाली बन जाए, तो हँसी कौन लाएगा? हिम्मत कौन देगा? जब नाव डूबती है तो सब देखते हैं, लेकिन उसे डूबने से बचाने के लिए कौन आगे आता है? बच्चों, गर्म कंबल के नीचे सोने जैसा कैसा लगता है—कभी भी चिलचिलाती गर्मी के स्तर तक न पहुँचना, फिर भी यह जानना कि गर्मी मौजूद है? एक ऐसी स्थिति जो संवेदनशीलता को बनाए रखती है और लापरवाही में नहीं बदलती; एक ऐसा एहसास जो नाज़ुक, मदहोश करने वाला और सुखद है, फिर भी सुस्ती से मुक्त है... चिलचिलाती गर्मी और 'उकाडा' (दम घोंटने वाली, भारी गर्मी) के बीच, आप किसे चुनेंगे?

दिनांक :- 24/20/2020

आगे क्या हुआ?

सभी बच्चे एक जैसे माहौल में बड़े नहीं होते। कुछ को तीन-चार पीढ़ियों से चली आ रही विरासत मिलती है, तो कुछ के पास कुछ भी नहीं होता—यहाँ तक कि पिछली पीढ़ी से भी कुछ नहीं मिला होता। कुछ के माता-पिता दोनों होते हैं, तो कुछ के सिर्फ़ गार्जियन (अभिभावक) होते हैं। यह जानकारी कुछ लोगों के लिए नई हो सकती है और कुछ के लिए पुरानी। एक समय था जब युवाओं को अठारह साल का होने के बाद भी नौकरी पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता था; कुछ को तो इस सच्चाई का पता भी नहीं होता था। युवा अलग-अलग रास्ते अपनाते थे: कुछ सिर्फ़ पढ़ाई पर ध्यान देते थे, कुछ जो भी नौकरी मिलती थी वह कर लेते थे, और कुछ वही काम करते थे जिसके वे काबिल होते थे। औरतें अक्सर घर के कामों या पुरुषों द्वारा दिए गए कामों तक ही सीमित रहती थीं, जबकि कुछ बस अपना समय बर्बाद करती थीं या अपने सोशल सर्कल में झगड़े-फसाद करती थीं। उन युवाओं का क्या जो अपने परिवार को छोड़कर अकेले या दोस्तों की मदद से अपनी राह खुद बनाते हैं? क्या उन्हें पता भी होता है कि

कोई उन्हें बिना बताए देख और परख रहा है? वे एक साथ कितने सार्थक रिश्ते बना सकते हैं? क्या ऐसे युवा दूसरों के विचारों को अपना सकते हैं—ऐसे विचार जो उनकी अपनी समझ के स्तर से परे हों? इससे अक्सर मुझे स्कूल और कॉलेज की याद आती है; उम्मीद यही होती है कि कम से कम प्रोफेशनल ज़िंदगी में, जो लोग सिस्टम को समझना जानते हैं, वे अपने लिए कुछ हद तक सुरक्षा बना सकते हैं। प्रोफेशनल दुनिया में, जो लोग बस निर्देशों का पालन करते हैं, वे ज़्यादा सुरक्षित रहते हैं। इसके उलट, जो लोग मजबूती से अपनी राय रखते हैं—और ठीक वैसा करने से इनकार कर देते हैं जैसा कहा गया है—उनकी नौकरी जाने का खतरा अक्सर बना रहता है। तो फिर सुरक्षा कौन देता है? स्कूल और कॉलेज युवाओं को सिर्फ़ जागरूक करते हैं; माता-पिता अक्सर उनसे कहते हैं कि वे बस भीड़ का हिस्सा न बनें या चीज़ों को खुद समझें। ये तरीके सही नहीं हैं। कई समझदार लोग और राजनीतिक बैकग्राउंड वाले लोग इस मुद्दे को लेकर बहुत चिंतित हैं। आबादी तेज़ी से बढ़ रही है—यह एक ऐसी बात है जिसे रोका नहीं जा सकता—लेकिन इस बढ़ोतरी को संभालना एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। इसके लिए सुझाए गए समाधान और उनमें आने वाली चुनौतियाँ बिल्कुल अलग विषय हैं। असली ज़िम्मेदारी बच्चों को खुशहाल, ज़िम्मेदार और कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बनाने की है। उन्हें सामाजिक सुरक्षा का एहसास होना चाहिए; न तो डर और न ही बेपरवाह दुस्साहस कभी अच्छे विकास में मददगार होते हैं। इस ढांचे के भीतर रहते हुए बच्चों को सही दिशा देना एक बहुत बड़ी चुनौती है। इसलिए, जब छात्र 12वीं कक्षा में पहुँचें, तो हर लड़के और लड़की का एक प्रोफेशनल प्रोफ़ाइल बनाया जाना चाहिए और उसे उनके संबंधित स्कूल या कॉलेज में रजिस्टर किया जाना चाहिए। अगर कोई महिला घरेलू काम में दिलचस्पी रखती है, तो भी उसके कामों और मिलने वाले मेहनताने के बारे में साफ़-साफ़ तय होना चाहिए। यह पक्का करना कि यह प्रक्रिया बिना किसी गड़बड़ी के चले, ज़िला स्तर पर एक ज़िम्मेदार और ईमानदार अधिकारी की पहचान है। यह सिर्फ़ काम और मज़दूरी का मामला नहीं है; इसमें कौशल विकास, समाज में योगदान, उस योगदान के बारे में व्यक्ति की जागरूकता, सही वेतन, सामाजिक सुरक्षा और पेशेवर विकास व सुरक्षा शामिल हैं—और ये सभी स्कूल/कॉलेज, पेशेवर या सामाजिक संगठनों और माता-पिता की मिली-जुली ज़िम्मेदारी हैं। काम करने से सुरक्षा का एहसास भी होता है। बहुत ईमानदार लोग अक्सर अकेलापन और असुरक्षा महसूस करते हैं क्योंकि कई लोग उनकी ईमानदारी को बस एक अनोखी बात या बेवकूफ़ी समझते हैं। काम में लगे रहना अपने आप में एक उपलब्धि

है। कई लोग कह सकते हैं, "हम बहुत खुश हैं और हमें कोई असुरक्षा महसूस नहीं होती"—और यह बात 100% सच भी हो सकती है। लेकिन क्या उनके स्कूलों या कॉलेजों में उनकी पेशेवर गतिविधियों का रिकॉर्ड सही ढंग से रखा जाता है? ये सिर्फ़ निर्देश नहीं हैं; ये ज़मीनी अनुभव हैं। किया जाने वाला काम ऐसा होना चाहिए जिससे कई पीढ़ियों को फ़ायदा हो। सिर्फ़ काम पूरा करने के लिए काम सौंपना समय बिताने का एक तरीका है; इससे आने वाली पीढ़ियाँ नहीं बनतीं। अगर अलग-अलग क्षेत्रों में ज़िम्मेदारियाँ बाँटी जाएँ, तो पीढ़ी को तैयार करना बोझ नहीं बनेगा। इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपनी ज़िंदगी में आगे बढ़ते हुए बुज़ुर्गों को नज़रअंदाज़ कर दें; उनकी देखभाल करना भी हमारी ज़िम्मेदारी है और उन्हें बोझ नहीं समझा जाना चाहिए। इसके उलट, बुज़ुर्गों को लगातार उपदेश देने से बचना चाहिए, क्योंकि बच्चे चीज़ों को करके या देखकर सबसे अच्छा सीखते हैं। लगातार बातें करने से बच्चे अक्सर बड़ों की बात सुनना बंद कर देते हैं, जिससे न सिर्फ़ व्यक्तिगत नुकसान होता है बल्कि भावनात्मक दूरी भी बढ़ती है। स्कूल में छात्रों द्वारा किए गए काम का रिकॉर्ड निश्चित रूप से संस्थान के लिए गर्व की बात है; इसके अलावा, इससे तुरंत पता चलता है कि वे अपनी क्षमताओं के अनुसार स्कूल या कॉलेज के विकास के सफ़र में कैसे योगदान दे सकते हैं। साथ ही, जब छात्र स्कूल या कॉलेज के दिनों से ही अपनी ज़िंदगी के लिए मज़बूत आधार बनाते हैं, तो वे समय बर्बाद करने से बचते हैं। ज्ञान के नए क्षेत्र और काम करने के नए तरीके लगातार सामने आ रहे हैं; हालाँकि, यह तथ्य कि इन्हें हर जगह नहीं अपनाया जाता, शैक्षिक तौर-तरीकों में तालमेल की कमी का मुख्य संकेत है। इस नज़रिए को अपनाने से स्थिति को सुधारने में मदद मिल सकती है। तो आइए, हम तुरंत कदम उठाएं—किसी अच्छे काम के लिए जितनी जल्दी हो, उतना ही अच्छा है।

दिनांक :- 22/22/22

इस घेरे में

हम सबकी बातें सुनते हुए बड़े होते हैं। सबकी बातें सुनते-सुनते हमें खुद तय करना पड़ता है कि क्या करना है। कुछ लोग इसमें माहिर होते हैं, कुछ नहीं। यहाँ तक कि जब हम आज्ञा मानते हैं, तब भी काम में इस तरह की बातें सामने आ जाती हैं। यह एक मजेदार बात है। हम इसे धीरे-धीरे समझते हैं। इसका "इस दायरे में" होने से क्या संबंध है? तो जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं, हम धीरे-धीरे अपनी पसंद-नापसंद समझने लगते हैं। कुछ बच्चे इसे बहुत जल्दी समझ जाते हैं। कुछ बच्चे इसे बहुत धीरे-धीरे समझते हैं।

लेकिन यह हर किसी का सफर होता है। सामाजिक रिश्ते बनाना एक बिल्कुल अलग बात है। बच्चों के दोस्त इसका एक छोटा सा उदाहरण होते हैं। कभी-कभी दोस्ती किसी ज़रूरत की वजह से बनती है, और कभी-कभी बातचीत के दौरान ही बातें हो जाती हैं। कुछ लोगों के साथ ऐसा भी होता है कि हम कुछ करने का फैसला कर लेते हैं। कभी-कभी ऐसा कुछ नहीं होता। अगर सहजता व्यक्तित्व की बात है, तो हमें कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। लेकिन इससे जो भी फल मिलता है, वह बिल्कुल अलग होता है। क्योंकि इसमें कोई गणित नहीं है। यह अपने आप होता है। किसी दायरे का हिस्सा बनना, उसका हिस्सा होना या ऐसी इच्छा ज़ाहिर करना आसान नहीं है। क्योंकि इसमें ज़िम्मेदारियाँ भी होती हैं। जिम्मेदारियों को लगातार समझाते रहने और उन्हें समझने में बहुत बड़ा अंतर है। जब हम एक इकाई के रूप में रहते हुए जिम्मेदारियों को समझते हैं, तो यह बिल्कुल अलग बात है। किसी समूह का हिस्सा बनने का संघर्ष और उस समूह के रूप में जीना बिल्कुल अलग बातें हैं। कभी-कभी हम कुछ चीजों में खुद को बहुत हद तक सहज महसूस करते हैं, फिर भी कई चीजों में हमारा तालमेल नहीं बैठता। यह एक लंबा सफर है। आज्ञापालन अनिवार्य है। लेकिन जब हम स्वतंत्र रूप से सोचते हैं, तो हमें अपनी गलतियों का एहसास जल्दी हो जाता है। इसलिए, किसी भी मामले में हिसाब-किताब लगाकर जीना है या सहजता बनाए रखना है, यह पूरी तरह से व्यक्तिगत मामला है। ये सभी बातें इस बात पर निर्भर करती हैं कि हम किस चीज में अच्छे हैं और हम कैसे हैं। जैसे दोस्ती में जल्दबाजी होती है, काम में जल्दबाजी होती है, वैसे ही काम में भी जल्दबाजी/देरी होती है। किसी को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि क्या हमने वास्तव में खुद को समझा है। ऐसा क्यों है? यह सच है कि अगर हम खोजबीन करें तो हर किसी को अपना जवाब मिल जाता है।

दिनांक:- 2020/2020/2020

एक कार्यालय के बारे में एक कहानी

मैं इंजीनियर बनने की राह पर था—या यूँ कहूँ कि बस किसी तरह पास होने की उम्मीद कर रहा था! COEP में इतने होनहार लोगों के बीच रहकर मैं हमेशा सोचता था, "क्या मैं उनके बराबर हूँ?" मन ही मन मुझमें कमतर होने का एहसास घर कर गया था, हालाँकि उस समय मुझे इसका ठीक से पता भी नहीं था। जब भी मुझे थोड़ा खाली समय मिलता, मैं 'अप्पा बलवंत चौक' चला जाता; भले ही मैं किताबें खरीदता या पढ़ता नहीं था, बस उन्हें देखता रहता—एक तरह से बस 'विंडो शॉपिंग' करता था! मुझे

पता था कि मैं उन्हें खरीद नहीं सकता, लेकिन मुझे यह भी पता चला कि किताबें कम कीमत पर मिल सकती हैं। इसी सोच के साथ एक दिन मैं 'अप्पा बलवंत चौक' पहुँचा। वहाँ मुझे *चाणक्य मंडल* मैगज़ीन दिखी। उत्सुकतावश मैंने उसे पढ़ना शुरू किया और मुझे वह पसंद आई। तब तक, अविनाश धर्माधिकारी और पूर्णताई—या खुद *चाणक्य मंडल*—के नाम मेरे लिए बिल्कुल अनजान थे। एक दोस्त ने मुझे अविनाश सर का लेक्चर सुनने का सुझाव दिया था, लेकिन उस समय मैं औरंगाबाद से लौट रहा था और मैंने उससे कहा, "अरे, मैं बस में हूँ।" बाद में मैं यह बात भूल गया, लेकिन 'अप्पा बलवंत चौक' पर मुझे वह मैगज़ीन फिर से दिखी। तभी मैंने सोचा, "चलो जाकर देखता हूँ कि कॉम्पिटिटिव एग्ज़ाम की ये क्लासें असल में कैसी होती हैं।" यह साफ़ था कि मेरे ज़्यादातर साथी कॉर्पोरेट नौकरियों की ओर जा रहे थे, इसलिए मैं सोचता था कि *मैं* क्या करूँगा। मुझे कई रास्तों के बारे में पता था, लेकिन मैंने *चाणक्य मंडल* को चुना। मुझे लगा कि इंजीनियरिंग के बाद UPSC एग्ज़ाम की तैयारी तो मैं *कर* सकता था, लेकिन इस बात की 200% गारंटी थी कि मैं पास नहीं हो पाऊँगा। हालाँकि, मुझे भरोसा था कि अगर मैं MPSC की क्लास करूँ और एग्ज़ाम दूँ, तो सफल हो सकता हूँ—यह भरोसा कोर्स करने के बाद और मज़बूत हुआ। मुझे वहाँ का माहौल इतना पसंद आया कि क्लास खत्म होने के बाद, रिज़ल्ट का इंतज़ार करते हुए मैंने वहीं काम करने का फ़ैसला किया। मैंने वहाँ दो महीने काम किया और सच में बहुत खुश था। मुझे कोई और चीज़ कितनी भी पसंद क्यों न हो, वहाँ काम करके मुझे जो खुशी मिलती थी, वह घर पर काम करने जैसी ही खुशी थी। सब कुछ ठीक चल रहा था, फिर भी परिवार की चिंता मुझे परेशान कर रही थी। मैं यह सब कैसे संभालूंगा? ऊपर से, घर का किराया भी बढ़ता जा रहा था। हालात मुश्किल होते जा रहे थे; नौकरी छोड़ना ही एकमात्र रास्ता लग रहा था—वरना गुज़ारा कैसे होता? पैसों की बात छोड़ भी दें, तो मैं अपने माता-पिता से क्या कहता? क्या सफाई देता? इन्हीं ख्यालों के साथ मैं घर लौटा और अपने गाँव में काम करने लगा। ऐसा क्यों हुआ? यह सोचने पर मजबूर करता है: लोग अपनी नौकरी की जगह पर इतना बोर क्यों हो जाते हैं? इसकी वजह क्या है? अक्सर, लोगों को काम ही पसंद नहीं आता, या उन्हें वहाँ का माहौल अच्छा नहीं लगता—कभी काम, कभी माहौल, या कभी-कभी दोनों ही। इसमें कई बातें शामिल होती हैं। लेकिन क्या कोई ऐसी खास बात नहीं है कि युवाओं को काम में मज़ा ही नहीं आता? क्या आपने कभी सुना है कि किसी को अपने ऑफिस या वहाँ के माहौल से प्यार हो गया हो—या वे उसे बहुत सम्मान की नज़र से देखते हों? मेरे साथ

ऐसा लगभग अनजाने में ही हुआ, जब मैं क्लास अटेंड कर रहा था। इससे पता चलता है कि माहौल बनाना कितना ज़रूरी है—और उसे बनाने वाले लोग कितने अहम होते हैं। अविनाश सर थे, जिन्होंने हमें बिना किसी दबाव के पढ़ाई और काम में जी-जान से जुटने के लिए प्रेरित किया, और पूर्णा-ताई थीं, जो चीज़ें ठीक न होने पर भी हमारी तारीफ़ करती थीं। मेरा मानना है कि जो कोई भी सकारात्मक और सच में अनोखे वर्क कल्चर को समझता है, वह ऐसा बेहतरीन माहौल बना सकता है। अगर आप कभी किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में सुनें जिसे अपने ऑफिस से प्यार हो गया हो (और साथ ही अपनी निजी ज़िंदगी में भी सफल हो), तो मुझे ज़रूर बताइएगा!

दिनांक :-// 2000

एक दिन

"नायक" एक ऐसी फ़िल्म है जिसमें अनिल कपूर ने बहुत ज़बरदस्त एक्टिंग की थी। मैंने ज़्यादा फ़िल्में नहीं देखी हैं और मुझे *नायक* की सारी बातें ठीक से याद भी नहीं हैं; फिर भी, यह फ़िल्म यह संदेश देती है कि अगर सही मौका मिले, तो कोई भी बदलाव ला सकता है। ज़िंदगी में आगे बढ़ते हुए मुझे एहसास होता है कि हमारे आस-पास बहुत कुछ है—लेकिन क्या हम उसका सही इस्तेमाल करते हैं? यह सब हमारे अपने शरीर से शुरू होता है, जो लगातार कुछ न कुछ संकेत देता रहता है। क्या हम सच में उन संकेतों को समझ पाते हैं? एक दिन, इसी संदर्भ में मुझे *नायक* फ़िल्म की याद आई। जिस पल कोई अपने लिए—सचमुच अपने लिए—संघर्ष शुरू करता है, तभी खुद को समझने की प्रक्रिया शुरू होती है। असल में, यह प्रक्रिया हमेशा चलती रहती है, भले ही अक्सर बहुत सूक्ष्म स्तर पर। लगातार होती बातचीत, बाहरी आवाज़ों को सुनना, उन पर प्रतिक्रिया देना, और ऐसा न करने पर पागल या बेवकूफ़ समझे जाने की चिंता—इन सबके बीच, इतना अलग-थलग रहना भी ज़रूरी है कि हम सच में उन आवाज़ों की लहरों को समझ सकें जो हमारे शरीर और मन पर असर डालती हैं। इस अनोखे पहाड़ पर चढ़ने में दर्द के पल भी आते हैं, लेकिन अक्सर, यह एक गहरा और अनोखा अनुभव देता है। वह अहम दिन हर किसी की ज़िंदगी में आता है—भले ही उसके कारण अलग-अलग हों। अक्सर, हम आत्म-साक्षात्कार के उस पल को नज़रअंदाज़ कर देते हैं और अपनी ज़िंदगी की नाव को बिना किसी मक़सद के बहने देते हैं, जबकि हम तरह-तरह के काम करते रहते हैं। फिर भी, वह दिन बहुत अहम होता है—वह दिन जब हमें अपने कामों के लिए प्रेरणा मिलती है और उनकी दिशा समझ आती है। अगर हम उस दिशा में सही ढंग से आगे बढ़ें, तो हो सकता है हमें

शोहरत न मिले, लेकिन हमें यह संतुष्टि ज़रूर मिलती है कि हमने अपनी ज़िम्मेदारियाँ अच्छे से निभाईं। व्यक्तिगत विकास के इस पड़ाव तक पहुँचना ही उस अहम दिन का सार है। बड़े-बुज़ुर्ग अक्सर शिकायत करते हैं कि युवा कुछ नहीं कर रहे हैं। लेकिन वे शायद ही कभी यह देखते हैं कि क्या ये युवा अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए अपने जुनून को भी अच्छे से पूरा कर रहे हैं। लोग अक्सर सिर्फ़ उसी चीज़ पर ध्यान देते हैं जो तुरंत दिखाई या सुनाई देती है। मैंने छोटे बच्चों को ज़्यादा नहीं पढ़ाया है, और न ही मैं उनकी पढ़ाई-लिखाई का कोई एक्सपर्ट हूँ। लेकिन बड़े बच्चों के साथ बातचीत से मुझे एहसास हुआ कि जब उन्हें आज़ादी और ज़िम्मेदारी के बीच संतुलन सिखाया जाता है, तो वे कितने उत्साह के साथ काम करते हैं। फिर भी, अगर उनके चुने हुए रास्ते से तुरंत फ़ायदा न मिले—या अगर मुश्किलें बहुत बड़ी लगें—तो वे अक्सर उस रास्ते को पूरी तरह छोड़ देते हैं, रुक जाते हैं या दिशा बदल लेते हैं। मैं हर गुज़रते दिन के बारे में सोचता हूँ। क्या नया दिन मुझे किसी सपने या सार्थक काम की याद दिलाता है, या यह सिर्फ़ लालच देकर बुलाता है? अपने जीवन के अनुभव से मैंने सीखा है कि जो चीज़ असल में हमें बुलाती है, वह है हमारा *कर्म* (काम/कर्तव्य)। इसे कभी न भूलें; क्योंकि असली परीक्षा लालच के आकर्षण से आज़ाद होने में ही है। हम अक्सर बिना सोचे-समझे काम करते हैं—बस इसलिए कि उस पल हमारा मन करता है। पीछे मुड़कर देखने पर मुझे एहसास होता है कि आने वाले दिन हमें मार्गदर्शन और दिशा देने की कोशिश करते हैं, लेकिन कभी-कभी मेरी ऊर्जा कमज़ोर पड़ जाती है। यहीं हम गलती कर बैठते हैं; वरना हम कभी न लड़खड़ाते। आइए, अपनी अंतरात्मा की आवाज़ सुनकर जीवन में आगे बढ़ें। धीरे-धीरे, हर दिन का स्वरूप सामने आता है। बच्चों की परवरिश करते समय, माता-पिता अक्सर सोचते हैं कि बच्चा आख़िर कब "समझेगा"—फिर भी माता-पिता जिसे "समझना" मानते हैं, वह बच्चे के नज़रिए से बहुत अलग होता है। यह स्थिति कार्यस्थल पर, अलग-अलग रिश्तों में और यहाँ तक कि हमारे अपने *कर्म* के प्रति हमारे नज़रिए में भी देखने को मिलती है। मुझे उम्मीद है कि हम सभी के लिए—मेरे सहित—अनिश्चितता का यह चक्र खत्म हो जाएगा, और हम फ़िल्म *नायक* (जिसमें अनिल कपूर हैं) जैसे पलों का अनुभव करेंगे—ऐसे पल जिनमें इंसान को अपनी असलियत का एहसास होता है।

दिनांक :- 28/28/28/28

बेलों के बीच जीवन जीना...

बचपन में मैंने सबसे पहली बेल तोरई की देखी थी। उस दिन मुझे उसकी नाज़ुकता का एहसास हुआ—एक ऐसी चीज़ जो बिना किसी सहारे के भी धीरे-धीरे कहीं भी और किसी भी दिशा में फैल सकती थी। फिर, मेरे माता-पिता ने उसे दीवार पर चढ़ने के लिए तैयार किया; वह नाज़ुक बेल वहाँ भी ऊपर चढ़ गई। एक सुबह, मैंने देखा कि एक कोमल अंकुर निकल रहा है। यह क्या था? मुझे एहसास हुआ कि यह तोरई की एक छोटी सी शुरुआत थी, जो आगे चलकर एक शानदार पीले फूल के साथ खिलने वाली थी। जैसे-जैसे वह थोड़ी बड़ी हुई, उस पर बड़ी-बड़ी काली चींटियाँ छा गईं! "अरे नहीं! वे तो पूरी तोरई खा जाएँगी," मैं परेशान हो गई और कई रातें चिंता में बिताईं। फिर मुझे एहसास हुआ—वह तो असल में खूब फली-फूली थी। मेरे सामने एक सुंदर तोरई थी। मेरा मन एक गहरे विचार में खो गया: एक औरत भी अक्सर अपनी ही नाज़ुकता में खो जाती है। वह एक समूह में अपनी जगह बनाने के लिए संघर्ष करती है; उसे हर पल अपनी ही बहनों और माँ से चोट पहुँचती है। मैं इसे स्त्री-पुरुष की लड़ाई के तौर पर पेश नहीं करना चाहती। फिर भी, ज़िंदगी में अगर किसी बेल को सहारा मिल जाए, तो वह बेतरतीब ढंग से नहीं फैलती; बल्कि, अपने फल को धीरे से सँभालते हुए, वह और ऊँचाई पर चढ़ती जाती है। ऐसा होता है, है ना? चीज़ों की प्रकृति ही ऐसी है। घने जंगलों को फैलते हुए शहरों में बदलते देखकर, मन में सवाल उठता है —"क्या होता अगर चीज़ें अलग तरह से की गई होतीं?" आज, यही बात हमारे "कंक्रीट के जंगलों" पर भी लागू होती है। खालीपन से ऊबा हुआ मन, ऐसा मन जो सब कुछ आसानी से मिल जाने पर बस यही कहता है कि "ऐसा तो होता ही है"—वह उस बिंदु से आगे नहीं बढ़ पाता। सच्ची मेहनत और उत्पादकता की संस्कृति जड़ नहीं जमा पाती। कॉलेज के दिन दोस्तों के साथ बातचीत करने और ज़िंदगी को आगे बढ़ाने के लिए ज़रूरी सहारे की तलाश में बीत जाते हैं, जबकि हमारे आस-पास बड़े-बड़े शिक्षण संस्थान खड़े होते हैं। मुझे दोस्तों के एक समूह के साथ की गई एक यात्रा याद है—हम एक प्रतियोगिता के लिए गए थे। मेरे पास थोड़े पैसे थे। एक दोस्त ने सबके टिकट खरीदे, लेकिन बाद में उसने हम सबको कहा: "TTMM" (हर कोई अपना हिस्सा खुद देगा)। जैसे ही मैंने टिकट खरीदा और मन ही मन हिसाब लगाने लगी कि पेमेंट कैसे करना है, उसने कहा, "TTMM।" बाकी सब हँसे और सहमत हो गए। मैं इस शब्द से वाकिफ़ नहीं थी। जब मैंने पूछा कि इसका क्या मतलब है, तो एक दोस्त ने समझाया, "तुम अपना खर्च खुद उठाओ, मैं अपना खर्च खुद उठाऊंगा।" असल में, मैं भी यही तरीका अपनाना चाहता था। फिर भी, यह एक खास तरह का अनुशासन है—जिसे

अपनाना आसान नहीं है। असल में, बच्चों को अक्सर ऐसे रास्ते नहीं दिखाए जाते। हमारा सफ़र घने जंगलों से कंक्रीट के जंगलों की ओर बढ़ रहा है; सिर्फ़ यह कह देना कि "बाकी सब भी तो ऐसा ही कर रहे हैं" काफ़ी नहीं होगा। आइए, हम जो कर सकते हैं, वह करें; अगली पीढ़ी की भलाई इसी पर निर्भर करती है। तोरई की बेल—जिसे मुख्य पौधे का सहारा मिलता है—हमें सिखाती है कि ऊपर की ओर बढ़ना मुमकिन है; यहाँ तक कि एक छोटी सी बेल में भी अपनी संतान को पालने-पोसने की ताकत होती है। क्या कोई महिला इससे अलग हो सकती है? बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है; पुरुषों पर भी यही बात लागू होती है। आख़िरकार, वे भी तो ऐसा ही कर रहे हैं। अगर सारी ऊर्जा सिर्फ़ दूसरों से गुज़ारिश करने या अपील करने में ही खर्च हो जाए, तो असल में काम पूरा करने के लिए क्या ताकत बचेगी? इसके अलावा, एक और बात है: एक सीधे-सादे, ईमानदार इंसान को अक्सर लोग परेशानी या सिरदर्द समझने लगते हैं। कोई भी उनके बारे में कुछ भी कहने की आज़ादी महसूस करता है। जब कोई सीमा या मर्यादा नहीं रह जाती, तो सब कुछ मुश्किल हो जाता है। "ऐसा होता ही है, है ना? हमें देखना होगा कि असल में क्या हुआ... हमें सच में इस पर गौर करना चाहिए... सब ठीक हो जाएगा... रहने भी दो... क्या किया जा सकता है... शायद हमें एक बार देख लेना चाहिए..." मैं सम्मान और इज़्ज़त के बारे में बात करने के लिए बहुत मामूली इंसान हूँ। फिर भी, मैं इन सब चीज़ों की बारीकियों को लगातार देखता रहता हूँ—ठीक वैसे ही जैसे एक बेल की ज़िंदगी होती है...

२९/०१/२६

कर्म का सिद्धांत

बहुत से लोग नहीं जानते कि यह समाज ऐसे लोगों पर चल रहा है। आज मुझे कोई यात्री नहीं मिला, कुछ रिक्शा चालक जो लंबे समय से यही काम कर रहे हैं, रिक्शा छोड़कर चले जाते हैं, शराब नहीं छोड़ते, सब्जियां घर नहीं लाते। अगर सब्जियां नहीं हैं तो सब्जियों का क्या? वे जोर-जोर से कुछ भी कहते हैं। लेकिन वे यात्रियों की तलाश नहीं करते। वे कभी समझते ही नहीं। वे कर्मफल के सिद्धांत के बारे में कभी नहीं सोचते। क्योंकि कुछ लोगों में कर्म करने की इच्छा होती है और उन्हें बैठना पड़ता है। जबकि कुछ लोगों को समय नहीं मिलता। ऐसे बहुत से लोग हैं जो सचमुच विज्ञान को जीते हैं, वे छात्रों को प्रशिक्षु के रूप में भी नहीं रखते। क्योंकि उन्हें पहचान नहीं मिलती। समाज में ऐसे कई उदाहरण हैं, जो काम तो करते हैं, लेकिन समझते नहीं। हमें यह सीखना चाहिए कि यह एक दुर्लभ मामला है। मनोरंजन क्षेत्र से लेकर प्रचार

तक, प्रसिद्धि पाने वाले लोग कैसे रहते हैं? कोई नहीं पूछता। हमारे पास बहुत काम है। अगर हम पढ़ना चाहते हैं। एक छोटा बच्चा कब जानता है कि वह जन्म लेने वाला है? हम उसे यह फल सिखाते हैं। जितना ज्यादा, उतना ही बेचैन वह हो जाता है। बचपन से ही। संक्षेप में कहें तो, जिनके पास कुछ नहीं होता, वे अच्छे कर्म करते हैं। उनके पास साधन तक नहीं होते। शिक्षा कोई भगदड़ नहीं है, बल्कि एक सीधी रेखा में चलना है। जिन बच्चों ने 'मा फलेषु कदाचना' (परोपकार) सीखा है, वे अपने अधिकारों के लिए शायद ही कभी सवाल करेंगे। वे अपने कर्तव्यों के लिए तैयार रहेंगे। जो लोग अपने अधिकारों और कर्तव्यों का निरंतर हिसाब रखते हैं, उन्हें वे प्राप्त होंगे। मैंने क्या सीखा, क्यों सीखा, किसके लिए सीखा, ये सभी हमारे कारण हैं। इससे किसे लाभ हुआ, मैंने इसका क्या उपयोग किया, ये सभी हमारे कारण हैं। आइए इन सबका अध्ययन करें। एक ऐसी नई सामाजिक संरचना के लिए, जिसमें एक शिक्षित व्यक्ति बिना कारण शिकायत न करे। ऐसी शिक्षा सभी के लिए सुलभ हो। कार्यस्थल से कहीं अधिक शिकायतें करने के स्थान हैं। क्योंकि समर्पित हृदय निराश हो जाते हैं। विश्वास निराशा से सीखने वाला सबक नहीं है। अपने हाथों से काम करो, मन में विश्वास रखो। आइए अध्ययन करें...

३०/०१/२६

समय के साथ

हमें समय के साथ चलना होगा। कोई जानकारी देता है, अब मेडिकल में अवसर हैं, कोई कहता है सीए (कराटे असिस्टेंट) आदि। आम से लेकर हर स्तर के माता-पिता कितनी बाधाओं को पार करते हैं? कई बार वे सचमुच डॉक्टर बनना चाहते हैं, लेकिन आखिरी समय में सीट नहीं मिलती। जब समाज में फर्जी दस्तावेज बनाने वाले लोग दिखते हैं, तो जो लोग इससे परिचित नहीं हैं, वे हैरान रह जाते हैं। किसी भी कॉलेज का चयन करना कभी आसान निर्णय नहीं होता। जो होशियार लोग शीर्ष से नीचे तक नाम कमाते हैं, वे कुछ नहीं करते। कुछ लोग बिना औपचारिक शिक्षा के साहसपूर्वक नौकरी करते हैं। औपचारिक शिक्षा महत्वपूर्ण है। आज की जरूरतों के अनुसार, एक शिक्षित डॉक्टर के साथ इंटर्नशिप करना और यहां तक कि अपनी किताबें बच्चों को पढ़ने के लिए देना और उन्हें पढ़ाना, बच्चों के गलत रास्ते पर जाने से कहीं बेहतर है। यह कॉलेज का विकल्प नहीं है। यह शिक्षा प्रणाली का विकल्प है। कई नर्सें सलाइन लगाना नहीं जानतीं, वे हिम्मत दिखाती हैं, यह व्यावहारिक है, यह सच है, लेकिन जब वे विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में पूरी तरह से प्रशिक्षित होती हैं, तो आत्मविश्वास आता है।

यह एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। सीमेंट ब्रांड, स्टील ब्रांड जाना जाता है, परीक्षण के लिए सामग्री कहां है? क्या रिपोर्ट दी जा सकती है, यह छपी हुई है। धीरे-धीरे वे खुद को रिपोर्ट भी नहीं दे पाते। वे महिला सुपरवाइजर पर अत्याचार करते हैं। मुश्किलें तो आती हैं। लेकिन जो इन मुश्किलों से पार पाता है, वह महान नहीं बनता, बल्कि मूल्यों में रुचि रखता है। छोटे बच्चों पर जानलेवा प्रयोग मत करो। ज़मीन तो है, उसकी परीक्षा होगी। बिना किए उसे फेंक मत दो। मुझे पता है। बहुत सी मुश्किलें हैं। लेकिन जो मुमकिन है, नामुमकिन नहीं। यह सच है कि नैतिकता की बात करते समय कोई चुनौती नहीं दी जा सकती। लेकिन समय का क्या मतलब है? सत्य समय के साथ नहीं बदलता। व्यवस्था बदलती है। भले ही व्यवस्था किसी की इच्छा से बदले। लेकिन शाश्वत व्यवस्थाएं कभी ऐसी नहीं होतीं। कोई इच्छा नहीं होती। बल्कि सत्य, सही और अच्छाई होती है। क्षेत्र ही ज़िम्मेदारी है। लोग कितनी छोटी-छोटी चीजें चाहते हैं? समय के साथ सब कुछ नहीं बदलता... सिर्फ व्यवस्थाएं बदलती हैं। जैसे सांप अपनी केंचुली उतारता है, वैसे ही व्यवस्था बदलती है। लेकिन लोग डरते हैं। आइए देखें कि कितनी चीजें अपरिवर्तनीय हैं।

दिनांक :- 2012/2012/2012

भूमिकाओं में तनाव और एकता

इस तरह की बातें बचपन से ही शुरू हो जाती हैं। जब घर में एक बच्चा आता है, तो सब उसे प्यार करते हैं। जब दूसरा आता है, तो आमतौर पर सब कुछ बाँटने का सिलसिला शुरू हो जाता है। सब, चाहे जवान हों या बूढ़े, एक-दूसरे को देखते रहते हैं। अपनी बुद्धि का इस्तेमाल वे शायद ही कभी करते हैं - अगर उन्हें मौका मिले तो। बाद में, ये बच्चे बड़े हो जाते हैं, और अगर उन्हें मौका मिले, तो वे रिश्तों को समझने लगते हैं। उनके जीवन में एक खींचतान शुरू हो जाती है। बहुत से लोगों का जीवन/क्षण अपनी भूमिका न समझने के कारण बर्बाद हो जाता है। लेकिन हमें सावधान रहना चाहिए। प्यार करना और प्यार देना जीवन का हिस्सा हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन कर्म तो हर दिन मिलता है। हम हमेशा दिखावे के लिए कुछ न कुछ करते हैं। लेकिन अगर हम उसे अपनी पसंद से करें, तो और भी अच्छा करते हैं। इससे भी बढ़कर, समाज में बहुत से लोगों को लाभ पहुँचाने से अच्छा लगता है। ज़रा सोचिए, क्या होता है जब हमें कोई ऐसी नौकरी मिल जाती है जो हमें पसंद नहीं? एक खींचतान! जिसे नौकरी पसंद आती है और मिल जाती है, वह परेशान हो जाता है, कुछ गलत काम कर बैठता है और सब नाराज़ हो जाते हैं। वहीं दूसरी ओर, अगर ज्ञान बाँटा न जाए, तो बहुत हंगामा मच

जाता है। पानी बर्तन में ज़्यादा देर तक नहीं टिकता। इसीलिए तो फ़िल्टर का आविष्कार हुआ था। लेकिन अगर हम अपनी समझ को साझा करते हैं, तो कम से कम हम खुद के और दूसरों के प्रति ईमानदार महसूस करते हैं। यही है रस्साकशी और भूमिकाओं की एकता। शुरुआत में यह काम नहीं करता, क्योंकि प्रलोभन होते हैं। वे हमें लगातार इधर-उधर ले जाते हैं। मैं पहले सोचता था कि बंदर बंदर को नचाता है। लेकिन नहीं, बंदर ऐसा होता है। हमारे दिमाग ने यह उपमा नहीं दी है। लेकिन जानते हैं क्या? मुझे बंदर बनना अच्छा लगता है। कितना खुश होता है वह? क्या आपने कभी उसे देखा है? देखिए, तब आप समझ जाएंगे। बस इधर-उधर दौड़कर ही उसे अपना कुछ मिल जाता है। मैं हमेशा खुद को बंदर और हाथी दोनों की भूमिका में रखता हूँ। क्योंकि एक बार मैंने पहली बार नासिक के किले में एक बंदर देखा था, और एक बार हाथी। इन दोनों को देखकर मैं बहुत खुश हुआ था। क्योंकि ये दोनों जानवर मुझे बहुत अजीब लगते हैं। अब यह रस्साकशी और भूमिकाओं की एकता कैसे काम करती है? तो अगर हम खुद को जानते हैं, तो हम अपनी भूमिका को समझ सकते हैं, अगर हम खुद को नहीं जानते, तो हम किसी भी भूमिका में अच्छा काम नहीं कर सकते। मैं अपनी पूरी कोशिश करता हूँ। अगर आप भी ऐसा करेंगे तो आपको भी अच्छा लगेगा।

दिनांक :- 20/20/2020

ऐसा क्यों हुआ?

हमारी ज़िंदगी में लगातार कई घटनाएँ होती रहती हैं—कुछ हमारे नज़रिए से अच्छी होती हैं, तो कुछ बुरी। इसके कई पहलू हैं। कभी-कभी, दूसरों की गलत आदतों या सोच की वजह से, हमें बिना किसी गलती के भी बुरे अनुभवों का सामना करना पड़ता है। इससे न सिर्फ़ हमें गहरा दुख पहुँचता है, बल्कि ऐसे अनुभव हमारे अंदर कई तरह के बदलाव भी लाते हैं—चाहे वे अच्छे हों या बुरे। ये बदलाव अक्सर बहुत सूक्ष्म होते हैं। ज़िंदगी में संकट आना तय है या नहीं, यह अलग बात है; लेकिन उनसे उबरने की ताकत सिर्फ़ रणनीति या बुद्धि से नहीं, बल्कि नैतिकता और अच्छी आदतों से मिलती है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बचपन में बनी अच्छी आदतें कई वजहों से बदल सकती हैं—जैसे हमारी संगति, बाहरी प्रभाव, या खुद को ठीक से न समझ पाना। अक्सर, खास हालात में हमारे कामों के पीछे की वजहें, तरीके, मकसद और वे लोग जिनके लिए हम काम करते हैं, समझ से परे होते हैं। जो इंसान हमेशा दूसरों के निर्देशों का पालन करता है, वह सोच सकता है कि वह बाकी दुनिया से

कितना पीछे है; फिर भी, आज्ञा मानना संयम का सबसे ऊँचा स्तर है। कई लोगों का स्वभाव होता है कि वे बस आज्ञा मानने के बजाय कुछ अलग करने की कोशिश करें। हालाँकि, ऐसा करते समय इस बात पर गहराई से सोचना ज़रूरी है कि क्या हमारे काम दूसरों के लिए गलत तो नहीं हैं। उम्र बढ़ने के साथ यह यकीन होना कि "मैं सही हूँ" ज़रूरी है, लेकिन साथ ही आत्म-चिंतन करना और खुद से पूछना भी उतना ही ज़रूरी है कि "क्या मुझसे कोई गलती हुई, और अगर हुई, तो क्यों?" यह बात खासकर युवाओं के लिए बहुत ज़रूरी है। करियर के नए मौकों, नई चुनौतियों और निजी ज़िंदगी की मुश्किलों के बीच, ज़िम्मेदारियों को ठीक से निभाने के लिए "मैं" या "तुम" से हटकर "हम" की सोच अपनाना बहुत ज़रूरी हो जाता है। फिर भी, जब हम "हम" की बात करते हैं, तो गलती का विचार अक्सर गायब हो जाता है; गलती हमेशा निजी होती है, जबकि खुशी बांटी जाती है। समाज में कई बुरी चीज़ें होती हैं, और अक्सर इनकी जड़ें बचपन के अनुभवों में होती हैं। एक बार जब कोई इंसान प्रतिष्ठा या मान-सम्मान के विचार में पूरी तरह उलझ जाता है, तो उससे निकलना मुश्किल हो जाता है। यह ज़रूरी है—खासकर युवा पीढ़ी के लिए—कि वे सोचें कि क्या वे ज़रूरत की वजह से काम कर रहे हैं या प्रतिष्ठा के लिए, क्योंकि हालात लगातार बदलते रहते हैं। हम अक्सर दूसरों द्वारा पैदा की गई बाधाओं या अपनी गलतियों, आत्म-जागरूकता की कमी या निजी सीमाओं से पैदा होने वाली मुश्किलों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं। फिर भी, हम अक्सर खुद से या दूसरों से पूछते हैं, "ऐसा क्यों हुआ?" या "ऐसा क्यों होता है?" हम खुद का, हालात का और अपने आस-पास के लोगों का सही से विश्लेषण नहीं कर पाते। बिना ज़्यादा सोचे-समझे दूसरों पर दोष मढ़ना बहुत आसान है; असली चुनौती अपनी गलतियों को मानना और हालात का निष्पक्ष रूप से विश्लेषण करना है। अगर हम खुद का और हालात का जायज़ा लें, तो शायद हमें एहसास हो कि पुलिस बल की स्थिति भी बेहतर हो सकती थी। आखिर, किसी के लिए सज़ा तय करना या इतने अहम फ़ैसले लेना क्या सच में आसान है? हम जितनी ज़्यादा अपनी गलतियों को मानेंगे और हालात को समझेंगे, उतनी ही बेहतर तरीके से यह जान पाएंगे कि चीज़ें वैसी क्यों हुईं। इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि जिन बच्चों को अपनी माँ या माता-पिता से लगातार सहारा मिलता है, वे बिगड़ सकते हैं; अगर वे अपने कामों के संदर्भ या नतीजों को नहीं समझते, तो वे अपने किए पर कैसे सोच-विचार कर सकते हैं या अपने माता-पिता के प्रति ईमानदार कैसे हो सकते हैं? यही बात उन बच्चों पर भी लागू होती है जिन्हें ऐसा सहारा नहीं मिलता; वे या तो बागी हो सकते हैं या फिर अकेले-

अकेले रहने लग सकते हैं। इससे बचने के लिए, बच्चों में कम उम्र से ही आत्म-चिंतन की आदत डालना और उसे कभी न छोड़ना बहुत ज़रूरी है। यह सोचना कि बड़े होने पर ऐसे चिंतन की ज़रूरत नहीं है, एक बड़ी गलतफहमी है। क्या हम पूरे भरोसे के साथ कह सकते हैं कि हमने आत्म-जागरूकता का यह स्तर हासिल कर लिया है? यह एक व्यक्तिगत मामला है। अगर यह आदत हर किसी के लिए आम हो जाए, तो "चीज़ें क्यों होती हैं" जैसे सवाल बार-बार पूछने की प्रवृत्ति कम हो जाएगी। जैसे-जैसे यह बदलाव व्यक्ति से समाज के स्तर पर पहुँचेगा, जटिल और परेशान करने वाली स्थितियाँ कम होंगी। ऐसा करते समय, यह नहीं भूलना चाहिए कि यह एक सफ़र है। और इससे भी ज़रूरी बात यह है कि यह एक अकेला सफ़र है।

दिनांक :- //

आलस्य

जब हम कहीं जाते हैं, तो बड़े-बुजुर्ग शिकायत करते नज़र आते हैं। क्या करें, लोगों को अच्छा काम नहीं मिल रहा। जैसा कहा जाए वैसा काम करना तो मुमकिन ही नहीं, बिना कहे काम करना तो दूर की बात है। लोग दूर से ही सब कुछ सुनते हैं और अपनी मनमर्जी करते हैं। कम उम्र में काम शुरू करने पर भला किसी को क्या चाहिए? सब खुश तो नहीं होते, लेकिन उत्साहित ज़रूर होते हैं। थोड़ा पैसा न मिले तो जो मन करे ले लेते हैं। बड़े-बुजुर्ग सबकी प्रशंसा करते हैं, पर काम को लेकर हमेशा चिंतित रहते हैं। पर हमें कुछ समझ नहीं आता। जो लोग नहीं समझते, वे काम में किसी न किसी तरह का हिसाब-किताब लगा रहे होते हैं। बड़े होकर भी वे यही करते रहते हैं, चाहे छोटे बच्चे ही क्यों न हों। लेकिन बच्चे तो कल की उम्मीद होते हैं। अगर हम आज और कल के किसी भी काम के लिए कारण बताएं, तो उसके पीछे भी कोई न कोई कारण होता है। कभी काम करने का मन नहीं होता, कभी उसके पीछे हिसाब-किताब होता है, कभी सच में कोई वजह होती है। क्या हम इन सब बातों की ठीक से जांच करते हैं? ऐसा क्यों होता है? इसलिए अगर बड़े-बुजुर्ग परेशान हो जाते हैं, तो उनकी उम्मीद कम हो जाती है। उनकी उम्मीदों का इस तरह कम होना ठीक नहीं है। क्योंकि वे ही तो बच्चों को खुशी देते हैं। बच्चों का उत्साहित होना एक अलग बात है। कुछ बच्चे छोटी उम्र से ही हर संभव प्रयास करते हैं। कुछ बच्चों को इसमें आनंद आता है। यह तो बस आलस्य है। क्योंकि वे समझते तो हैं, लेकिन अपनी क्षमता के अनुसार काम नहीं करते। बच्चों को समझना सबसे कठिन है। क्योंकि वे बहुत बुद्धिमान होते हैं। वे जल्दी ही दूसरों को काम करने के लिए कहना सीख जाते हैं। काम से ऊब जाना एक बात है,

लेकिन काम करते-करते ऊब जाना एक अलग बात है। चेकलिस्ट कौन बनाएगा, हम क्या करेंगे? हम कहां और क्यों ऊब जाते हैं? लोग काम को इतनी प्राथमिकता नहीं देते कि दूसरों से अनुरोध करते-करते थक जाते हैं। क्या यह सामाजिक संगठन के लिए अच्छा है? साथ ही, यह समझाने की कभी जरूरत नहीं पड़ती कि दूसरा व्यक्ति हमारे लिए कितना महत्वपूर्ण है। हम यह महसूस करते हैं। आलस्य, ऊब और थकान का गहन विश्लेषण किया जाना चाहिए। सामाजिक संगठन मजबूत होंगे। मेहनत को नए अर्थ मिलेंगे। निराधार गलतफहमियां पीछे छूट जाएंगी। एक व्यवस्था के रूप में हम विजयी होंगे। हालांकि यह आसान नहीं है, लेकिन मुश्किल भी नहीं है। अपने से कम उम्र के व्यक्ति की देखरेख में अवांछित काम करना बहुत दुखद होता है। लेकिन अगर हमारी मंशा अच्छी हो, अगर हम इस पीड़ा को दूर करने के लिए प्रयास करें, तो दुनिया के लिए हम एक साधारण व्यक्ति ही रहेंगे, लेकिन कम से कम हमें यह तो पता होगा कि हम कर्म के मार्ग पर सही ढंग से चल रहे हैं।

दिनांक :- 200/200/2002

मुझे बताओ कि जीवन कैसे जीना है?

मंगेश पडगांवकर कविता में पूछते हैं, मुझे बताओ कैसे जिएं? कारण क्या है? कौन समझता है, कैसे जिएं, कौन नहीं समझता, क्यों और कैसे? आत्म-पहचान कभी किसी को नहीं रोकती। उसका मार्ग सीधा है। वह कभी किसी से नहीं पूछती, मुझे बताओ कैसे जिएं? किन पाबंदियों के जवाब हैं, वे कौन सी आज़ादी जानते हैं, उन्हें तो केवल पाबंदियां ही दी गई हैं। क्योंकि मुझे कुछ दिखाई नहीं देता। अगर हम पडगांवकर से आगे नहीं बढ़ते, तो इस कविता का जवाब वही गीत गाना है जो उन्होंने कहा है। सच्ची तड़प जवाब ढूंढ लेती है। लेकिन यह हमारा अपना होना चाहिए। सबका अपना। हमारा रास्ता इसके विपरीत है। अगर हम अपना रास्ता ढूंढ लें और ज़रूरतमंदों की मदद करें, तो ठीक है। वरना, हम बहुत भटक चुके होते। कई लोग अक्सर सोचते हैं, मुझे बताओ कैसे जिएं? गलती कहां है? रास्ता घर से ही दिखाई देता है। बच्चा नहीं पूछता, मुझे बताओ कैसे चलें? वह चलना शुरू कर देता है। फिर अचानक जीवन में यह अंधेरा छा जाता है, कैसे? क्योंकि मैं खुद को भूल गया/खुद को भुला दिया। मैं वही करूँगा जो मुझे अच्छा लगेगा, यही हम सबके लिए सही रास्ता है। लेकिन अच्छा महसूस करने में क्या कुछ और भी नहीं है? भीतर का प्रकाश कितना कुछ बताता है? लेकिन अंधी आत्मा तड़पती रहती है। कुछ लोग प्रसिद्धि के लिए काम करते हैं, कुछ इसलिए कि उन्हें जीवन का आनंद नहीं मिल रहा, कुछ इसलिए कि वे और पैसा

कमाना चाहते हैं... हम कहाँ देखें... कोई करुणा से पूछता है, मुझे जीने का तरीका बताओ? जब तक हम जीवित हैं, तब तक नहीं, भले ही फूलों का रास्ता हो, कम से कम काँटों वाला रास्ता तो नहीं होना चाहिए... जवाब मिलता है, मुझे जीने का तरीका बताओ? यही वह है जिसकी हम हठपूर्वक खोज करते रहते हैं...

दिनांक :- //

क्या हुआ?

एक सवाल है। जिसके कई पहलू और अर्थ हैं। कुछ बातें गंभीर होती हैं। छोटे बच्चों में कितनी गंभीरता होती है? ऐसा लगता है। अगर हम उन्हें थोड़ी सी समझ दें, तो कोई भी उनके जितना समझदार नहीं हो सकता। क्या हुआ? क्या हो सकता है जब कोई उन बातों को समझ ले जिन्हें हम संवेदनशील कहते हैं? कौन, जवान हो या बूढ़ा, किस बात पर चर्चा करता है? क्या हम सबको सब कुछ बताकर सबको समझदार बना देंगे? 'चोली के पीछे' या 'आइए मेहरबा' जैसे गाने बहुत अच्छे हैं। लेकिन हम उन्हें कैसे स्वीकार करेंगे? एक पुरुष और एक स्त्री के बीच के संवेदनशील रिश्ते पर इसका कितना असर पड़ेगा? अगर हमें यह समझ ही नहीं है कि किसी बात को कैसे स्वीकार करना है, तो क्या हमें उसे प्रचारित नहीं करना चाहिए? क्या यही आसान तरीका है? दरअसल, जब हमें एहसास होता है कि इसका हम पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है, तो हमें इसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। कभी-कभी, एक बार हुई घटना पर बहुत चर्चा होती है, कि वह क्यों हुई, बिना यह देखे कि वह अच्छी थी या बुरी, सही थी या गलत, फिर उसमें असली गलती कहां थी, यह बात छूट जाती है। और एक अंधा नियम सामने आ जाता है। मेरी राय में, एक नियम का जन्म अभी होना बाकी है। असल नियम तो यह है कि जहाँ लोग घटी घटना को समझ लें, वहाँ उचित चर्चा हो और मामला वहीं खत्म हो जाए। क्या बच्चे अच्छे बनेंगे? दो दोस्तों के बीच कुछ हुआ, यह उनकी ज़िम्मेदारी है। वे ज़िम्मेदार नहीं थे, क्या तीसरा पक्ष इसका फ़ायदा उठाएगा या ज़िम्मेदारी लेगा? झगड़े बंद होने चाहिए। क्या एक मज़बूत समाज बनाने के लिए या समाज को लगातार दुख पहुँचाने के लिए? क्या हुआ? हम क्यों पूछते हैं - कुछ प्यार, कुछ जिज्ञासा, कुछ सद्भावना, कुछ यह कहानी वहाँ - कुछ वह अभी भी वहाँ है, कुछ चिंता, कुछ फिक्र, कुछ बस मज़ाक... चलो याद करें कि क्या हुआ? कितने सवाल छिपे हैं। इसमें शामिल लोग निश्चित रूप से दो लोगों की ज़िंदगी तय कर सकते हैं। क्योंकि सामाजिक शक्ति और आघात क्या है? चलो सोचते हैं। जो कुछ भी होता है, जो कुछ

भी होता है, वह उनके लिए होता है, जिनकी समझ बहुत कम होती है। उनमें कुछ भी बुरा नहीं है। हमारी समझ अपनी गति से बढ़ती है, यही असली विकास है। बाकी सब दिखावा है। अक्सर किस गाँव से, कितनी दूर तक खबर पहुँचती है। कहानी बहुत अच्छी होती है। लेकिन जितनी तेज़ी से गलत, बुरी बातें फैलती हैं, वह अच्छी क्यों नहीं होती? विचार और सवाल... क्या हुआ?

दिनांक:- / /

आभास

भ्रम का युग अलग होता है। यहीं से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सपनों की दुनिया चाहे कितनी भी लुभावनी क्यों न हो, जिस व्यक्ति की समझ सिर्फ स्थिति का अनुमान लगाने से कहीं अधिक होती है, वह कभी भ्रम में नहीं जीता। भ्रम तो भ्रम पैदा कर सकता है। बच्चों की कोमल, सौम्य दुनिया में हमें जगह बनाने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। वहां भ्रम काम नहीं करता। कुछ लोग दिखावा करके जीना सही समझते हैं। यही उनकी जीवनशैली बन जाती है। बच्चे भी दबाव में ऐसा ही करते हैं। उन्हें मुखौटा पहनकर अपना जीवन जीना पड़ता है। कुछ लोगों को यही सिखाया जाता है। इसके पीछे एक कारण है। कुछ लोग मानते हैं कि जीवन एक सीढ़ी है। लेकिन उम्र हमें समझाती है कि यह एक चढ़ाई है और फिर एक ढलान, लेकिन हम इसे कभी स्वीकार नहीं करते। जो व्यक्ति लगातार कई चोटियों पर चढ़ता हुआ प्रतीत होता है, वह शायद ही कभी किसी एक व्यक्ति का काम होता है। बच्चा तभी समझता है जब वह बड़ा हो जाता है, क्या वह अकेले बड़ा हो सकता है? तो फिर लोगों को आभासी दुनिया में क्यों जीना पड़ता है? हम जितना भ्रम से दूर होते हैं, उतना ही हम वास्तविक जीवन को समझने लगते हैं। सपने भ्रम नहीं होते। ऊँचे विचारों के साकार होने की आशा है, और सपनों के सच होने का एहसास है। कौन कह सकता है कि छोटे बच्चों को अति यथार्थवाद या आशावाद सिखाना चाहिए या उन्हें आभासी दुनिया में जीना चाहिए? सिर्फ़ यही एक शब्द दिखाता है कि दुनिया जीवन के कितने अलग-अलग पहलुओं को कितनी बारीकी से समझती है। एक उबाऊ घंटा बताता है कि शिक्षक उतना पढ़ाना नहीं चाहते। क्योंकि शिक्षक वहाँ मौजूद नहीं हैं। फ़िल्म उबाऊ थी... बहुत शोर था... इत्यादि। उबाऊ चीज़ें इस बात का संकेत हैं कि हम वहाँ मौजूद नहीं हैं। सामाजिक समावेश... या प्रतिबद्धता आदि छोटे बच्चों को बहुत उबाऊ लगती हैं। क्योंकि जब छोटी-छोटी चीज़ों के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है, तो सब कुछ उबाऊ हो जाता है। क्योंकि आभासी दुनिया में जीना सुविधाजनक नहीं है, है ना? ऐसा

बहुआयामी एहसास... जितना आप इस एक शब्द का अध्ययन करेंगे, उतना ही आपको एहसास होगा कि यह जीवन में कितनी जगहों पर मिलता है। क्या आपको इसका अध्ययन करना चाहिए?

०६/०२/२६

शीडी

कई बच्चों के मन में यह धारणा होती है कि अगर वे बचपन में किसी का अनुसरण करेंगे तो उन्हें मनचाहा मिल जाएगा। इसका कारण यह है कि माता-पिता पढ़ाई नहीं करते और बच्चों की बात नहीं मानते, इसलिए बच्चे पढ़ाई छोड़कर उनके बारे में कहानियां गढ़ने में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। साथ ही, वे किसी को पसंद भी करने लगते हैं। यही बात घर के सामाजिक माहौल पर भी लागू होती है। कई लोग समाज में किसी प्रसिद्ध व्यक्ति की तलाश करते हैं, यह सोचकर कि इससे उन्हें लाभ होगा। इस तरह की तलाश का कारण समाज में किसी भी प्रकार का पेशेवर रवैया है, जो काम के लिए नहीं होता, या सिर्फ व्यावसायिकता है। उनके बीच चलने वाला व्यक्ति पेशेवर मानवता है! आपने कौन सा शब्द सुना है? यह व्यावसायिकता है, यह संवेदनशीलता है। यह अच्छा नहीं है कि किसी व्यक्ति को दुखी जीवन जीना पड़े। ऐसा व्यक्ति कभी काम नहीं करता। यह बचपन में ही झलकने लगता है। अगर बच्चे बचपन से ही कुछ पाने के लिए अपने माता-पिता के पीछे-पीछे चलते रहते हैं, तो उन्हें एहसास होगा कि उन्हें भी कोई काम दिया गया है, या वे भी कोई काम कर सकते हैं। ये बच्चे बड़े होकर उस काम को छोड़ देते हैं और बड़ों का अनुसरण करते हैं। और जब उन्हें यह पसंद नहीं आता, तो उन पर राजनीति की बुराई करने का आरोप लगाया जाता है। इसके लक्षण बचपन में ही देखे जा सकते हैं। कौन सा अभिभावक बेहतर है? माँ या पिता? वे किसका, कब, किसलिए और कितनी बार पक्ष लेते हैं, इसका गणितीय हिसाब-किताब चलता रहता है। अगर आप उनसे 27+35 मौखिक रूप से पूछें, तो वे भावहीन चेहरा बना लेते हैं, लेकिन हिसाब-किताब मन में रखते हैं। सामाजिक तौर पर सबसे बड़ी विपत्ति यही है कि आपको किसी का पक्ष लेना पड़े। इसी तरह, घर में कौन मेरा पक्ष लेगा, इसका हिसाब लगाने में हर पल बिताना सबसे बुरा है। आप जैसे महान समाज सुधारक अपना समय बर्बाद कर रहे हैं। ऐसी बातें सुनना और अपने विचारों को दृढ़ता से व्यक्त करना, चार दीवारों की शरण में रहना, इससे बेहतर सामाजिक सुरक्षा और कोई नहीं है। बात तो इस समूह की है। हमारे दायरे समूह से बेहतर हैं। भले ही छोटे बच्चे इसे न समझें, लेकिन किसी खास वजह से एक समूह से दूसरे समूह में जाना

जरूरी होता है। है ना? समूह की अवधारणा को मत सीखिए। स्पष्टवादिता जीवन में बहुत सुख और सफलता लाती है। चलिए सोचते हैं कि क्या हम पेशेवर संवेदनशीलता बनाए रख सकते हैं?

दिनांक :- 7/7/72

खुशियों का खजाना

छोटे बच्चों को देखने पर पता चलता है कि मुश्किल हालात में भी वे कितने खुश रहते हैं। यह कैसे मुमकिन है? खुशी के कई तरीके खोजने के बावजूद, उनकी मासूमियत कैसे बनी रहती है? इसकी वजह यह है कि वे बड़ों की दुनिया के लेन-देन वाले स्वभाव से दूर रहते हैं। बड़े होने पर अक्सर ऐसे हालात बनते हैं जब रिश्ते निभाना मुश्किल हो जाता है; ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हम बहुत सारी सामाजिक जिम्मेदारियां उठा लेते हैं, या शायद इसलिए—सालों तक कई लोगों से मिलने के बावजूद—हमने कभी सही सबक नहीं सीखे या सिखाए, या बस इसलिए कि हमने दुनियादारी का लेन-देन तो सीख लिया, पर और कुछ नहीं। जो लोग इंसानी मेल-जोल की बारीकियों को नहीं समझ पाते, उन्हें रिश्ते निभाने में भी मुश्किल होती है; आखिर, कोई कैसे समझ सकता है कि उसने कहाँ बहुत कम, बहुत ज़्यादा या कुछ भी नहीं दिया? कुछ लोग, ऐसे अनुभवों से बहुत दुखी होकर, आखिर में रिश्तों का "बिज़नेस" सीखने की कोशिश करते हैं। फिर भी, रिश्ता सुई-धागे के काम जैसा होता है: एक कपड़ा बुना जाता है और कढ़ाई एक-एक धागे से पूरी होती है। क्या रिश्ते इससे अलग हैं? कभी-कभी उम्मीद बस थोड़ा समय देने की होती है; कभी-कभी यह इस बात को मानने की होती है कि क्या दिया या लिया गया, या किसी म्यूज़िकल परफॉर्मेंस के बारे में जानने की इच्छा, या बस किसी को एक दिन घर बुलाने की, या बच्चे के कहने पर कोई खास चीज़ बनाने की—यह लिस्ट कभी खत्म नहीं होती। रिश्ते तब पनपते हैं जब उम्मीदों और इच्छाओं को समझा और उनका सम्मान किया जाता है। हालाँकि, कुछ परिवार ऐसे भी होते हैं जो बस मिलने आने की उम्मीद करते हैं। ऐसा क्यों है? वे ज़िंदगी की रफ़्तार, जिम्मेदारियों और पैसे की कमी या ज़्यादाती को समझते हैं। फिर भी, यह भी देखा जाता है कि बहुत से लोगों के पास सब कुछ होता है और उन्हें बहुत कुछ मिलता है, लेकिन वे प्यार महसूस नहीं कर पाते। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्यार ऐसी चीज़ है जो माँगने से नहीं मिलती; जितना ज़्यादा कोई इसकी माँग करता है, यह उतना ही दूर होता जाता है। तो, खुशी का भंडार कैसे बनाया जाए? आपको शायद यकीन न हो, लेकिन अपने काम में पूरी तरह डूब जाने से बहुत खुशी मिल सकती है। जब कोई

इंसान खुशी की तलाश में थक जाता है, तो फ़िलॉसफ़ी कुछ राहत देती है। आखिर, फ़िलॉसफ़ी का मतलब सिर्फ़ सब कुछ छोड़ देना नहीं है। फिर ज़िंदगी के कुछ ऐसे सार्वभौमिक सच भी हैं—जो अनुभव से पैदा होते हैं—और जो कई लोगों को सही लगते हैं। जब तक ऐसे लोग हमारी ज़िंदगी में नहीं आते, या जब तक हम किसी सच को बिना असल में अनुभव किए सिर्फ़ दिमाग से समझते हैं, तब तक ये बातें भारी या मुश्किल लग सकती हैं। फिर भी, एक बार समझ लेने पर, ये हमारी खुशी के अंदरूनी भंडार का आधार बन जाते हैं। कभी-कभी, इस प्रक्रिया में इंसान खुद को नज़रअंदाज़ कर देता है या भूल भी जाता है। मुझे याद है कि मैं किसी खास सोच या खोज में इतना खो गया था कि मुझे अपनी सुध-बुध ही नहीं रही, फिर भी मैं खुश था क्योंकि मैं कुछ ऐसा खोज रहा था जो हमेशा रहने वाला हो। लगातार बदलते हालात अक्सर असुरक्षा की भावना पैदा करते हैं। तो, सुरक्षा कहाँ से आती है? कुछ खास बुनियादी मूल्यों से—ऐसे मूल्य जिन्हें हमें खुद खोजना होता है। छोटे बच्चे शायद यह सब न समझ पाएँ; इसलिए, हम बस इतना कर सकते हैं कि अपनी क्षमता के अनुसार उन्हें खुश रखें, अपनी खुशी के लिए उनका इस्तेमाल न करें और उन्हें अच्छे संस्कार दें। फिर भी, इस सीमित तरीके के बावजूद, वे अक्सर बड़े होकर ज़िम्मेदार और खुश इंसान बनते हैं। क्या इसका मतलब यह है कि ज़िंदगी में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए? बिल्कुल नहीं; चुनौतियाँ तो आती ही हैं। हालाँकि, हमें यह पक्का करना चाहिए कि हम खुद गैर-ज़रूरी रुकावटें न खड़ी करें और जो कुछ भी हो, वह हमें सबसे अच्छे नतीजे की ओर ले जाए। अगर हम ऐसी सोच अपना लें, तो हम खुश रहेंगे—और दूसरों को भी खुश रखेंगे—चाहे बाहरी हालात कैसे भी हों। आइए, एक पल निकालकर अपनी खुशी के भंडारों पर गौर करें।

दिनांक :- //

हमारी पसंद

कुछ लोगों का जीवन, बल्कि बहुत से लोगों का जीवन, लगातार दूसरों की इच्छाओं के अनुसार चलने में ही बीतता है। आपको कुछ समझ नहीं आता, आप किसी काम में सफल नहीं होते, आप किसी चीज़ में अच्छे नहीं होते, घर में किसी काम में अच्छे नहीं होते, दफ्तर में किसी छोटी सी बात में भी सफलता नहीं मिलती, बार-बार बताना पड़ता है, आपके पास काम के दिनों के बराबर ही छुट्टियाँ होती हैं। कुछ लोग तो कई दिनों तक दफ्तर में ऐसी बातें छुप-छुपकर सुनते हुए भी ईमानदारी से काम करते हैं। जो लोग इस बात से वाकिफ होते हैं, वे इसे छिपाते हैं। तो क्या ऐसे लोगों के सामाजिक

संगठन और काम को पीछे छोड़ा जा सकता है? हमारी इच्छा क्या है? बुद्धि हर दिशा में नहीं फैलती, लेकिन बॉस तो बॉस होता है, यह बात दिमाग में नहीं आती। हम चाहे जितना भी बोलें, दूसरे को पता नहीं चलता। याद रखिए, जब भी हम निष्पक्ष होकर नहीं बोलते, हमारी शक्ति/ऊर्जा हर बार कम होती जाती है। क्या आप कलम में ईंधन नहीं भरते? दूसरों पर एहसान जताने के बजाय, हमें कम ऊर्जा खर्च करके, आसान, सस्ता और किफायती तरीके से, और दूसरों को परेशान किए बिना, अपनी ऊर्जा को फिर से भरने का तरीका खोजना चाहिए। सामाजिक संगठनों में काम करने वालों को यह बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिए कि अशांति से हमारा काम रुक जाता है। जो लोग लगन से अपना काम कर रहे हैं, उन्हें नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। जो लोग ज़रूरत से ज़्यादा और समय से पहले लाभ पा रहे हैं, वही हमारा पक्षपात है, है ना? जब हमें कोई पद मिलता है, तो हम बहुत खुश होते हैं, लेकिन ज़िम्मेदारी का एहसास कम ही होता है। कुछ लोग तो बिल्कुल भी खुश नहीं होते, वे बहुत ज़िम्मेदार महसूस करते हैं। सामाजिक संगठन चलाते समय हमारा पक्षपात न करें। पद के नाम पर कभी किसी को ठेस न पहुँचाएँ। क्योंकि वे सालों तक संस्थानों और उनके नेताओं के नाम सुनकर और फिर काम की उम्मीद में काम पर आते हैं। वे ऐसे लोगों से नाराज़ होना भी स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन इससे उनके काम पर असर पड़ता है। क्योंकि हर कोई ऊर्जा संरक्षण के नियम को जीवन में लागू करना नहीं जानता। ऐसे कुछ लोग बहुत आहत होते हैं, इसलिए उनका काम लगातार घटिया होता है। कुछ लोग तो काम ही छोड़ देते हैं। प्राप्त ज्ञान, उसका प्रयोग, उसके माध्यम से किया गया सामाजिक कार्य, उसमें निहित टीम भावना, ये सब प्रेम के गुलकंद को खाने जितना कठिन है। हमारी इच्छा के बारे में आपका क्या विचार है?

दिनांक :- // 2000

मास्काचस्काया की कहानी

अगर कम उम्र में बच्चों पर बहुत ज़्यादा दबाव डाला जाए, तो उनमें दो बुरी आदतें पड़ जाती हैं: हालात के हिसाब से झूठ बोलना और फ़ायदा उठाने के लिए चापलूसी करना। हम बाद में इस बात की चिंता कर सकते हैं कि वे सम्मान दिखाना, निर्देशों का पालन करना या वादे निभाना जैसी ज़रूरी बातें सीखेंगे या नहीं। हालाँकि, बाद में पता चलता है कि झूठ बोलने और चापलूसी करने की आदतें ज़िंदगी में कितनी नुकसानदेह साबित होती हैं। ये आदतें बहुत गहरी हो जाती हैं; इन्हें छोड़ना मुश्किल होता है। जिस व्यक्ति में ये आदतें नहीं होतीं, वह आसानी से पहचान सकता है कि दूसरे कब, क्यों

और कितनी बार झूठ बोल रहे हैं। हमें लग सकता है कि इंसान होने के नाते हम इन बातों को नज़रअंदाज़ कर सकते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। धीरे-धीरे, ऐसा व्यवहार हमें परेशान करने लगता है। जो व्यक्ति सच में सम्मान का मतलब समझता है, वह आसानी से इसे सिर्फ़ चापलूसी से अलग पहचान सकता है। अगर हम अपने प्रोफ़ेशनल जीवन में तरक्की करना चाहते हैं, तो हमें कभी भी ये दो आदतें नहीं अपनानी चाहिए; अगर हम पहले से ही ऐसा करते हैं, तो हमें इन्हें छोड़ देना चाहिए। हालाँकि कुछ जगहों पर इन आदतों को बर्दाश्त किया जा सकता है, लेकिन आखिरकार इनसे परेशानी ही होती है। कई सीनियर अधिकारी झूठी तारीफ़ करने की आदत डाल लेते हैं, जिससे अक्सर असलियत छिप जाती है। सच तो यह है कि लोग आपस में इन बातों पर चर्चा करते हैं और कई अधिकारियों को हालात का पता होता है, फिर भी झूठी तारीफ़ की आदत बनी रहती है। हो सकता है कि वे ऑफ़िस के गिरते स्टैंडर्ड को देखें और असंतुष्ट महसूस करें, लेकिन झूठ बोलने, आत्म-संतुष्टि और दिखावटी तारीफ़ का कल्चर अक्सर लोगों को सालों तक उनकी भूमिकाओं में बनाए रखता है। अपने वर्कप्लेस को देखें और वहाँ अपनी आदतों की जाँच करें। देखें कि आप कितनी बार बिना बुलाए अपने सीनियर के पास जाते हैं। आपको एहसास होगा कि जिसे 'सोशल ऑर्गनाइज़ेशन' कहा जाता है, वह असल में एक परिवार ही है—और परिवार की भावना होना अच्छी बात है, बशर्ते वह सच्ची हो। कम से कम, एक सोशल ऑर्गनाइज़ेशन के दायरे में, कोई अपनी ज़िम्मेदारियों को संभाल सकता है और ज़रूरी सीमाओं का पालन कर सकता है। हालाँकि, 'परिवार' की अवधारणा में कहीं ज़्यादा बड़ी ज़िम्मेदारी शामिल होती है। क्या हम सच में ऐसी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हैं? परिवार में, अगर एक व्यक्ति को तकलीफ़ होती है, तो दिल बेचैन हो जाता है; अगर कुछ गलत होता है, तो मन को शांति नहीं मिलती... इसका मतलब है कि हम न तो कोई सोशल ऑर्गनाइज़ेशन ठीक से चला रहे हैं और न ही कोई परिवार। तो फिर, हम किसके प्रति जवाबदेह हैं? साफ़ और सीधी बात है: किसी के प्रति नहीं। लोग अक्सर ज़िंदगी में आने वाले दुखों की वजह पूछते हैं, लेकिन शायद ही कभी खुद से यह पूछते हैं कि क्या उनसे कोई गलती हुई है। किसी और के सामने अपनी गलती मानना अहंकार को गहरी चोट पहुँचा सकता है, जबकि खुद के सामने गलती मानने से मन को शांति मिलती है। हो सकता है कि दूसरे आपको कभी माफ़ न करें, लेकिन आप खुद के बारे में क्या सोचते हैं? आख़िरकार, फ़ैसला आपका है: क्या आप चापलूसी, बेकार की चीज़ों का जुनून और दिखावे जैसी आदतों को अपनाएँगे या उन्हें छोड़ देंगे?

दिनांक :- 1//

पहल करना

जब यह सवाल उठता है कि इतने सारे बुद्धिजीवियों के होने के बावजूद समाज पीछे क्यों रह जाता है, तो 'पहल करने' की बात सामने आती है। जब भी समाज में कोई नेक काम शुरू होता है, तो अच्छे लोग आगे आते हैं; वे मामले की गंभीरता को समझते हैं। हालाँकि, अपनी पहल के नतीजों का अनुभव करने के बाद, ये ईमानदार और सीधे-सादे लोग अक्सर डर जाते हैं। उन्हें एहसास होता है कि—सम्मान या इज़्ज़त मिलने के बजाय—जिन पहलों को वे आगे बढ़ाते हैं, वे अक्सर ठीक से चल नहीं पातीं। नतीजतन, वे सामाजिक संगठनों से खुद को दूर कर लेते हैं। फिर भी, यह उनकी एक बड़ी गलती है। उन लोगों के साथ मिलकर काम करना बहुत ज़रूरी है जो सच में आपसे प्यार और सम्मान करते हैं, और पर्दे के पीछे से प्रेरक शक्ति के रूप में काम करते हैं। अगर हम ऐसा नहीं करते हैं, तो नुकसानदेह प्रवृत्तियों को रोकने के लिए कौन बचेगा? पहल करने का मतलब सिर्फ़ खुद को सबसे आगे लाना नहीं है। समाज में कुछ लोग अपनी ही दुनिया में रहते हैं, अक्सर कई मुद्दों से अनजान होते हैं, फिर भी वे सही समय पर सही राय देते हैं। ऐसे लोगों को सही समय पर प्रोत्साहित करना और उन्हें शामिल करना, अपने आप में एक तरह की पहल है। अक्सर, स्थिति को समझने के बावजूद, हम चुप रहना पसंद करते हैं; यह एक गलती है। पहल उन लोगों को करनी चाहिए जो स्थिति को समझते हैं, जबकि दूसरों को अपना समर्थन देना चाहिए। बहुत से लोग बस उत्सुकता के कारण चुप रहते हैं—"देखते हैं आगे क्या होता है" वाली सोच—जो सच्ची समझ की कमी की निशानी है। यह एक गलतफहमी है कि समाज में घूमने-फिरने से ही समझ बढ़ती है; सच्ची समझ जानकार लोगों की संगति से बढ़ती है। कोई यह नहीं मान सकता कि हर मामले में हर किसी के पास एक जैसी जागरूकता या ज्ञान होता है; नज़रिए हर व्यक्ति और हर विषय के हिसाब से अलग-अलग होते हैं। इसलिए, अपनी समझ को व्यक्त करना बहुत ज़रूरी है। वह नज़रिया माना जाता है या नहीं, यह बाद की बात है; मुख्य बात है विचार को व्यक्त करना और फिर उस समझ के आधार पर पहल करना। आज, अपने देश में इतनी सारी राजनीतिक पार्टियों को देखकर मुझे बहुत निराशा होती है। क्या यह किसी भी मुद्दे पर आम सहमति तक पहुँचे बिना समय बर्बाद करने का एक तरीका है? जब साथ समय बिताने के लिए इतनी शानदार सामाजिक परंपराएँ हैं, तो क्या इतनी सारी राजनीतिक पार्टियाँ सच में हमारे नेक और समझदार समाज के लिए सही हैं? भले ही मेरी राजनीतिक समझ सीमित हो, लेकिन

मेरा पक्का मानना है कि समाज को सिर्फ़ दो पार्टियों को ही स्वीकार करना चाहिए: सत्ताधारी पार्टी और विपक्ष—या इससे भी बेहतर, एक ऐसी पार्टी जो रचनात्मक आलोचक की भूमिका निभाए। एक ऐसी पार्टी जिसके विचारों को ध्यान से सुना जाए, और जिसके सुझावों पर अपनी ही पार्टी के भीतर चर्चा और समझ-बूझ हो... तो इसमें क्या बुराई है? क्या मौजूदा हालात सच में इतने अच्छे हैं? इस पहल के ज़रिए मैं सिर्फ़ कोई लेख नहीं लिख रहा हूँ; मैं भारतीय राजनीति में दो-पार्टी सिस्टम की वकालत कर रहा हूँ। इस देश के एक नागरिक के तौर पर मैं यह कदम उठा रहा हूँ। मेरे लिए, यह मेरे देश के पक्ष में एक अहम वोट की तरह है।

दिनांक :- 11// 2000

काम में सटीकता और जिम्मेदारी

काम में प्रोफेशनलिज़्म और संवेदनशीलता—यानी इंसानियत—के बीच संतुलन कैसे बनाया जाए? अलग-अलग जगहों पर काम करने के बाद मेरे मन में यह सवाल आया। टीचिंग के पेशे में—बच्चों की शुरुआती शिक्षा से लेकर प्रोफेशनल ट्रेनिंग तक—अगर कोई तय क्लास नहीं ले पाता, तो उसकी जगह दूसरा टीचर क्लास लेता है; कई जगहों पर कोई न कोई ज़िम्मेदारी संभालने के लिए आगे आ जाता है। ऐसे अनुभव एक ज़िम्मेदार व्यक्तित्व बनाने में मदद करते हैं। हालाँकि, कुछ लोग खुद को और अपनी ज़िम्मेदारियों को संभालने के तरीके में बहुत घमंडी लगते हैं; सहकर्मी अक्सर उनसे डरते हैं। दूसरे लोग भले ही सबसे अलग-थलग न हों, फिर भी वे बहुत अकेलापन महसूस करते हैं क्योंकि कोई भी सच में उन तक नहीं पहुँच पाता। उन्हें काबिल अफ़सर, टीचर या माँ के तौर पर तो पहचाना जाता है, लेकिन बहुत कम लोग ही उन्हें सच में समझ पाते हैं। जो लोग काम में बहुत अच्छे होते हैं, उन्हें अक्सर अपने नीचे काम करने वाले लोगों को संभालने में मुश्किल होती है; उन्हें दूसरों को स्वीकार करना मुश्किल लगता है और वे सिर्फ़ बिना गलती के काम पूरा करने को अहमियत देते हैं। हालाँकि वे काम के प्रति अपनी लगन के लिए जाने जाते हैं, लेकिन अक्सर वे अपने कार्यकाल के दौरान अपने आस-पास के लोगों की भावनाओं को नहीं समझ पाते। उन्हें लगता है कि उनका खास काम ही सबसे ज़रूरी है। यह सोचने वाली अहम बात है। जब लोग मिलकर काम करते हैं, तो सामूहिक प्रयास, साझा ज़िम्मेदारी और आपसी जवाबदेही उतनी ही ज़रूरी होती है जितना कि खुद काम। लीडरशिप रोल के बारे में एक आम सोच बन गई है कि लोग बस उतना ही काम करते हैं जितना नौकरी की खास ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ज़रूरी हो—क्योंकि उन्हें लगता है कि इन

पदों का असली मतलब खत्म हो गया है। नतीजतन, कई लोग ऐसे रोल से पूरी तरह बचना पसंद करते हैं। दूसरों पर अधिकार जताना एक बुनियादी प्रवृत्ति है, जबकि मिलकर काम करना एक ज़्यादा आधुनिक विकास है। जब इस प्रक्रिया में कुछ लोग पीछे रह जाते हैं, तो अक्सर इसके कई कारण होते हैं। अक्सर, वे ग्रुप के काम की प्रकृति को पूरी तरह नहीं समझ पाते, या उनमें इसे संभालने का आत्मविश्वास नहीं होता; अक्सर, काम करते समय उन्हें यह साफ़ नहीं होता कि काम का कौन सा हिस्सा किसके साथ मिलकर करना है। भले ही उन्हें यह समझ आ जाए, तो भी दूसरों को लग सकता है, "यह काम तो *हमें* नहीं करना चाहिए।" दूसरों के साथ मिलकर काम करने में ऐसी कई बारीकियाँ होती हैं। जब लोग ज़िम्मेदारी की सच्ची समझ के साथ काम करते हैं, तो लीडरशिप के पद का महत्व कम नहीं होता; बल्कि और बढ़ जाता है। जब तक रोल सिर्फ़ अधिकार जताने के बारे में न हो, लीडरशिप के पद में हमेशा ज़िम्मेदारी शामिल होती है। चाहे पुरानी पीढ़ी हो या बॉस, बात अक्सर इसी पर आकर रुकती है: सबकी बात धैर्य से सुनें, फिर वही करें जो आपको सही लगे। अक्सर लोग यह नहीं समझ पाते कि ज़िम्मेदारियाँ निभाते और काम करते हुए मन कितना मज़बूत हो जाता है। कई बार ऐसा होता है कि किसी दावे की सच्चाई पर सवाल उठाते हुए हम खुद उसी चीज़ का हिस्सा बन जाते हैं जिसमें कोई दम नहीं होता। अक्सर, किसी के लिए बहुत ज़रूरी बातें छिपी रह जाती हैं—कभी सामने नहीं आतीं—और उनके पीछे की वजहों पर भी कोई ध्यान नहीं देता। फिर भी, लीडरशिप की भूमिका का मतलब सिर्फ़ एक पद या नाम नहीं है; यह उस भूमिका के असली मकसद को समझने के बारे में है। बार-बार समझाने के बावजूद कई लोग इसे समझ नहीं पाते। लीडरशिप की भूमिका के लिए ज़िद करने और असल में उस भूमिका को निभाने के बीच बहुत बड़ा फ़र्क है—एक ऐसा फ़र्क जिसे सच में समझने में समय लगता है। सामाजिक सोच से प्रेरित होकर, बहुत छोटे बच्चे भी बड़े-बड़े काम शुरू कर देते हैं; इसमें कुछ भी गलत नहीं है। काम में सटीकता और जवाबदेही बनाए रखते हुए, और साथ ही संवेदनशीलता को भी बचाए रखकर आगे बढ़ना—यह अपने आप में एक सफ़र है।

तारीख: 12/2020

प्रेषक: आकाश

समाज में हम कई तरह के आयोजन देखते हैं—शादियाँ, नामकरण संस्कार या विदाई समारोह। ये आयोजन आमतौर पर इंसान की आर्थिक स्थिति के हिसाब से किए जाते हैं। ऐसे आयोजनों में हर तरह के लोग आते हैं—उत्साही लोग और बस यूँ ही चले आए

लोग—जिनमें महिलाएँ और बच्चे भी शामिल होते हैं। आयोजन कैसा रहा, इस पर चर्चा अक्सर लंबे समय तक चलती रहती है। जो लोग ऐसे आयोजनों में शामिल होते रहते हैं, उनके लिए यह अनुभव बिल्कुल आम बात होती है। लेकिन जो लोग पहली बार ऐसा समारोह देखते हैं, उन्हें यह सच में बहुत दिलचस्प लगता है। बात सिर्फ़ देखने तक ही सीमित नहीं रहती; इंसान खुद भी ऐसा ही आयोजन करने की योजना बनाने लगता है। आखिरकार, हो सकता है कि वह ऐसा कार्यक्रम आयोजित भी कर ले, लेकिन समस्या तब आती है जब उसकी तुलना पहले देखे गए आयोजन से की जाती है। इससे अक्सर असंतोष होता है। जब हम ईमानदारी से पैसे कमाते हैं, तो उन पैसों से किया गया कोई भी आयोजन हमें बहुत संतुष्टि देने वाला होना चाहिए। अगर वह संतुष्टि नहीं मिलती, तो हम अपनी कोशिशों के पीछे के असली मकसद या वजह को नहीं समझ पाते। लोग आयोजन तो करते हैं, लेकिन अक्सर निराश हो जाते हैं क्योंकि उनका आयोजन वैसा नहीं हो पाता जैसा उन्होंने पहले देखा था। ऐसा नहीं होना चाहिए। अगर हम अपनी मेहनत की कमाई से किए गए आयोजन से खुशी नहीं पा सकते, तो उस कमाई का क्या फ़ायदा? यह किसी गाने की परफॉर्मेंस जैसा नहीं है जहाँ कोई "एनकोर" (दोबारा गाने) की मांग कर सके, या ऐसी ड्राइंग जैसा नहीं जिसे मनचाहा न बनने पर दोबारा बनाया जा सके। इसने मुझे कुछ भावनाओं के स्वभाव के बारे में सोचने पर मजबूर किया—हालांकि यह हर किसी पर लागू नहीं होता; यह ऐसी चीज़ है जिसे हर व्यक्ति को खुद खोजना होता है। समर्थ रामदास स्वामी पूछते हैं, "इस दुनिया में सच में खुश कौन है?" यह सवाल पूछते हुए भी हम लगातार खुशी के नए स्रोत ढूंढते रहते हैं, फिर भी इंसान अक्सर आखिर में फिर से दुखी हो जाता है। क्यों? क्योंकि मन लगातार भागता रहता है—और हमेशा बाहरी दुनिया की ओर। यह परिभाषा कि "खुशी किसी खास चीज़ को पाने से मिलती है" सही है, लेकिन हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि हम उस इच्छा को कैसे बढ़ाते जाते हैं। जिस दिन किसी को यह एहसास होता है कि ईमानदारी से काम करने से मिलने वाली खुशी किसी भी दूसरी खुशी से कहीं ज़्यादा है, सब कुछ बदल जाता है। किसी को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि मेहनत से कुछ कमाने की संतुष्टि बिना मेहनत के उसे पाने की संतुष्टि से कहीं ज़्यादा होती है—सिवाय उस ज्ञान के जो किसी शिक्षक या *गुरु* से मिलता है। अगर कोई उस ज्ञान को पा नहीं पाता, सीखने की तो बात ही छोड़िए, तो इससे निराशा होती है; फिर भी, मेहनत से कमाई गई दौलत गहरी खुशी और सुकून देती है। अगर किसी की अपनी कमाई कम है और वह दूसरों से उसकी तुलना करता

है, तो मन कभी-कभी गलत रास्तों पर भटकने के लिए ललचा सकता है। यह एक ऐसा सबक है जो हमें सीखना चाहिए: ईमानदारी की मेहनत से मिली सादी जीवनशैली स्वीकार्य है, लेकिन गलत तरीके से मिली जीवनशैली नहीं, क्योंकि यह हमारी सुकून भरी नींद छीन लेती है। इसके अलावा, जब हम मेहनत से कुछ हासिल भी कर लेते हैं, तब भी हम अक्सर इस बात में उलझे रहते हैं कि दूसरे क्या कर रहे हैं। यह ज्ञान पर भी लागू होता है। हम दूसरों से उधार तो लेते हैं लेकिन उसे मानते नहीं हैं। अक्सर, इसका नतीजा यह होता है कि लोगों की शिक्षा और काम रुक जाते हैं क्योंकि ऐसा लगता है जैसे उन्होंने खुद कुछ किया ही नहीं है। नतीजतन, आगे निकलने की जल्दबाजी में, कुछ लोग इतने डरे हुए होते हैं कि वे असली स्रोत का ज़िक्र तक नहीं करते। विडंबना यह है कि हम खुद...

बाद में ही पता चलता है कि इंसान असल में उस पड़ाव से कभी आगे बढ़ ही नहीं पाया। है न यह दिलचस्प बात? फिर भी, अगर शादी, नामकरण या रिटायरमेंट जैसे मौकों को पूरे दिल से मनाया गया हो, तो उनसे मिली खुशी को ज़रूर संजोकर रखना चाहिए। ज़िंदगी को हमेशा तुलना करते हुए नहीं जीना चाहिए। जश्न शानदार और प्रभावशाली होने चाहिए।

दिनांक :- 3//

संगीत

मुझे ऐसा लगने लगा था कि कोई भी ज्ञान दुख की अनुभूति में ही उत्पन्न होता है या हम उसका उपयोग करते हैं। अब संगीत के बारे में मेरी राय यह है कि यह सुख और दुख के बीच एक अटल तत्व है। सुख और दुख दोनों में ही इसकी चाह होती है। फर्क सिर्फ इतना है कि यह हर समय नहीं होता। अगर हम दुख से गुजर रहे हों, तो कभी-कभी संगीत प्रेमी को भी उस समय संगीत अच्छा नहीं लगता। यहाँ तक कि गायन प्रेमी भी कह देता है कि वह फिर कभी नहीं गाएगा। लेकिन अगर मैं उसी व्यक्ति को खुशी के क्षण में गाने के लिए प्रेरित करूँ, तो वह उत्साहित हो जाता है, आनंद से सुनता है। मुझे एक ऐसा हथियार मिल गया है जो सुख और दुख दोनों में हमेशा काम आता है। वह है मनचाहा कर्म। (दूसरों को परेशान करने के अलावा) कोई कह सकता है कि मेरे गाने से किसे परेशानी होती है, आदि। लेकिन मुझे लगता है कि यह दूसरे व्यक्ति की समस्या है। जानबूझकर दूसरों को परेशान करना आदि कर्म के अंतर्गत नहीं आता। संगीत भी ऐसा ही है। हमारी शिक्षिका बालाजी वाले मैडम ने कक्षा में लिखा था, “संगीत ईश्वर की शक्ति है, हर स्वर राम है, गाया जाने वाला राग रोगी को आराम देता है” और

यह सच है। क्योंकि एक समय था जब मैं सचमुच बीमार था। लेकिन मैंने संगीत सुना, मुझे बहुत अच्छा लगा, जीने की उम्मीद खिलते फूल की तरह जाग उठी। यही बात दर्शनशास्त्र और लेखन की किताबों से मुझे जीवन देती थी। तो फिर बीमारी जल्दी ठीक क्यों नहीं हो जाती? इसलिए, आत्मज्ञान... मैं किन कारणों से अपनी रुचियों से दूर जाता हूँ/जाता हूँ? मुझे जो लोग पसंद हैं, जो विषय पसंद हैं... यही आत्मज्ञान है। स्वयं के बारे में ज्ञान मुफ्त में नहीं मिलता। हमें मेहनत करनी पड़ती है। तब जाकर हम थोड़ा-बहुत समझ पाते हैं। जैसे संगीत। यह विषय बहुत बड़ा है और मेरा ज्ञान बहुत कम है। लेकिन मैंने अपने अनुभव को दर्ज किया। हर बार संगीत गाने वाले को वह पसंद नहीं आता। लेकिन वह समय हमारे दुख के क्षणों का समय होता है, यह सच है। वैसे, यह झूठ नहीं है कि संगीत में जादू होता है। कितने ही बेहतरीन गीत रचे गए हैं, कितने ही शानदार तरीके से गाए गए हैं, यह सचमुच अद्भुत है। कलाकारों और शिक्षकों में कितना समर्पण है! लेकिन इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि ऐसे संगीत को सुनने के बाद मन में ऐसा भाव नहीं रहता। है ना कमाल की बात? यह सोचने पर मजबूर कर देता है। आखिर प्रेम घृणा में क्यों बदल जाता है? इसके पीछे कारण हैं... उन्हें तभी समझा जा सकता है जब उनकी खोज की जाए...

दिनांक :- 14// 2020

वेलेंटाइन्स डे

1) पारिजातका फूल

बचपन में मैंने पारिजातका परिवार के छोटे-छोटे, सुंदर फूल गिरते देखे थे। ऐसे कोमल और मनमोहक फूलों को देखकर मेरा मन मोह लेता था। वे जितने सुंदर, जितने कोमल, उतने ही सुगंधित होते थे। वे गिरते पत्तों की तरह बड़े होते गए, और मुझे एहसास होने लगा कि हर कोई कितना छोटा है। स्वतंत्र रूप से काम करते हुए, स्कूलों/कॉलेजों में पढ़ाने के बजाय, मैंने इंजीनियरिंग कॉलेजों में पढ़ाना शुरू किया। दूर-दूर से आने वाले बच्चों और लड़कियों को मैं अपने बच्चों की तरह मानती थी। मेरी शादी नहीं हुई थी। मैं उन्हें अपनी पूरी क्षमता से वह सब कुछ बताती थी जो मैं जानती और समझती थी। लेकिन मुझे चिंता रहती थी। उन्हें नौकरी कहाँ मिलेगी, वे यहाँ से कहाँ जाएँगे? क्या उनका वैवाहिक जीवन सफल होगा? क्या बच्चे जन्म के बाद स्वस्थ रहेंगे? मैं सब कुछ एक तरफ रख देती और फिर से अपना रोज़मर्रा का काम करने लगती। तब तक मैंने एक दिन भी किसी छोटे बच्चे की देखभाल नहीं की थी। जिस दिन मेरी गोद में दो छोटे बच्चे आए, मुझे एहसास हुआ कि उनकी देखभाल करना

कितना मुश्किल है। थोड़ा-बहुत ज्ञान तो बेकार है। मुझे यकीन था कि मैं यह काम ठीक से नहीं कर पाऊँगी, ताकि मैं अकेली बच्चों की देखभाल न करूँ। मैं समझती हूँ कि बच्चा कभी अकेला नहीं होता। यह एक ज़िम्मेदारी हो सकती है। लेकिन इससे हर किसी को संघर्ष करना पड़ता है। मैंने उनके लिए अपनी तरफ से हर संभव कोशिश की। लेकिन फिर भी मुझे नहीं लगता कि मैं बच्चों को समझ सकती हूँ। क्योंकि मैंने कोई प्रयास ही नहीं किया। क्योंकि मैं लगातार सोचती रहती हूँ, मैं खुद को सही से कहाँ समझूँ? एक काम करने के बाद मुझे समझ आता है कि मुझे यह नहीं करना चाहिए था। बच्चे इतने छोटे होते हैं। क्या हम उनकी देखभाल करते हैं? हम उन्हें निर्देश देते रहते हैं...लगातार, यह सही है, यह गलत है...तो फिर वे कब जिएँगे? मैं यह नहीं कह सकती कि मुझे शिक्षण संस्थान क्यों पसंद हैं...लेकिन बच्चे बहुत मासूम होते हैं, हम उन्हें लगातार सिखाते रहते हैं। हमें सिखाना चाहिए, लेकिन केवल सत्य का ज्ञान...हम उन्हें क्या बताएँगे जो हम खुद नहीं जानते? यदि संभव हो, तो हमें विशेष रूप से पारिजातका परिवार के बच्चों को सहेज कर रखना चाहिए...मेरे लिए और सभी शिक्षण संस्थानों में सभी के लिए...वे एक समृद्ध जीवन जिएँ। शायद यह एक भ्रम है कि कोई केवल इधर-उधर भाग-दौड़ करके ही समृद्ध जीवन जी सकता है। मुझे लगता है कि आत्मज्ञान और अनुशासन ही समृद्ध जीवन की ओर ले जाते हैं, क्या हमें अध्ययन करना चाहिए?

2) धनु राशि का जीवन

उस समय की कल्पना कीजिए: एक घर जिसमें माँ, पिता, चाचा-चाची, दादा-दादी और भाई-बहन हैं। ऐसे भाई-बहन जो छोटी बहन का ख्याल रखते हैं—जब वह चीज़ें नहीं समझती तो उसे चिढ़ाते हैं, फिर भी हमेशा उसकी परवाह करते हैं। पिता और दादा की सुरक्षा भरी नज़र के साये में, वह क्या करती है? वह अपनी हथेलियों पर *मेहंदी* रचाती है; अपने नन्हे हाथों में पेन, पेंट या ब्रश लेकर चित्र बनाती है; पैरों में *घुंघरू* बांधकर ताल पर नाचती है; यहाँ तक कि बड़ों की महफ़िल में भी चली जाती है, सब कुछ समझने का दिखावा करती है और एंकर की तरह पेश आती है... लेकिन फिर, एक दिन, कोई उसकी ज़िंदगी में आता है, और बाकी सब कुछ पीछे छूट जाता है क्योंकि "फुल्ले रे क्षण माझे" (मेरे पल खिल उठे हैं) गाना जीवंत हो उठता है। क्या उनके गायन को "बेहतरीन" कहने से कुछ बदलेगा? नहीं। लोग समय की महिमा या *कलियुग* (संघर्ष का वर्तमान युग) की बात करते हैं। फिर भी, ये कालजयी गीत मुझे अपनी ओर बुलाते हैं। "फुल्ले रे क्षण माझे" एक ऐसा गीत है जो बताता है कि कैसे

एक युवा लड़की की आंतरिक दुनिया आकार लेती है—और कैसे उसे आगे बढ़ते हुए इसे संजोकर रखना चाहिए। प्यार की परिभाषा हर किसी के लिए अलग होती है, लेकिन प्यार असल में कुछ *करने* के बारे में है। अपनी भावनाओं को संजोने का क्या मतलब है? एक छोटा बच्चा भी महसूस कर लेता है जब कुछ गलत होता है, भले ही वह उसे स्पष्ट रूप से बता न पाए। फिर भी, अपनी आंतरिक लय—जीवन की उस व्यक्तिगत चाल—को पहचानना और उसे संजोते हुए आगे बढ़ना: यही "फुल्ले रे क्षण माझे" का सार है। हर महिला और हर पुरुष अनोखा होता है। जीवन एक ही है, फिर भी इसके अलग-अलग चरण हैं: बचपन, जवानी, वयस्कता और बुढ़ापा। हालाँकि, उन्हें समझना एक अलग बात है—यह खुद के साथ एक संवाद है। हम दूसरों से बात करते हैं, कभी-कभी बहस भी करते हैं, लेकिन सच्ची वयस्कता तब आती है जब कोई जीवन को उसकी समग्रता में समझने लगता है। आसमान में इंद्रधनुष होता है। ऐसे समय भी आते हैं जब कोई समाज की दिशा को ठीक से समझ नहीं पाता, फिर भी उसे गहराई से महसूस करता है। क्या किया जाए? कुछ लोगों के लिए, इंद्रधनुष के सभी रंग बचपन में ही एक ही जीवन में उभरने लगते हैं—भले ही *मेहंदी* और परंपरा की धुनें उन्हें बुलाती रहती हैं। मैंने खास तौर पर 'वेलेंटाइन स्पेशल' लेख लिखने की योजना नहीं बनाई थी। हालाँकि, मैंने इस साल हर दिन एक लेख लिखने का संकल्प लिया था। तभी अचानक मेरे मन में यह विचार आया: क्या मैं वेलेंटाइन डे के लिए आसानी से चौदह लेख लिख सकती हूँ? और वे असल में किसके दिल को छूएँगे? युवा लड़कियों की भावनाओं की दुनिया को ज़रूर महत्व दिया जाना चाहिए। पारंपरिक संस्कृति पुरानी नहीं हुई है। हमने स्त्री-पुरुष के रिश्तों को कई नाम दिए हैं—जैसे काका-काकू, मामा-मामी, आत्या-मामी वगैरह—फिर भी बहुत कम लोग इन रिश्तों की असल भावना को जीते हैं। भाभी और देवर के रिश्ते को अक्सर सिर्फ़ मज़ाक-मस्ती का ज़रिया मान लिया जाता है; लेकिन, इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि यह रिश्ता कितना संवेदनशील और गहरा हो सकता है। जैसे-जैसे एक महिला बड़ी होती है, उसे इन अलग-अलग सफ़रों से खुद गुज़रना पड़ता है। वही जान पाती है कि सफ़र में कौन उसके साथ खड़ा है; बस इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है। अगर वह ज़िंदगी के सफ़र में इस बात को नहीं समझ पाती, तो यहीं से दुख और तकलीफ़ शुरू होती है। उसे यह समझना चाहिए कि अगर खुलकर बातचीत करने के बावजूद भावनाएँ आहत होती हैं, तो वह रास्ता सही नहीं है। उस सफ़र की खूबसूरती बनाए रखने के लिए, उसे कीमती यादों (जैसे मोर के पंख) और अनगिनत गीतों को अपने दिल में संजोकर

रखना चाहिए। ज़िंदगी कभी भी एकतरफ़ा नहीं होती। जो लोग अपने रोज़मर्रा के रिश्तों का सच्चे दिल से सम्मान करते हैं, उन्हें कभी पछतावा नहीं होता; इसके उलट, जब हम सिर्फ़ दिखावे के लिए रिश्ता निभाते हैं, तो पछतावा ज़रूर होता है। रिश्ता उसे सहेजने और बनाए रखने से बनता है। जहाँ इस देखभाल की जगह बेरुखी ले लेती है, वहाँ बहुत कम लोग ही रिश्ते को ज़िंदा रखने की कोशिश करते हैं; नतीजतन, रिश्ते अपना खुलापन और अपना आकर्षण खो देते हैं। ऐसा तब भी हो सकता है जब रिश्ता लेन-देन की उम्मीदों पर आधारित न हो। इसीलिए ज़िंदगी कभी एकतरफ़ा नहीं होती। नौकरी करने वाली महिला को रिश्तों के लिए समय निकालने में मुश्किल हो सकती है, जबकि नौकरी न करने वाली महिला कामकाजी ज़िंदगी की सच्चाई को शायद न समझ पाए। करियर और रिश्तों के बीच सही संतुलन बनाने वाली ज़िंदगी इंद्रधनुष की तरह होती है—खूबसूरत और जीवंत—लेकिन यह एक नाज़ुक संतुलन भी है, खासकर तब जब हर कोई रिश्तों को बराबर महत्व न दे। एक लड़की को अपनी सोच और बातचीत के तरीके को समझने की ज़रूरत होती है; इससे रिश्ता बेजान या सिर्फ़ दिखावा बनने से बचता है।

3) उस समय

बचपन में, बहुत से बच्चे स्कूल जाने का मकसद नहीं समझ पाते, इसलिए सही बर्ताव का सवाल ही नहीं उठता। मैंने कई बच्चों को ज़बरदस्ती जगाए जाते देखा है—अक्सर बिना पूरी नींद लिए—और वे डर के मारे स्कूल जाते हैं। उनके दिमाग में घर की उलझी हुई बातें या बाहर खेलने की यादें घूमती रहती हैं। इसी बीच, टीचर उन्हें बुनियादी चीज़ें सिखाने की कोशिश करते हैं—जैसे अक्षर या कर्सिव राइटिंग। लड़के और लड़कियाँ एक ही स्कूल में नहीं जाते? यह हैरानी की बात है; क्या आज के ज़माने में ऐसी बातें कहना ठीक है? इसी मनःस्थिति में... वे धीरे-धीरे चीज़ें समझने लगते हैं... फिर भी उनके मन में एक बहुत बड़ा, बिना नाम का डर बना रहता है। अगर स्कूल और घर का माहौल ऐसा हो जहाँ दायरे में रहते हुए भी खुलकर बात की जा सके, तो ठीक है; वरना, बच्चे का मन बिना किसी मकसद के भटकता रहता है। दूसरे लोग सोच सकते हैं कि मन को आकार देना किसी और का काम है, लेकिन असली विडंबना यही है: अपने मन को आकार देने का काम मुख्य रूप से खुद की ज़िम्मेदारी है। कम उम्र में किसी के प्रति लगाव क्यों हो जाता है, यह अक्सर तर्क से परे होता है; असल में, किसी को 'पसंद करने' का स्वभाव ही कोई तार्किक प्रक्रिया नहीं है। तो, क्या होता है जब 10वीं या 12वीं क्लास में या कॉलेज में किसी दोस्त के प्रति लगाव हो जाता

है? क्या यह सिर्फ़ एक दोस्ताना रिश्ता है, या कुछ और भी है? हो सकता है कि घर पर आपकी जानकारी के बिना शादी की बात चल रही हो, या रिश्ता तय हो चुका हो; या शायद परिवार की परंपराएँ हों—जहाँ दादी की बात ही कानून हो, या पापा सब कुछ तय करते हों, या बड़े भाई या बहन की बात आखिरी हो। अगर इन सबके बीच अपनी ज़िंदगी अपनी समझ से न चलाई जाए... तो, बहुत से लोग अपने कॉलेज के दिनों को याद करते हैं—किसी ऐसे व्यक्ति को जिसे वे पसंद करते थे, कोई पुराना रोमांस, या बस एक ऐसा दौर जो बहुत अहम था—शायद ज़िंदगी बदलने वाला भी। कुछ लोगों का दोस्तों का एक शानदार ग्रुप होता था, जबकि दूसरों के लिए जुड़ाव का एहसास सिर्फ़ एक भ्रम हो सकता था—फिर भी, उन्हें एक बंधन महसूस होता था, चाहे वह कितना भी कम समय का या अवास्तविक क्यों न हो। क्या हम कभी "उस समय" को स्वीकार करेंगे? कभी-कभी, कोई व्यक्ति अमीर, बहुत पढ़ा-लिखा या बहुत आकर्षक नहीं होता; लड़की भी ज़रूरी नहीं कि नाज़ुक, सुंदर या बहुत मिलनसार हो—फिर भी, उनके बीच एक खिंचाव होता है। ऐसा होता है। जब आप किसी को जान जाते हैं... हम देखते हैं कि वैलेंटाइन डे कितने जोश के साथ मनाया जाता है—इसे अक्सर एक "क्लब डे" की तरह माना जाता है। लेकिन क्या वह "क्लब" जीवन भर चलता है? यह एक सुंदर सोच है।

जब प्यारी यादों में स्टेटस और पैसे की बातें जुड़ जाती हैं, तो साधारण बैकग्राउंड वाले व्यक्ति को अपने ही सोशल सर्कल में अलग-थलग महसूस हो सकता है। वह पल—जब आप अचानक किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं जो किसी नए पार्टनर के साथ है, जबकि आप सोच रहे थे कि क्या *वही* वह व्यक्ति है जिसके साथ आप अपनी ज़िंदगी बिताना चाहते थे—तो ज़ाहिर है कि अजीब सा महसूस होता है... यह बेचैनी इस बात से पैदा होती है: "क्या मुझे अपनाया जाएगा?" आप कैसी दुनिया में रहते हैं? परिवार की मंज़ूरी के बिना अपनी मर्ज़ी से शादी करना, बिना शादी के साथ रहना, या—शादीशुदा होने के बावजूद—किसी दूसरी महिला के साथ रहना; या शायद एक ही समय में कई लोगों के साथ रोमांटिक रिश्ते रखना... जिन दोस्तों के साथ कभी आपको सच में जुड़ाव महसूस होता था—शायद किसी पसंदीदा प्रोफ़ेसर के लेक्चर के दौरान—वे बाद में पता चलता है कि किसी अलग दुनिया से हैं, जैसे कि कॉम्पिटिटिव एग्ज़ाम की तैयारी करने वालों का ग्रुप... या आपको एहसास होता है कि आपका होमटाउन बस पीछे छूट गया एक सपना है... आप किस समाज का हिस्सा हैं? या यूँ कहें कि समाज के किस हिस्से का? वह खास पल आपकी सोच की दुनिया को दिखाता है—आपकी अपनी

सांस्कृतिक पहचान की झलक... यह ज़रूरी नहीं कि हर कोई अपने बारे में यह बात सच में समझता हो... फिर भी हर व्यक्ति की ज़िंदगी में उस पल का बहुत बड़ा महत्व होता है। इसमें वे कहानियाँ शामिल होती हैं जो हम सुनते हैं... वे प्रभाव जो बच्चे के मन को आकार देते हैं... ज़िंदगी के अहम मोड़... वे ताकतें जो गहरे और सार्थक रिश्ते बनाती हैं—यही है "उस पल" का सार।

तो काळ, घरात आई, वडील, काका काकू, आजी, आजोबा, भावंडे आहेत. लहान बहिणीला जपणारे तिला समजत नाही म्हणून हसणारे पण तरी तिची काळजी घेणारे भावंडे आहेत. वडील, आजोबा यांच्या सुरक्षितेत काय करते? तर हातावर मेंदी काढते, तिच्या छोट्याश्या हातात पेन / रंग/कुंचला घेऊन चित्र काढणे, पायात घुंगरू बांधून ठेक्यात नाचते, तर मोठ्यांच्या सभेत शिरून मला पण समजते असा आव आणत सूत्रसंचलन करते....पण एक दिवस कोणी जीवनात आले की सगळं गळून पडून फुलले रे क्षण माझेचे गीत रंगते. हे गाणं, त्यांचे गायन मी अप्रतिम म्हणण्याने वेगळे काही होणार का? तर नाही. लोक काळाचा महिमा म्हणतात, कलियुग म्हणतात. पण ही अजरामर गाणी मला खुणावतात. लहान मुलीचे भावविश्व कसे घडते/घडावे आणि पुढे तिने कसे जपावे हे सांगणारे गाणे म्हणजे फुलले रे क्षण माझे. आयुष्यात प्रेमाची व्याख्या प्रत्येकाची वेगळी असेल. पण काहीतरी करणं म्हणजे प्रेम असतं. भावना जपणे म्हणजे तरी काय? लहानग्या बाळाला कोणी हसलं तरी त्याला कळतं, मला ठिक नाही वाटले. तो/ती ते जास्त स्पष्ट नाही करू शकत कारण नाही समजत. पण हा स्वतःचा हिंदोळा समजणं, तो जपत पुढे निघण़ हे आहे फुलले रे क्षण माझे. प्रत्येक स्त्री, प्रत्येक पुरुष वेगळा आहे. जीवन एक आहे. जीवनाचे भाग – बालपण, यौवन, प्रौढत्व, वार्धक्य. पण ते समजणे वेगळं आहे. आपुलाच संवाद आपुल्याशी. दुसऱ्याशी होतो संवाद, कधी वाद. पण आयुष्य समग्रपणे समजायला लागतं ते प्रौढत्व. आकाशात इंद्रधनुष्य असतं. अशी वेळ येते की समाज कुठल्या दिशेने चालला आहे समजत तर नाही पण जाणवते खूप. करायचे काय? बालपणातच इंद्रधनुष्याचे सर्व रंग एकाच जीवनात काहींच्या उमटायला लागलेले असतात. पण मेंदीचे सूरही खुणावत असतात. व्हॅलेंटाईन स्पेशल लिहावे असे काही ठरलेलेच नव्हते. पण या वर्षी रोज एक लेख लिहूया, असे ठरवले होते. आणि अचानक मनात आले व्हेलेंटाईन डे ला तब्बल १४ लेख, सहज सरळ लिहिता येतील? कोणासाठी खरे ठरतील? लहानशा मुलींचं भावविश्व जरुर जरुर जपा. पूर्वीची संस्कृती टाकाऊ नाही. स्त्रीच्या आणि पुरुषांच्या नात्यांना विविध नावे दिली. ती थोडी माणसे जगतात. काका काकू, मामा मामी, आत्या

मामी, वगैरे. वहिनी आणि दिराचं नातं नूसतंच थट्टेचे वगैरे. वहिनी आणि दिराचे नाते किती संवेदनशील असेल याचा विचार करावा. स्त्रीने पुढे ती मोठी होतांना हे सगळे प्रवास तिचे तिने करायचे आहे. या प्रवासात कोणा कोणाची साथ तिला मिळेल हे तिचे तिलाच समजेल. एवढंच आहे की ते तिने लक्षात ठेवायचे आहे. आपल्या जीवन प्रवासात तिने ते लक्षात ठेवले नाही तर तिथून भावना दुखावण्यास सुरूवात होते. संवाद ठेवूनही भावना दुखावल्या तर तो प्रवास योग्य नाही हे तिने समजावं. त्या प्रवासातल्या सुंदर साथीसाठी तिने आयुष्यभर तिच्या मनात जपावीत अशी मोरपिसे आणि असंख्य गाणी. जीवन एकेरी कधीच नसते. रोजच्या जीवनातील नाती इमानेइतबारे निभावलेल्या लोकांना कधीच अपराध भावना नसते. तर नात्यांचे ढोंग जेव्हा आपण करतो तेव्हा अपराध भावना निश्चित येते. नाते म्हणजे निभावणे असते. निभावण्यापेक्षा निर्ढावणे जिथे होते, तिथे थोडीच माणसे काम करतात. म्हणून नाती मोकळी राहत नाही, त्यांच्यात ओढ नसते. व्यवहार जमविलेले नसले की सुध्दा हे होते. म्हणून आयुष्य एकेरी नसते. नोकरीच करत असणारी स्त्री नात्यात वेळ देऊ शकत नाही, तर नोकरीच न करणाऱ्या स्त्रीला ते आयुष्य कसे असेल ते लक्षात येत नाही. नोकरी आणि नाती सांभाळू शकणारं आयुष्य हे इंद्रधनू आयुष्य आहे. तसेच ते तारेवरची कसरत आहे. जर नात्यांचे महत्वचं नसेल सर्वांना तर. मुलीला स्वतःच्या संकल्पना आणि व्यवहार समजले पाहिजे. मग नात्यात कोरडेपणा राहत नाही. नात्यांचे सोंग पण राहत नाही.

3) उस समय

लहानपणी शाळेत कशासाठी जातो हे अनेकांना समजत नसते. त्यामुळे वागण्याचा प्रश्न येतोच कुठे? झोप पूर्ण झालेली नसतांना बळेबळे उठून घाबरत घाबरत शाळेत जाणारी अनेक मुले बघितली. निवासातले न समजलेले प्रसंग, कुठे बाहेर बागडले असतील तर तिथले प्रसंग असे काही तरी मेंदूत असते. तसे असतांनाच मॅडमला/सरांना आ/आ किंवा a,b,c,d साधं नाही तर cursive शिकवायचे असते. मुलं, मुली एकत्र शाळा नाही? आश्चर्य आहे. असे म्हणण्याचे दिवस आहेत का हे? अशाच मनस्थितीत ती/तो.....थोडे थोडे समजतं.....पण मनात कशा कशाची प्रचंड भीती असते. शाळेत आणि निवासात मोकळे पण तरीही मर्यादा असलेले वातावरण असले तर ठिक....नाही तर मुलांचे मन फक्त भरकटत असते. इतरांना वाटते मनाला वळण लावायचे काम, दुसऱ्याचे! पण खरी गंमत इथेच आहे. मनाला वळण लावायचे काम स्वतःचे जास्त असते. लहान वयात कोण का आवडेल हे तर्काच्या बाहेर असते. मुळात

आवड ही गोष्टच तार्किक नाही. मग १०वी बारावीत किंवा कालेजच्या वयात एखादी मैत्रीण/एखादा मित्र आवडला तर? फक्त मित्र/मैत्रिण म्हणुनच आवडला, का आवडला? घरात लग्नाची बोलणी चालली आहेत पण ती माहितीच नाही किंवा लग्नच ठरलेले आहे ते पण माहित नाही किंवा आपल्या घराची अमूक एक परंपरा आहे- आजी म्हणेल तसे...बाबा म्हणतील तेच....दादा म्हणेल तेच....ताईचा शब्द शेवटचा..... यापैकी कोणत्याच गावाला आपलं वाहन नसेल आणि स्वतःची स्वतःसाठी समज नसेल तर.....आज अनेक जण स्वतःला सांगितील कालेजमध्ये कोणीतरी आवडले होते, काही म्हणतील मागे होते, काही म्हणतील ती वेळच वाईट होती.....काहींच्या आयुष्यावर खोल परिणाम करणारी....काहींचे खूप छान मित्र मंडळ असेल.....कुठे तसे असल्याचा फक्त आभास असेल....त्यातही तो/ती खोटे का होईना जोडले जातील...".ती वेळ" करणार आपण कबूल? एखादा गर्भश्रीमंत नसतो, नसतो फार विद्वान किंवा रूपवान, एखादी नसते खूप कोमल किंवा सुंदर, फार मनमोकळी वगैरे.....पण काहीतरी आवडलं.....घडतं असं.....परिचय झाला की..... व्हॅलेंटाईन डे किती जोरात साजरे होतात, होत असत....माता पिता दिन साजरे होऊन वातावरण निर्माण होईल असे वाटते. पण खरं तर हे आहे की आवड ही असते ही कबूली न देण्यात भलाई असते का? कालेजातली मुले मुली मोठ्या उत्साहात व्हेलेंटाईन डे साजरा करतात तो क्लब डे पण असतो. राहतो हा क्लब आयुष्यभर? सुंदर, हळव्या आठवणींना अर्थशास्त्र आणि सन्मानाची झालर लागली की साधीच परिस्थितीतील क्लब मधली व्यक्ती टाळली जाते. जिच्या सोबत/त्यांच्यासोबत आयुष्य जगायचे आहे का हा प्रश्न मनात आलेला असतो, त्याला खूप वेगळा टर्न मिळालेला असतांनाच अचानक ती/तो समोर जोडीदाराबरोबर प्रगटला/प्रगटली तर अवघडलेपणा येतो.....कारण खात्री नसते स्वीकार होईल का? कोणत्या काळात जगतात तुम्ही? संमतीशिवाय स्वतःच्या हिमतीवर लग्न केले, लग्न न करताच एकत्र राहिलो, लग्न करून, दुसऱ्या मैत्रिणीबरोबर राहतो..... एका वेळी अनेक मुलींना किंवा मुलांना शेंड्या लावतो.....चांगले प्रोफेसर/मॅडम शाळा/ कालेजात लेक्चरला आले की आता छान सूर जुळत तर होते असे वाटणारे मित्र मैत्रिणी फक्त competitive service circle मधले आहेत समजत जात..... किंवा आपला गाव स्वप्नांचा ही जाणीव होत जाते.....तुम्ही कोणत्या समजात? किंवा समाजातले? ती वेळ आपल्याला सांगते आपण नेमके कोणत्या विचार विश्वातले आहोत..... स्वतःच्या सांस्कृतिक विचारांच्या ओळखीचाच भाग.....सर्वांना स्वतःसाठी निदान समजलेलाच असेल, असे

नाही.....ती वेळ किती महत्वाची असते.....प्रत्येकाच्या आयुष्यात. ऐकीवात असलेल्या गोष्टी.....लहान मुलांचे मन घडवणारे.....नवे वळण देणारे..... समृध्द नाती घडवणारे असावे....."**ती वेळ**"**...**.....

४) पुनर्भेट

जीवन न तो ग्रीष्म ऋतु है, न मानसून और न ही शीत ऋतु... जीवन की लय, धुन, ताल हर पहलू में, हर समय मौजूद है। क्या आप इसे सही समय पर, सही व्यक्ति/पसंदीदा लोगों के साथ लगातार बिता सकते हैं?... मुझे एहसास हुआ कि जब सभी ऋतुएँ लय में हों, तब कर्म योग का सुझाव नहीं दिया जा सकता। कर्म योग पर मैं बाद में बात करूँगा। अभी मैं वैलेंटाइन स्पेशल सीरीज़ लिख रहा हूँ। तो पुनर्मिलन... किसके साथ, कब, कैसे... किसलिए? कभी-कभी हम किसी स्कूल के दोस्त या प्रेमिका से मिलने के बारे में नहीं सोच रहे होते। हम उस प्रिय महोदय/महोदया के गाँव में भी नहीं होते जो हमें बहुत पसंद करते हैं या हमारी रुचियों को हमसे बेहतर समझते हैं! हम बस उनके विचारों में होते हैं। शिक्षकों को यह नहीं पता होता कि ऐसे छात्र भी होते हैं जो उन शिक्षकों को याद रखते हैं जो साल दर साल एक ही स्कूल/कॉलेज में पढ़ाते हैं। ये सभी क्षण पुनर्मिलन हैं। पुनर्मिलन वह समय है जब हम अपने ही लोगों को नए सिरे से जान पाते हैं। लगातार चोट खाते हुए, अपने ऊपर काम का बोझ ढोते हुए और उसी तरह काम करते हुए, हमें यह एहसास भी नहीं होता कि हम अपने प्रियजनों से कितना दूर हो गए हैं। पुनर्मिलन के कई पल होते हैं। लेकिन हम अपनी बुद्धि का उपयोग क्यों करते हैं? यही तो हमारे जीवन और उससे भी कहीं अधिक हमारे समाज को उच्च स्तर पर ले जाता है। क्या आप ऐसा नहीं सोचते? मैंने अनगिनत बार अपना नाम जाना है। मुझे यह अनुभव कब हुआ? मैं कभी गलती नहीं करता। कोई बहुत कम उम्र में भी इस मुकाम तक पहुँच सकता है। लेकिन जो लोग इस मुकाम तक नहीं पहुँचे हैं, वे भी पुनर्मिलन के पलों को कई बार समझेंगे। दूसरों की प्रगति को अपनी प्रगति मानकर मिलने वाली खुशी में पूरी तरह से शामिल होना, अपने कदमों को पहचानना और अपनी गति से आगे बढ़ना, ये सभी पुनर्मिलन के पल हैं। मन में संजोए हुए कई मार्मिक पल सुबह की ओस की बूंदों की तरह हैं... पुनर्मिलन... हर कीमत पर टाला जाना चाहिए, ऐसा जीवन में कभी नहीं होना चाहिए, ऐसा कभी नहीं होना चाहिए, ऐसे लोगों को कभी अनुभव नहीं करना चाहिए... ऐसी फिल्में फिर कभी नहीं देखनी चाहिए... क्या न करने वाली चीजों की सूची कभी खत्म होगी? वे फिर मिलते हैं...अक्सर यह हमारी गलती होती है...कभी-कभी उस पक्षी की तरह जो अचानक अपने पंख

फड़फड़ाता है और बिना सोचे-समझे उड़ जाता है...कुछ घटित होता है...पुनर्मिलन...कई बार खींचा गया चित्र, कई बार लिखा गया लेख, अपने बच्चों को कई रूपों में दिखाया गया प्यार, कई बार गाया गया गीत...पुनर्मिलन भी ऐसा ही है...

5) काला दिन

कुछ बच्चे सच्चाई को नकारने की आदत विकसित कर लेते हैं। वे जानते हैं कि कुछ मामलों में बुरे दिन आते हैं। वे उन्हें सह लेते हैं या दूसरों को सहने के लिए मजबूर करते हैं। वे कोई विकल्प नहीं देते/लेते। कुछ के लिए, यह पाठ्यक्रम, जीवनसाथी, खान-पान... किसी भी चीज़ से संबंधित हो सकता है। कुछ केवल जीवन के इस अंधकारमय पहलू को ही जानते हैं। अस्वीकृति और केवल आज्ञापालन कुछ के लिए मजबूरी बन जाती है। इसका कारण क्या है? सामाजिक विकास का सिद्धांत या सामाजिक पतन का सिद्धांत। यह डरावना लगता है। लेकिन इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता। हर कोई सोचता है कि विशाल प्रशासन/सरकार की मदद से हम समाज को दबा सकते हैं। सब कुछ दबाया जा सकता है। लेकिन इसका अगली पीढ़ी पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिए, प्राचीन दार्शनिक आत्मज्ञान को महत्व देते हैं। जहाँ हम किसी के साथ बुद्धि का खेल नहीं खेलते, सबसे पहले स्वयं के साथ। अगर हम इस बारे में सोचें, तो समय बहुत बड़ा है और अगर नहीं, तो बहुत छोटा है। अगर हम समय के पन्ने को देखें, तो कभी-कभी हमें एहसास होगा कि जीवन उदास क्यों लगता है। हमारा और दूसरों का? सभी का जीवन सुखमय है, लेकिन जीवन की सच्चाई अलग है। लेकिन जीवन में आने वाले उन अपरिहार्य पलों के बारे में... जब आप समझना शुरू करते हैं, तो आपको सोचना चाहिए कि वह अंधकारमय दिन क्या है, क्यों, किसके कारण, कितनी बार, किसलिए? शिक्षक आपके कान खींचता है, आप घर से चिल्लाते हुए भूखे घर आते हैं... आपकी जेब में पैसे नहीं हैं, भूख आपको मार रही है... लेकिन आपको कॉलेज में दाखिला नहीं मिलता... कभी-कभी कम अंकों के कारण आपको छात्रावास में प्रवेश नहीं मिलता... बच्चा लगातार आप पर आरोप लगाता है... किसी विषय में अपेक्षित अंक क्यों नहीं मिले... जैसा कि उम्मीद थी, आपकी प्रेमिका नहीं आई... वह भारी मन से चली गई... उनके साथ रहने के बारे में सोचते हुए, उसने फिर कभी न मिलने की बात कही... कार्यक्रम शुरू नहीं हुआ... नाटक चल रहा है... अचानक आपको अगली बातचीत याद नहीं रहती... क्या जीवन के अंधकारमय दिन उसके द्वारा दिए गए अस्वीकार हैं?

6) सिर्फ आपके लिए

कहते हैं कि प्यार इंसान को अंधा बना देता है। यह सच नहीं है; असल में आकर्षण अंधा बनाता है। सच्चा प्यार एक रसीले, पके फल जैसा होता है। आप कह सकते हैं कि उस उम्र में एक पुरुष और महिला के बीच का आकर्षण ही प्यार है। नहीं—सूखी ज़मीन के बारे में सोचिए; वह पानी की एक बूंद को इतनी पूरी तरह सोख लेती है कि वह बूंद ही गायब हो जाती है। बिना आकर्षण वाला प्यार भी कुछ ऐसा ही होता है। क्या आप इसका अनुभव करना चाहते हैं? अगर आप लंबी ज़िंदगी जीते हैं, तो आपको एहसास होता है कि उम्र के साथ आकर्षण तो खत्म हो जाता है, लेकिन सच्चा प्यार कभी खत्म नहीं होता; सिर्फ़ गलत या अवास्तविक आकर्षण ही खत्म होता है। हमने अलग-अलग रिश्तों में कितने ही ऐसे पल संजोए हैं, जो सिर्फ़ "सिर्फ़ तुम्हारे लिए" वाली भावना से जिए गए हैं? आज की पीढ़ी एक ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ वे सवाल करते हैं: "रिश्तों को निभाने में क्या बुराई है? इसमें तो बस लगातार झगड़े होते हैं। इंसान वही पुरानी बातें सुनकर थक जाता है। ऐसे लोगों पर समय क्यों बर्बाद करें? ज़िंदगी छोटी है; इसे पूरी तरह जीना चाहिए।" एक पूरी पीढ़ी इस मोड़ पर पहुँच गई है। इस सोच के केंद्र में "सिर्फ़ तुम्हारे लिए" वाला नज़रिया है—चाहे वह माँ के लिए हो, दादी-नानी के लिए हो या बहन के लिए; यह लिस्ट कभी खत्म नहीं होती। नाज़ुक रिश्तों में—जो ओस की बूंदों की तरह नाज़ुक होते हैं—यह "सिर्फ़ तुम्हारे लिए" वाली भावना हमेशा दिखाई नहीं देती, फिर भी इसे गहराई से महसूस किया जाता है। पुरुष और महिला के बीच के आकर्षण में इतनी ताकत होती है कि यह लोगों को गलत काम करने के लिए उकसा सकता है, तब भी जब पार्टनर सही हो। अच्छी चीज़ें करने की कोशिश करनी चाहिए; इसके लिए मेहनत की ज़रूरत होती है। लेकिन आकर्षण तो स्वाभाविक है; इसके लिए किसी मेहनत की ज़रूरत नहीं होती। मुझे याद है कि कैसे पहले के समय में बड़े-बुज़ुर्ग लड़कियों की शादी तय करने में अपनी चप्पलें घिस देते थे—और यह सब उसी "सिर्फ़ तुम्हारे लिए" वाले समर्पण की वजह से होता था। फिर भी, यह "सिर्फ़ तुम्हारे लिए" वाली सोच इतनी ज़बरदस्त हो सकती है कि जिन लोगों के साथ हम रहते हैं या जिनसे मिलते-जुलते हैं, उनका दायरा धीरे-धीरे छोटा होता जाता है। 14 फरवरी के इस मौके पर, आइए याद रखें: "सिर्फ़ तुम्हारे लिए" कुछ करते हुए, खुद को न भूलें। कुछ लोगों को तो ऐसा लगता है कि उनकी अपनी पहचान—उनका अपना चेहरा—ही धुंधला होता जा रहा है। लोग अक्सर ऐसी पंक्तियाँ दोहराते हैं जैसे "ओ पानी, तेरा रंग क्या है?" इस लचीलेपन को बताने के लिए... फिर भी हर किसी का स्वभाव और बनावट अलग-अलग होती है, है ना? किसी रिश्ते में गुलाम जैसा बन जाने और उसे

सच में कुछ खास मानकर संजोने में बहुत बड़ा फ़र्क होता है, है ना? गहराई से सोचने पर अक्सर पता चलता है कि असल में गुलामी वाली सोच ही हावी रहती है। आपने देखा होगा कि शुरू में एक पार्टनर ज़्यादा अधिकार जमाता है, जबकि बाद में यह स्थिति दूसरे पार्टनर के साथ बदल जाती है। कोई कह सकता है, "अरे, ज़्यादातर घरों में तो *वही* (महिला) फ़ैसले लेती है," या "नहीं, बस *उसकी* (पुरुष की) बात माननी पड़ती है।" फिर भी, जैसे-जैसे समय बीतता है और आप एक-दूसरे को सच में जानने लगते हैं, आपको एहसास होता है कि ऐसी सख़्त स्थितियाँ असल में नहीं होतीं; यह "तुम अपना काम करो, मैं अपना करूँगा/करूँगी" वाली बात बन जाती है—और फिर भी, यह सब दूसरे व्यक्ति *के लिए* ही किया जाता है... जैसे ओस की एक बूंद... कितनी नाज़ुक... अगर आप रिश्ते को सँवारते हुए उन कोमल, दिल को छू लेने वाले पलों को ज़िंदगी भर बचाकर रख सकें... तो आप दोनों साथ में एक लंबा सफ़र तय कर सकते हैं।

७) विरह

सच कहूँ तो, सच्चे प्यार में कोई जुदाई नहीं होती। क्योंकि आपको पूरा भरोसा होता है कि कुछ भी कहीं नहीं जाएगा, वो अपने आप आ जाएगा! जुदाई तो शरीर में होती है। ये आपने कहाँ सीखा? हाई स्कूल में! प्यार एक मूल्य है और अगर आप इसे किसी के लिए करते हैं, तो क्या आपको जुदाई महसूस होती है? हाँ। इतनी जुदाई महसूस होती है कि आपका मन उसे सहन नहीं कर पाता। लेकिन अगर आपको याद आ जाए कि आपको प्यार क्यों हुआ था, तो आपको एहसास होगा कि आपको ऐसे अद्भुत काम करने शुरू कर देने चाहिए कि आप खुद अपने आईने बन जाएँ। आप क्या कहते हैं? आपने प्यार के बारे में पूछ-पूछकर कैसे प्यार किया? कुछ यथार्थवादी लोग भी ऐसा ही करते हैं। जो लोग यथार्थवादी नहीं हैं, लेकिन जिन्हें प्यार हो गया, उन्हें इसे क्यों खोजना पड़ा? क्योंकि आपको पता ही नहीं चला कि आपने इस दौरान कितना समय बिताया। सपने देखने वालों को समय के साथ खुद को जान लेना चाहिए... क्या आपका जीवनसाथी ही आपका सपना था? चित्रकारी एक सपना था... लेखन एक सपना था... गायन एक सपना था... दादाजी की सेवा करना एक सपना था... उनसे मिलने से पहले, क्या आपको इनमें से कुछ याद है? जब वो आपके जीवन में आते हैं, तो आपको एहसास होगा कि कुछ लोगों ने उन्हें पाने के लिए बहुत समय तक मिन्नतें कीं। क्या भीख मांगना सुखद नहीं होता? होता है। प्रेम असीम सुरक्षा प्रदान करता है। लेकिन यदि आप अपने सामने अनावश्यक चीजें रख लें, तो आपको एहसास होगा कि बच्चों

की अपार शक्ति कितनी व्यर्थ हो जाती है। न केवल लड़के, बल्कि लड़कियां भी। भावनाएं भी शक्ति होती हैं। कभी-कभी यह याद रखें: प्रेम सुरक्षा प्रदान करता है। जहां प्रेम होता है, वहां आप सुरक्षित महसूस करते हैं। आकर्षण में कोई सुरक्षा नहीं होती। प्रेम की सुरक्षा का अनुभव करने के बाद, क्या आप अपने बचपन के छोटे-बड़े सपनों को जी पाएंगे? क्या आप अपने जीवनसाथी को उनके सपनों की याद दिलाएंगे? क्या आप उनकी मदद करेंगे जहां उन्हें जरूरत होगी? क्या आप वैलेंटाइन डे को सच्चे अर्थों में मनाएंगे? क्या आप जुदाई के दर्द को एक नया मोड़ देंगे?

८) भेद

सब कुछ तब शुरू होता है जब सही उम्र में किसी को किसी से लगाव हो जाता है और वे साथ मिलकर ज़िंदगी का सफ़र शुरू करते हैं। शुरू में सब कुछ अच्छा लगता है, खासकर आकर्षण की वजह से—एक ऐसी स्थिति जो समानता और कई अंतरों से बनी होती है। इंसान के तौर पर, हमारा सफ़र सिर्फ़ आकर्षण से आगे बढ़कर इन अंतरों को गहराई से समझने की ओर बढ़ना चाहिए। दो लोग अक्सर बहुत अलग-अलग माहौल में बड़े होते हैं—भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक और शैक्षिक रूप से। माता-पिता और शिक्षकों के असर से उनकी पर्सनैलिटी बनती है, जिससे वे अक्सर अनजाने में ही अपने माता-पिता के अच्छे और बुरे गुण अपना लेते हैं। इन प्रभावों के अलावा, हमारा असली स्वभाव बहुत अलग हो सकता है, फिर भी जिस माहौल में हम बड़े होते हैं, वह हमें ढालता है। यह समझना ज़रूरी है कि यह तालमेल कितना पेचीदा है। तो, हम इन अंतरों को कैसे स्वीकार करें? एक महिला जो ऐसे कल्चर में पली-बढ़ी है जहाँ किफायत को अहमियत दी जाती है—"जितनी चादर हो उतने ही पैर पसारने चाहिए"—वह अचानक हुई किसी भी ऐशो-आराम वाली चीज़ के स्रोत पर सवाल उठा सकती है; फिर भी, दूसरे लोग उसकी किफायत को कंजूसी या लापरवाही समझ सकते हैं। इसके उलट, एक पुरुष जिसे खाना बर्बाद न करने की सीख मिली है, वह बिना सोचे-समझे खाना बनाने पर नाराज़ हो सकता है। एक पुरुष काम करने वाली और खुद कमाने वाली महिला को "बोझ" या "मुश्किल" समझ सकता है। जिस पुरुष को परिवार की ज़िम्मेदारियाँ उठाने की आदत है, वह ऐसी महिला के साथ ऐसा व्यवहार कर सकता है जिससे उसे लगातार बेइज्जती महसूस हो। क्या हम सच में इन और ऐसी ही कई अन्य बातों पर ध्यान देते हैं? लोग अक्सर दो लोगों के बीच तालमेल (या उसकी कमी) के बारे में मज़ेदार बातचीत करते हैं—या वे बातचीत का विषय बन जाते हैं। फिर भी, बहुत कम लोग काम करने वाली या शैक्षिक और प्रोफेशनल अनुभव

रखने वाली महिला की भारी मुश्किलों को समझते हैं। पुरुषों को शायद ही कभी इन खास मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उन्हें अक्सर काम की जगह पर सपोर्ट मिलता है। प्रोफेशनल तौर पर काम करने वाली महिलाओं के पास अभी भी मज़बूत सपोर्ट नेटवर्क की कमी है, और अगर किसी महिला की नौकरी चली जाती है, तो दूसरी नौकरी जल्दी मिलना अक्सर मुश्किल होता है। आखिर, वह किसके लिए ज़िम्मेदार है? वह अपनी कमाई का इस्तेमाल कैसे करती है? क्या पुरुष हमेशा अपनी कमाई का हर पैसा समझदारी से खर्च करते हैं? ये सभी अंतर की बातें हैं। सच तो यह है कि चाहे पुरुष हो या महिला, अगर उन्हें फाइनेंशियल प्लानिंग की जानकारी नहीं है, तो इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि वे अपने पैसे को अच्छे से मैनेज कर पाएंगे; और न ही इस बात की गारंटी है कि वे फाइनेंशियल प्लानिंग करने में सक्षम होंगे या उसमें दिलचस्पी लेंगे। गंभीर चर्चा और बेकार की बातचीत में फ़र्क होता है; बेकार की बातचीत अक्सर कभी खत्म नहीं होती और युवाओं की ज़िंदगी के लिए नुकसानदेह हो सकती है। शिक्षा पाने की एक खास उम्र होती है और उसे इस्तेमाल करने का समय बाद में आता है। यह मन ही तय करता है कि क्या शिक्षा बेकार गई—जैसे कि अगर कोई अपनी शुरुआती उम्र में अपनी पसंद के विषय की पढ़ाई करे लेकिन बाद में उस ज्ञान का इस्तेमाल न कर पाए। शिक्षा को इस्तेमाल करने और सिर्फ़ शौक के लिए उसे हासिल करने में भी फ़र्क होता है। इस वैलेंटाइन डे, यानी 14 फरवरी को हम किन फ़र्कों को मानेंगे? ऐसे फ़र्क इसलिए होते हैं क्योंकि हम सब अलग-अलग तरह के इंसान हैं। जो कोई भी दूसरों का एक इंसान के तौर पर सम्मान करता है, वह इन फ़र्कों को समझने की कोशिश करेगा—कम से कम अपने करीबियों के मामले में—और आखिर में रिटायरमेंट के बाद मिलने वाले लोगों को भी समझेगा। रोज़मर्रा की ज़िंदगी इतनी तेज़ी से चलती है; किसके पास ऐसी चीज़ों के लिए समय है? फिर भी, अगर हम वह समय—जो अभी हम उम्मीदें थोपने और उलझनों को सुलझाने में बर्बाद करते हैं—दूसरों के अस्तित्व का सम्मान करने और उनकी खासियत को समझने में लगाएँ, तो हमें एहसास होगा कि हर इंसान किसी भी पल में अपने तरीके से सही होता है। हम धीरे-धीरे किसी व्यक्ति की परिस्थितियों, सोच, माहौल, उनके आस-पास के लोगों और उनकी आदतों को समझने लगते हैं। कभी-कभी, हम कुछ लोगों की बहुत तारीफ़ करते हैं क्योंकि उन्होंने खुद को बेहतर बनाने के लिए कड़ी मेहनत की होती है। हम अक्सर लोगों को 'अच्छा' या 'बुरा' मानते हैं, लेकिन असलियत यह है कि कुछ लोग खुद को बेहतर बनाने में समय लगाते हैं और कुछ नहीं। क्या हमें अपने करीबियों को

समझने की कोशिश करनी चाहिए? एक कविता में सभी फ़र्कों को मिटाने की बात कही गई है... हालाँकि कुछ फ़र्क आसानी से खत्म नहीं होते। लेकिन, आइए हम दूसरों का अनादर करने की आदत को खत्म करें। फ़र्क तो हमेशा रहेंगे। आखिर, क्या यह कहावत नहीं है कि हर इंसान का स्वभाव अलग होता है? क्रीमी केक पसंद करना, वेफ़र्स और *कुरकुरे* का मज़ा लेना, दूसरों को चिढ़ाने या उनकी कमियाँ निकालने का मन करना, अपनी हालत ठीक न होने पर भी दूसरों की मदद करना चाहना, रस्में निभाने के बाद ही सुकून महसूस करना या फिर ऐसी रस्मों को बिल्कुल पसंद न करना—ये सब फ़र्क ही तो हैं। क्या यह काफ़ी नहीं है कि हमारे अपने लोग हमारे बारे में ये बातें जानें? असली बातचीत तभी होती है जब ऐसी समझ हो। वरना, हम अक्सर इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सामने वाले को एक खास तरह का होना चाहिए—और हम सब ऐसा करते हैं। इसके अपवाद केवल वे लोग हैं जिन्हें इस सत्य का *साक्षात्कार* हुआ है, न कि केवल बौद्धिक ज्ञान। क्या हम इन अंतरों को स्वीकार करें?

9) निरंतर आक्रोश

माता-पिता बनने के शुरुआती, प्यारे दौर के बाद, सारा ध्यान बच्चों पर आ जाता है। उस दौर में महिला सच में अपनी असली पहचान पाती है! जो बच्चे प्रकृति के करीब पलते-बढ़ते हैं, वे जंगली पेड़ों की तरह होते हैं—मजबूत और आज़ाद। जो लोग माता-पिता बनने के इस सफर का असली मतलब समझते हैं, वे पूरे दिल से इसे निभाते हैं। आप कौन सा रास्ता चुनना चाहेंगे? कई महिलाएं पूछ सकती हैं, "इसमें क्या बड़ी बात है?" वे कह सकती हैं, "मैं अपना करियर बना सकती हूँ क्योंकि दादा-दादी साथ हैं," या "दादा-दादी पैसों की ज़रूरत की वजह से बच्चों की देखभाल करते हैं।" फिर भी, अंदर ही अंदर, एक महिला अपने बच्चे से एक खास जुड़ाव महसूस करती है; वह हमेशा किसी न किसी तरह उनसे जुड़ना चाहती है। वे उसके अस्तित्व के लिए ज़रूरी होते हैं। पुरुष भी इससे अलग नहीं हैं; महिला का समर्पण देखकर, वे भी अपनी भूमिका में कोई कमी नहीं छोड़ना चाहते। इस सबके बीच, अक्सर बच्चा पीछे छूट जाता है। यहीं से लगातार टकराव शुरू होता है—"तुम्हारा बनाम मेरा" की खींचतान। स्थिति तब और भी मुश्किल हो जाती है जब माता-पिता दोनों कमा रहे हों। अपने-अपने क्षेत्र में समझदार और संवेदनशील इंसान बनने के बजाय, बच्चे एक माता-पिता को दूसरे के खिलाफ इस्तेमाल करने में माहिर हो जाते हैं—परिवार में बातचीत कराने वाले (नेगोशिएटर) की भूमिका निभाने लगते हैं। भले ही वे साफ़ तौर पर बहस न सुनें, लेकिन अपनी संवेदनशीलता से वे अपने आस-पास की दुनिया से स्थिति को समझ

जाते हैं। आइए, बच्चों के हमारे जीवन में आने के बाद इस लगातार होने वाली नोक-झोंक को खत्म करें। आइए, बच्चों की ज़िम्मेदारी उस व्यक्ति को सौंपें जिसे अपनी पेरेंटिंग क्षमताओं पर अटूट भरोसा हो, और ऐसे झगड़ों से दूर हटें। आखिर, बच्चे खिलौने नहीं होते—हालांकि कई लोग उन्हें वैसा ही समझते हैं। "वे क्या समझते हैं?" वाली सोच के साथ उन्हें टाल देना और भौतिक उपहारों या आम शैक्षिक कार्यक्रमों से उन्हें शांत कर देना इसका समाधान नहीं है। इसका मतलब सामाजिक उथल-पुथल पैदा करना नहीं है, बल्कि शांति से आत्म-मंथन करना है। बच्चों से जुड़े मुद्दों पर अक्सर माता-पिता में नाराज़गी पैदा हो जाती है क्योंकि दोनों माता-पिता—और साथ ही कोई भी अन्य व्यक्ति जो सच्चे अभिभावक की भूमिका निभा रहा हो—अपने-अपने अनुभवों के आधार पर बच्चे का भविष्य संवारने की कोशिश करते हैं। फिर भी, ये ज़रूरी कोशिशें अक्सर दूसरी प्राथमिकताओं के कारण पीछे छूट जाती हैं—जिनमें सबसे अहम है अधिकार की लड़ाई। जिस दिन कोई अधिकार की उस भावना को छोड़ देता है, मन को शांति मिलती है। इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चों को अनाथों की तरह खुद पर छोड़ दिया जाए; बल्कि, यह लगातार होने वाले झगड़ों से बचने के बारे में है। यह समझना ज़रूरी है कि ऐसे झगड़े सिर्फ़ अधिकार जताने की भावना से पैदा होते हैं। अक्सर बच्चों से जुड़े कई फ़ैसले लेने पड़ते हैं—चाहे वे छोटे हों या बड़े। अगर कोई एक माता-पिता हमेशा साथ रहते हैं, तो आम तौर पर वही ये फ़ैसले लेते हैं, लेकिन बाद में उनके फ़ैसलों पर बार-बार सवाल उठाए जाते हैं। यह प्रक्रिया बहुत तकलीफ़देह हो सकती है। कई लोगों के लिए, स्थिति ऐसी हो सकती है कि उन्हें माता-पिता कम और कैदी ज़्यादा महसूस होने लगता है। बच्चों की तुलना अक्सर "भगवान के बगीचे के फूलों" से की जाती है, लेकिन अगर उन्हें हमेशा नरम कंबल की गर्माहट में लपेटकर रखा जाए, तो वे ज़िंदगी की मुश्किलों का सामना नहीं कर पाएँगे। बेशक, उन्हें फूलों की तरह प्यार करें, लेकिन ऐसा इसलिए करें ताकि वे मज़बूत और संवेदनशील इंसान बन सकें। हर बात पर नाराज़ होना छोड़ दें। अपने बच्चों के मामले में हम अक्सर बहुत नरम दिल हो जाते हैं, लेकिन सच्ची संवेदनशीलता और सिर्फ़ जज़्बाती होने में बहुत फ़र्क है। हो सकता है कि मुझे इस विषय पर ज़्यादा बोलने का हक़ न हो, लेकिन अगर हम यह समझ लें कि कुछ चीज़ों को नज़रअंदाज़ करने से हमारे बच्चों का भविष्य बेहतर बन सकता है, तो क्या ऐसा करना फ़ायदेमंद नहीं होगा? क्या हम शायद उस लगातार नाराज़गी को छोड़ सकते हैं?

10) एक कप चाय में

आपके जीवन में कितनी बहस, कितनी बातचीत होती है? कितनी चाय? कितनी शराब और सिगरेट की बोतलें? वैलेंटाइन स्पेशल लिखते समय, आप केक/चॉकलेट या गुलाबी फूलों जैसा कुछ दिए बिना इतनी नीरस किताबें लिख देते हैं, और लोगों को ऊपर से सोचने पर मजबूर कर देते हैं, आपका तरीका क्या है? दरअसल, मुझे समझ आया कि बातचीत जीवन में एक ताकत है। असहमति तब भी होती है, चाहे आप उसे न चाहें। जब बर्तन से पानी थोड़ी देर के लिए टपकता है, तो बर्तन को तब तक भरते हैं जब तक आपको फ्रिज और ठंडी बोतल न मिल जाए, उस पर गीला कपड़ा रखकर पानी को ठंडा करते हैं और फिर सोचते हैं कि ठंडा पानी पीने के बाद भी आपका गला क्यों नहीं सूखता... बहुत मजेदार। असहमति भी कुछ ऐसी ही होती है। जब यह रोज़ाना हो जाती है, तो लोग ऊब जाते हैं। केवल लेखक के लेखन के बड़े प्रशंसक ही एक दिन उन्हें ज़मीन पर लाते हैं। इसका कारण यह है कि (आर्थिक कारणों के अलावा) प्रशंसक वर्ग यह अनुमान लगाने लगता है कि अगला लेखन भी ऐसा ही होगा और फिर शिकायत करने लगता है। लेखक तौलिये के बारे में सोचे बिना ही लेखन छोड़ने का रास्ता अपना लेते हैं। (लेखक या कोई भी कलाकार या कर्म) इसका चाय के प्यालों से क्या लेना-देना है? तो जब मैं बैठक में आता हूँ, तो मुझे अपने कर्मों से लड़ना पड़ता है। अगर मैं उस तूफान से लड़ने के लिए एक प्याला चाय का इस्तेमाल करूँ तो कितना असर पड़ेगा? अगर मैं शराब का इस्तेमाल करूँ तो कितना असर पड़ेगा? जब मैं अपना रोज़मर्रा का जीवन जीना शुरू करता हूँ, तो मैं उसे या उसे अपनी आँखों के सामने नहीं देखना चाहता। क्योंकि क्या पता कुछ...समझ जाए.... नहीं। आज के वैलेंटाइन डे पर एक साथ आइए और समझिए कि जो लोग नहीं समझते, वे भी एक साथ आने से कुछ समझते हैं। हर कोई सब कुछ नहीं समझता। अगर आप समझते हैं, तो आप उसे कर नहीं सकते, इत्यादि। तो क्या ये तूफान/असहमतियाँ एक प्याले चाय/पेय से सुलझ जाती हैं? जब कोई शराब न पीने वाला बच्चा पीना शुरू कर देता है, तो माँ बेचैन हो जाती है। क्या असहमति का एक छोटा सा हिस्सा बातचीत के लिए उपयुक्त है या किनारे पर रहने के लिए? हमारा काम शोध करना है! वैलेंटाइन डे पर हर जोड़ा खुद से वादा करता है कि 'जीवन की उथल-पुथल के बीच जीवन को संजो कर रखेंगे'।

11) अचार और अचार

ये दिन भी गुज़र जाएँगे और अच्छे दिन आएँगे; पापा कार या खिलौना लाएँगे, दादाजी घर आएँगे और दादीजी मज़ेदार चीज़ें बनाएँगी—बचपन का मज़ा ही कुछ ऐसा होता

है। लेकिन, अचार और मुरब्बे तो जल्दी नहीं बनते! इस साल, लगातार चौदह 'वैलेंटाइन स्पेशल' लेख छापने का प्लान था। लेकिन आपका क्या—क्या आप 'सीज़न्ड' (समझदार/अनुभवी) हैं? उन लेखों को कौन पढ़ेगा? क्यों न रोज़मर्रा की ज़िंदगी की सच्चाइयों पर बात की जाए? अचार और मुरब्बे बेचें! बच्चों, 'सीज़न्ड' होने का मतलब सिर्फ़ खेल खेलना नहीं है। इसका मतलब है मौसम को समझना: जब मॉनसून आता है, तो आपको रेनकोट और छाते की ज़रूरत होती है; गर्मियों में, आपको आइसक्रीम, शांति और आम चाहिए होते हैं; और सर्दियों की अपनी ज़रूरतें होती हैं। संक्षेप में, समझदारी हासिल करना ही 'सीज़न्ड' होना है। हम अचार और मुरब्बे को कितने अलग नज़रिए से देखते हैं? किसी दूसरे व्यक्ति के मन को पढ़ने की क्षमता—या अक्षमता—अचार या मुरब्बे के स्वाद जैसी होती है। लेकिन एक संवेदनशील, मज़बूत दिमाग जो सही समाधान ढूँढता है—वह मीठे लड्डू जैसा होता है! हमें ऐसा दामाद चाहिए जो मीठे लड्डू जैसा हो, फिर भी बेटी अक्सर जलेबी जैसी होती है! ज़रा सोचिए कि लड्डू और जलेबी की आपस में कैसे बनेगी! तीखी मिर्च भी शायद बेहतर हो। बात यह है कि जब हालात माँग करें तो पीछे हट जाएँ, जहाँ हो सके वहाँ काम करें, और उलझनें पैदा करने के बजाय उन्हें सुलझाएँ—और साथ ही अगली पीढ़ी को सक्षम बनाने के लिए कुछ ऐसा छोड़ जाएँ जो उनकी मदद करे। गुड़ से बनी गणेश जी की और चीनी से बनी गौरी जी की मूर्तियाँ मखर (पूजा-घर) में बहुत सुंदर लगती हैं और प्रार्थना में सिर झुकाने के लिए अच्छी हैं, लेकिन क्या अगली पीढ़ी के लिए ज़्यादा से ज़्यादा भौतिक सुख-सुविधाएँ जुटाते रहना ही सही जीवनशैली है? जो बच्चे कम उम्र से ही स्वस्थ जीवनशैली अपनाते हैं—चाहे उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति कुछ भी हो—वे बड़े होकर उसी दायरे में खुश और आत्मविश्वासी बनते हैं। खुशी और आत्मविश्वास के नए आयाम हो सकते हैं, लेकिन वे दूसरों की भलाई का ध्यान रखते हुए अपनी खुशी खुद बनाने की आंतरिक शक्ति कभी नहीं खोएँगे। 'सीज़न्ड' होने का मतलब है सच्ची समझ विकसित करना। 'परिपक्व' होने (जैसे अच्छी तरह से तैयार अचार या मुरब्बा) का मतलब चालाक होना नहीं है। कुछ लोग बस कुछ बातों को समझ नहीं पाते; वे सामाजिक जीवन की प्रकृति को नहीं समझते। उनकी सोच असलियत से अलग हो सकती है। हालाँकि हर किसी की समझ अलग-अलग होती है, लेकिन असली परिपक्वता अपनी ज़िम्मेदारियों को समझने में है—सिर्फ़ उन्हें सौंपने या स्वीकार करने में नहीं, बल्कि जीवन को समग्र रूप से समझने में। ज़िम्मेदारी का मतलब सिर्फ़ कोई काम सौंपना या काम मिलने के बाद मनमानी करने

की आज़ादी पाना नहीं है। यह परिपक्व होने की प्रक्रिया है—ठीक वैसे ही जैसे अचार और मुरब्बा बनाए जाते हैं। कुछ भी तुरंत नहीं होता; फिर भी, धैर्य एक ऐसा गुण है जो बहुत कम लोगों में होता है। इन गुणों को अपने व्यक्तित्व में शामिल करना उस 'तैयार होने' की प्रक्रिया जैसा ही है। सच्ची परिपक्वता सिर्फ़ यह सामाजिक समझ नहीं है कि किसी दूसरे व्यक्ति की कमी असल में हमारे लिए एक खूबी हो सकती है। ज्ञान और रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करना ही इंसान को पूर्णता की ओर ले जाता है। कोई सामाजिक व्यवस्था तब स्वस्थ नहीं होती जब वह कुछ ज़रूरतों को पूरा करने के लिए किसी को अधूरा रखती है; बल्कि, एक आदर्श व्यवस्था वह है जो ज़रूरतों को समझती है और समाज को पूर्णता की ओर ले जाती है। अगली पीढ़ी के बच्चों को व्यवस्थाओं का निर्माता बनना चाहिए। हमें अभी से इसकी तैयारी शुरू कर देनी चाहिए—एक ऐसे समाज का लक्ष्य रखते हुए जो ज्ञानी और खुशमिजाज़ हो, और अचार-मुरब्बे के लिए ज़रूरी धैर्य से जीवन जीने की कला सीखें। वरना, यह हास्यास्पद लगता है जब कोई व्यक्ति जो असली अचार या मुरब्बा भी नहीं बना सकता, वह "किचन क्वीन" का खिताब पाने की इच्छा रखता है। ऐसे पल भी आते हैं जब हम खुद पर दिल खोलकर हँसते हैं; ये पल ही सच्चे आत्म-साक्षात्कार के पल होते हैं। इसके विपरीत, जब दूसरे हम पर हँसते हैं, तो वे पल दर्दनाक होते हैं। ज्ञान प्राप्त करें और आत्म-साक्षात्कार के उन पलों को बढ़ाएँ। सभी मौसमों—गर्मी, मानसून और सर्दी—के लिए खुद को अच्छी तरह तैयार करें।

12) नाम में क्या रखा है?

नाम एक पहचान बताता है; जैसे-जैसे इंसान काम करना शुरू करता है, उसकी पहचान बनती जाती है। लोगों के साथ जुड़ाव बनते हैं—कोई किसी का अपना होता है तो कोई किसी और का। धीरे-धीरे, उस नाम के साथ पैसा और ज़िम्मेदारियाँ जुड़ जाती हैं, और अक्सर नाम का असली मतलब खो जाता है। बच्चे को नाम इसलिए दिया जाता है ताकि वह अपनी पहचान जान सके। फिर माता-पिता, दूसरे रिश्ते और कई और बातें जुड़ती जाती हैं। समय के साथ, ये चीज़ें इतनी उलझ जाती हैं कि नाम से जुड़ी ज़िम्मेदारियों को निभाते-निभाते हम यह भूल जाते हैं कि हम असल में कौन हैं। इससे जो 'मैं' या अहंकार पैदा होता है, वह बहुत ज़बरदस्त और गहरा दुख देने वाला हो सकता है। फिर भी, जो इंसान दुनियादारी के इन बंधनों से दूर रहता है, उसके लिए नाम का कोई खास महत्व नहीं होता; उसके लिए रिश्ते और ज़िम्मेदारियाँ ही असली मायने रखती हैं। इसके अलावा, मैं नाम को एक भावनात्मक जुड़ाव के तौर पर देखता

हूँ। माता-पिता अक्सर बहुत प्यार से या खास परंपराओं, रीति-रिवाजों या मंत्रों को ध्यान में रखकर नाम चुनते हैं। उन रीति-रिवाजों को छोड़ भी दें, तो अगर नाम प्यार से चुना गया हो, तो उस नाम की आवाज़ हमेशा कानों में गूँजती रहती है। चाहे इंसान बिल्कुल अकेला हो या भीड़ में, वह पुकार उस तक पहुँच ही जाती है; नाम से जुड़े रिश्ते की गहराई ऐसी ही होती है। कुछ लोग इसके ज़रिए भौतिक फ़ायदा या सामाजिक संपर्क चाहते हैं। अगर किसी को लगता है कि सिर्फ़ नाम और शोहरत ही लोगों को पास लाते हैं, तो उसे उन मशहूर लोगों को देखना चाहिए जो अब अकेले रहते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि लोग आते-जाते रहते हैं। सिर्फ़ वही लोग साथ रहते हैं जिनमें ज़िम्मेदारी का गहरा एहसास होता है। और अगर आप ध्यान से देखें, तो पाएँगे कि उनकी पुकार दिल की गहराई तक पहुँचती है। इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरे लोग गलत हैं। ज़िंदगी आगे बढ़ती है; हर कोई कुछ अलग चाहता है, और उस सफ़र में लोग बहुत अलग-अलग मंज़िलों तक पहुँचते हैं। आख़िरकार, अगर हम नाम से जुड़े आर्थिक पहलुओं को छोड़ दें, तो हमें उस प्यार का एहसास होता है जिसके साथ वह नाम दिया गया था। सच तो यह है कि नाम चाहे कोई भी हो, उसका असली महत्व वही रहता है; इसका पैसे-कौड़ी से कोई लेना-देना नहीं है। फिर ज़िम्मेदारी की बात आती है। चाहे नवजात बच्चा लड़का हो या लड़की, क्या उनसे कुछ ज़िम्मेदारियाँ निभाने की उम्मीद नहीं की जाती? न तो गैर-ज़िम्मेदार लड़कों को और न ही गैर-ज़िम्मेदार लड़कियों को पसंद किया जाता है। किसी न किसी तरह की ज़िम्मेदारी हमेशा होती है—भले ही वह सिर्फ़ खुद के प्रति ही क्यों न हो। आख़िरकार, नाम में क्या रखा है? कम से कम, एक नाम इंसान पर खुद की ज़िम्मेदारी तो डालता ही है। एक लड़की कम उम्र से ही ज़िम्मेदार होती है; वह शांति को महत्व देती है और किसी को तकलीफ़ में नहीं देख सकती। वह हंगामे या शोर-शराबे की आहट मिलते ही पीछे हट जाती है, क्योंकि उसके लिए मेल-जोल और शांति सबसे बढ़कर है। मैं उसकी पहचान को इसी तरह देखती हूँ—एक ऐसी इंसान के तौर पर जो ज़िम्मेदार है। फिर भी, अगर हम ज़िम्मेदारियों, आर्थिक पहलुओं और नाम से जुड़ी पहचान को एक तरफ़ रख दें, तो दिल में बस प्यार से पुकारे जाने की आवाज़ ही गूँजती है। किसी के द्वारा इतना प्यार और अहमियत पाना वाकई कितनी खूबसूरत बात है, है ना?

13) बढ़ती समझ

"शरीर ही धर्म को पूरा करने का मुख्य साधन है" (*शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्*)—यह सिर्फ़ एक आलोचना नहीं है, और न ही यह हर मामले में पूरी तरह सच है। शरीर

के बारे में पूरी जानकारी होने पर भी, इंसान को एहसास होता है कि प्यार में यह कितनी बड़ी रुकावट बन सकता है। प्यार का कोई रूप नहीं होता; यह एक अमूर्त भावना है। हम अपने बच्चे को चीज़ें देकर उनके प्रति अपना प्यार ज़ाहिर करने की कोशिश करते हैं, फिर भी सब कुछ देने के बाद भी हमें खालीपन महसूस होता है—सोचते हैं कि क्या वे सच में खुश हैं। इसलिए, प्यार एक अमूर्त विचार है; इसका सफ़र हमेशा ऊपर की ओर होना चाहिए, नीचे की ओर नहीं। किसी के बारे में हमारी समझ कब पक्की होती है? यह तब होता है जब हम उनके विचारों पर गहराई से सोचते हैं, और उससे भी ज़्यादा, जब हम उनके साथ समय बिताते हैं। फिर भी, ऐसा क्यों कहा जाता है कि "ज़्यादा जान-पहचान से अनादर पैदा होता है"? क्योंकि तब हम चीज़ों को हल्के में लेने लगते हैं—यह मानकर कि चीज़ें अपने आप हो जाएँगी या ठीक हो जाएँगी। असल में, किसी का हम पर इतना भरोसा करना एक सम्मान की बात है। हालाँकि, कई बार हमें लगता है कि हमारे सबसे करीबी लोग भी हमें ठीक से नहीं समझते। मैं कोई रिलेशनशिप स्पेशलिस्ट नहीं हूँ, लेकिन अक्सर लोग यह नहीं समझ पाते कि रिश्ते हमें कितना ऊपर उठा सकते हैं। हम तब परिपक्व होते हैं जब हम उन रिश्तों में छिपी उम्मीदों को समझने लगते हैं—जो आज की भागदौड़ भरी ज़िंदगी में सचमुच मुश्किल है। अगर पति-पत्नी का रिश्ता—चाहे वे साथ रहते हों या अलग—100% सही नहीं हो सकता, और माता-पिता के साथ भी यही बात लागू होती है, तो दूसरे रिश्तों में यह आसान कैसे हो सकता है? इसके लिए समय चाहिए। फिर भी, आज समय की ही कमी है। बात सिर्फ़ समय की नहीं है; समझ भी विकसित करनी पड़ती है। सोचिए कि आज बच्चों को कितना कुछ सीखना पड़ता है और उन्हें किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ऐसे समय में, सही सहयोग, मार्गदर्शन, अच्छी आदतों और एक व्यवस्थित दिनचर्या के साथ-साथ, हमें माता-पिता से मिले "जीनोम"—यानी खुद शारीरिक शरीर—पर भी ध्यान देना चाहिए। इसे नकारात्मक नज़रिए से नहीं देखना चाहिए; यह एक संपत्ति है। इसे समझना, सहेजना और इसका ध्यान रखना हमारा कर्तव्य है। आखिरकार, हमारे शरीर में ही मन और मस्तिष्क भी शामिल होते हैं। "शरीर को पढ़ने" का मतलब है उसकी हर हरकत को समझ पाना। शरीर आदतों से भी बनता है। अच्छी आदतों की वकालत क्यों की जाती है? आदतें चिल्लाने, डराने-धमकाने या लगातार टोकने से नहीं बनतीं; यह दिमाग का काम है। "वेलेंटाइन स्पेशल" में इसके बारे में क्यों लिखें? क्योंकि अपने वेलेंटाइन को सच में समझने के लिए, आपको पहले खुद को समझना होगा, है ना? सिर्फ़ जान-पहचान से

समझ बढ़ती है, ज़रूरी नहीं कि उससे परवाह या देखभाल भी बढ़े। इसकी वजह यह है कि हम खुद को नहीं जानते। किस तरह का आगे बढ़ने का सफ़र? और किस मकसद से? दूसरों को पीछे धकेलने के लिए? बिल्कुल नहीं। यह ज़िंदगी की रुकावटों को दूर करने और अच्छे काम करने के लिए है। अक्सर, किसी लड़की को ज़रा सी भी तकलीफ़ से बचाने के लिए बहुत ज़्यादा लाड़-प्यार में रखा जाता है, या इसके उलट, उससे बहुत ज़्यादा काम करवाया जाता है—चाहे वह लड़का हो या लड़की। अगर हम खुद को समझें, आलस से बचें और एक्टिव रहें, तो हम न सिर्फ़ खुद खुश रहेंगे बल्कि दूसरों को भी खुशियाँ देंगे। वेलेंटाइन डे के मौके पर, प्यार और पारिवारिक खुशियों का सफ़र लगातार बनाए रखना ज़रूरी है, साथ ही यह भी पक्का करना ज़रूरी है कि एक-दूसरे के बारे में हमारी समझ बढ़ती रहे। भावनाओं का बेकाबू सैलाब शरीर के लिए अच्छा नहीं होता; एक बार जब साँसें तेज़ी से चलने लगें या दिल ज़ोरों से धड़कने लगे, तो उन्हें काबू में करना बहुत मुश्किल होता है। उस भावना को सही दिशा में सही समय पर मोड़ना ज़रूरी है। एक नदी के बारे में सोचिए: जब उसका बहाव तेज़ होता है, तो वह अपने किनारों को तोड़ देती है, जिससे बहुत नुकसान होता है। इसलिए लगातार बढ़ती समझ की ज़रूरत है। जब साथ रहने वाले भाई-बहन अलग होने का फ़ैसला करते हैं, तो समाज में कानाफूसी शुरू हो जाती है; फिर भी, वह फ़ैसला परिवार के माहौल के बारे में उनकी आपसी समझ से आता है—और वह सही होता है। ज़िम्मेदार लोगों से यह कहना गलत है कि वे बस "समझते नहीं हैं।" इसीलिए लगातार विकसित होती समझ बहुत ज़रूरी है।

14) प्रेम और माता-पिता दिवस से जुड़ी कहानियां

जब लोग एक साथ आते हैं तो बहुत कुछ घटित होता है। स्वतंत्र सामाजिक या सांस्कृतिक मानदंड भी बनते हैं। कुछ लोग इस पर बहुत ज़ोर देते हैं। कौन सी संस्कृति टिकती है? वही जिसके पक्ष में अधिकांश लोग हों। मेरा मानना है कि कुछ भी स्थायी नहीं होता। प्रकृति परिवर्तनशील है। लेकिन कुछ मौसमों का एक स्थिर अवधि में आना कितना लाभकारी होता है। हर हाल में, अगली पीढ़ी को परिवर्तन और निरंतरता की तलाश करनी पड़ती है। सब कुछ त्याग देना या हर चीज़ को बदलते रहना लाभकारी नहीं है। बच्चों को यह याद रखना चाहिए। आज सब कुछ आसानी से उपलब्ध है। इसे किसने बनाया? हमें रचनात्मकता को याद रखना चाहिए। जब लोग एक साथ आते हैं,

तो हमें यह समझना चाहिए कि वे किसी के बारे में क्यों और किस कारण से बात कर रहे हैं। अक्सर हम समझ नहीं पाते। अक्सर हमारे पास उतना समय नहीं होता। प्रेम में तब बातें घटती हैं जब हम किसी के लिए प्रेम महसूस करते हैं। अगर हम किसी की अनावश्यक आलोचना करते हैं, तो प्रेम समाप्त हो जाता है। अक्सर, हम यह नहीं समझ पाते कि दूसरा व्यक्ति क्या, कहाँ और किस कारण से गलत कर रहा है। क्योंकि मन बहुत व्यस्त होता है। आत्म-अध्ययन उतना आसान नहीं है जितना लगता है। लेकिन आत्म-अध्ययन करने वाले व्यक्ति के रिश्ते कभी असफल नहीं होते। तो व्यापार के बारे में क्या? व्यापार और रिश्ते कोई दौड़ नहीं हैं। भले ही आप अपने बारे में सच्चे हों और कोई सार्वजनिक रूप से आपसे यह कह दे, तो बहुत बुरा लगता है। लोग निजी तौर पर ऐसा कहते हैं और समझते नहीं हैं। हालांकि, कुछ लोग इसे नहीं समझते। समझना एक व्यक्तिगत मामला है। जो बुरा लगता है वह क्षणिक होता है, लेकिन उससे मिलने वाला लाभ लंबे समय तक रहता है। मैं, जो बातें करता हूँ, कई जगहों पर गलतियाँ करता हूँ। लेकिन मैं केवल उन्हीं सिद्धांतों को बताता हूँ जिन्हें मैं समझता हूँ, जिन पर मैंने जीवन व्यतीत किया है। हम दूसरों को बदलने के लिए क्यों प्रेरित होते हैं? जहाँ प्रेम जन्म लेता है, वहाँ गर्माहट पनपती है। प्रेम का यही नियम है। किसी की जानबूझकर निंदा करना कभी भी सांस्कृतिक मानदंड नहीं हो सकता। और यह बहुत सूक्ष्म बात है। बदलने का इरादा रखने और उन्हें यह बताने की स्वतंत्रता में अंतर है कि वे क्या करेंगे। मैं उनसे प्रेम करता हूँ, मैं उन्हें हमेशा याद करता हूँ। लोगों की मेहनत व्यर्थ नहीं जाती। अब वैलेंटाइन डे को "माता-पिता" दिवस के रूप में मनाया जाता है। मैंने स्वयं वैलेंटाइन डे को बहुत गलत मोड़ लेते देखा है। वहाँ बहुत गंदगी फैली हुई है। इसलिए, युवाओं को प्रेम का जश्न उसी जिम्मेदारी के साथ मनाना चाहिए जिस जिम्मेदारी के साथ वे सम्मान/आदर/सम्मान को महत्व देते हैं।

दिनांक :- 1//

नफरत की आग

ईर्ष्या या जलन ऐसी भावना है कि यदि कोई विशेष इच्छा पूरी न हो तो मन को बहुत पीड़ा होती है। इच्छा ऐसी नहीं होती। उसमें पीड़ा का अनुभव बहुत गहरा होता है। यही इन दोनों में अंतर है। आवश्यकता तो बिल्कुल अलग है। मानव जीवन में किसी आवश्यकता का पूरा न होना ठीक नहीं है। इसके लिए मन का व्याकुल होना तो और भी बुरा है। ऐसा क्यों है? तो क्या एक समृद्ध मानव जीवन बिना किसी भी स्तर पर घृणा के जिया जा सकता है? यदि इस अंतर को समझ लिया जाए तो यह निश्चित रूप से

संभव है। आज मैं इस अवसर पर कई विषयों पर चर्चा करने जा रहा हूँ। काला और सफेद रंग, काम करने की अलग-अलग क्षमताएँ, समझने की अलग-अलग क्षमताएँ, जीवन स्तर में अलग-अलग रुचियाँ, काम करवाने के तरीके, विवाह की रस्में, व्यवहार के तरीके आदि। इन सभी का समग्र दृष्टिकोण हर किसी के लिए उपयुक्त नहीं है। किसी को किसी विशेष तरीके से व्यवहार करने का सुझाव देने में कितना विचार करना चाहिए? क्योंकि हम सुझाव देने वाले व्यक्ति के आत्मविश्वास के स्तर को देख रहे होते हैं। फिर यह विचार आता है कि अहंकार अक्सर आत्मविश्वास से अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि जो लोग सीखना चाहते हैं वे एक बार कहने पर ही समझ जाते हैं। इसमें कितना समय लग सकता है? अगर हम इंतज़ार करें, तो हम समझ जाएंगे कि जो सीखना चाहता है, वह सीखता ही है। जब लोगों के अहंकार को ठेस पहुँचती है, तो नफ़रत की आग भड़क उठती है। लेन-देन के लिए कई तरह के समूह बनते हैं। अगर यह सद्भावना से किया जाए, तो ठीक है। अगर लेन-देन बढ़ता है, तो भी ठीक है क्योंकि इसे संभालने के लिए दिया जाता है। किसी करीबी से अचानक असहमति जताना कैसा लगता है? तो, किसी बात से सहमत न होना एक तरह की बात है, लेकिन साथ ही साथ और भी कई बातें हैं। समाज में रहते हुए हम इस तरह की बातों का कितना अनुभव करते हैं? सोच-समझकर विचार करने से इसका समाधान मिल जाता है।

दिनांक :- 1//

सहअस्तित्व का सुख

साथ रहने का मतलब है एक साझा ज़िंदगी जीना। यह एक अच्छा और बेहतरीन अनुभव कब बनता है? यह तब होता है जब ज़िम्मेदारियाँ आपस में तय की जाती हैं और सभी उन्हें स्वीकार करते हैं। इसके अलावा, एक-दूसरे से जुड़ी उम्मीदों पर समय-समय पर बात होती है, और उससे बनी सहमति या असहमति को समझा जाता है। कई लोग अक्सर कहते हैं, "लोग तुम्हारे बारे में पूछते हैं; जब भी कहीं बुलाया जाता है, तुम कभी नहीं आते।" समाज में होने वाले मेल-जोल के कई मकसद होते हैं; कभी-कभी, ये महिलाओं को एक साथ आने और खुलकर समय बिताने का मौका देते हैं। अक्सर, छोटे बच्चों के लिए ऐसे सामाजिक पलों की अहमियत को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। असल में इन सामाजिक पलों में क्या-क्या शामिल होता है? इनमें कपड़े चुनने से लेकर बातचीत, खाने-पीने के तौर-तरीके और आम व्यवहार तक सब कुछ शामिल होता है। इस तरह के मेल-जोल से न सिर्फ़ झिझक दूर होती है, बल्कि रोज़ाना

स्कूल की पढ़ाई के भारी बोझ से भी राहत मिलती है—अच्छा लगता है। हालाँकि, बच्चों को सामाजिक बनाने का मतलब यह नहीं है कि उन्हें हर समय बाहर ले जाया जाए; ऐसा करने के बड़े नुकसान भी हो सकते हैं जिन पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता, और इससे उनमें बगावत या बदतमीज़ी वाला व्यवहार पनप सकता है। असल में सामाजिक होने का मतलब है बच्चे के मन से अजनबियों का डर दूर करना और उन्हें आम बातचीत करने के काबिल बनाना। इसके उलट, कुछ बच्चों को कम उम्र में ही भीड़-भाड़ वाली जगहों पर इतना ज़्यादा ले जाया जाता है कि बड़ों का भरोसा जीतने के बाद, वे उनकी पीठ पीछे गलत हरकतें कर सकते हैं—अक्सर इसलिए क्योंकि उन्हें गलतफहमी हो जाती है कि इतनी कम उम्र में ही वे सब कुछ जानते हैं। एक साझा ज़िंदगी में, ज़िम्मेदारियाँ सिर्फ़ कामों तक ही सीमित नहीं होतीं; भावनाओं का ख्याल रखना भी एक ज़रूरी हिस्सा है। चाहे घर हो या कोई संस्था, हालात एक जैसे ही रहते हैं: जो बॉस भावनात्मक देखभाल को अहमियत देता है, उसे भरोसा कायम होने के बाद भावनात्मक हेर-फेर से लेकर काम में रुकावट जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। अगर भरोसा सिर्फ़ काम के नतीजों पर किया जाए, तो काम के बहाव में रुकावटें आ सकती हैं या पैसों के लेन-देन में गड़बड़ी हो सकती है। अगर भरोसा बिल्कुल न हो, तो लोग अक्सर नौकरी छोड़ देते हैं। क्या यह आसान है? आखिर, ऐसी शिक्षा का क्या फ़ायदा जो किसी इंसान को असल में सशक्त न बनाए? हम अक्सर कोई खास शिक्षा सिर्फ़ इसलिए हासिल करते हैं ताकि कोई खास नौकरी कर सकें; यह फ़ासला इसलिए है क्योंकि शिक्षा और ज़िंदगी असल में एक-दूसरे से जुड़े नहीं हैं। लोग अक्सर यह नहीं समझ पाते कि किसी संस्था के अंदर भी "साझा जीवन"—यानी आपसी जुड़ाव और साथ मिलकर रहने की भावना—हो सकती है और असल में फल-फूल सकती है। जब लोग साल-दर-साल एक ही तरह का काम करते हैं, तो अक्सर बोरियत की वजह से वे बस खानापूर्ति करने लगते हैं—यानी जितना ज़रूरी हो, उतना ही काम करते हैं। हर साल एक जैसा ही रूटीन होता है: स्कूलों और कॉलेजों में स्टूडेंट्स के नए बैच आते हैं; डॉक्टर नए और पुराने मरीज़ों को देखते हैं; फार्मासिस्ट और वकील अलग-अलग क्लाइंट्स के साथ काम करते हैं; लेखक भी शायद एक ही तरह के पैटर्न में फंस जाते हैं। ये हालात "शेयर्ड लिविंग" (मिल-जुलकर रहने) से कैसे जुड़े हैं? मैं दो तरह की शेयर्ड लिविंग की बात कर रहा हूँ: एक घर के अंदर (निजी ज़िंदगी) और दूसरी ऑर्गनाइज़ेशन के लेवल पर। घर के अंदर ज़िंदगी की क्वालिटी, ऑर्गनाइज़ेशन में शेयर्ड लिविंग की क्वालिटी के साथ-साथ

बेहतर होती है। बहुत ज़िम्मेदार लोग अक्सर ऑर्गनाइज़ेशन में ज़्यादा समय तक नहीं टिक पाते; दूसरे लोग उन्हें कॉम्पिटिटर के तौर पर देख सकते हैं। कोई यह सोचने की कोशिश नहीं करता कि ऐसे लोगों की काम के बाहर भी अपनी ज़िंदगी होती है। वे एक नौकरी से दूसरी नौकरी में जा सकते हैं, फिर भी आम शिकायत यही रहती है कि वे "टिकते नहीं हैं।" अक्सर, न तो वे और न ही उनके साथी वर्कप्लेस पर होने वाली घुटन या निराशा को पूरी तरह समझ पाते हैं; कभी-कभी, दूसरे लोग उन्हें संघर्ष करते देखकर संतुष्टि भी महसूस करते हैं। क्या इसे सच में "ऑर्गनाइज़ेशन कल्चर" कहा जा सकता है? कुछ लोगों को ऑर्गनाइज़ेशन के अंदर "शेयर्ड लिविंग" का विचार ही अजीब लग सकता है। फिर भी, अगर हर कोई यह समझ ले कि जहाँ वे घंटों काम करते हैं, वह असल में उनका "दूसरा घर" है, तो ऑर्गनाइज़ेशन कभी खत्म नहीं होगा। कुछ ऑर्गनाइज़ेशन क्यों लाइफ सपोर्ट पर आ जाते हैं? ऐसा तब होता है जब अपनापन खत्म हो जाता है और काम से कोई संतुष्टि नहीं मिलती। लोग अक्सर ऑर्गनाइज़ेशन को बंद करने और दूसरे रास्ते खोजने का समाधान चुनते हैं। जिस संस्था को बनाने में उन्होंने इतनी मेहनत की, उसके कल्चर को बनाने या उसकी ग्रोथ को बढ़ावा देने के बजाय, वे दूसरे रास्ते चुनते हैं। हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी बताती है कि ज़िंदगी तेज़ी से आगे बढ़ती है; फिर भी, मुझे लगता है कि जब हर दिन कोई नया विचार आता है, तो ज़िंदगी काफी सुकून भरी हो जाती है। शेयर्ड लाइफ़ में, इंसान को पूरी तरह से सोचना चाहिए कि असली ग्रोथ कोशिश करने से ही होती है। बच्चे पर दबाव डालने से असली सीख नहीं मिलती; इससे बस सीखने का भ्रम पैदा होता है। शिक्षा एक स्वाभाविक, ऑर्गेनिक प्रक्रिया है—इसीलिए मुझे यह पसंद है। हम नया ज्ञान पैदा करके नए मौके बनाते हैं, लेकिन हम यह क्यों भूल जाते हैं कि पुरानी चीज़ें भी ज़रूरी हैं? शेयर्ड लाइफ़ दो लेवल पर काम करती है: "घर की चार दीवारों के अंदर" और "सामाजिक संस्था के अंदर।" आइए इस पर सोचें...

जिज्ञासा की यात्रा

जिज्ञासा का सफर हमेशा ऊपर की ओर होता है। जब आपको पूरा ज्ञान मिल जाता है, तो सब ऊब जाते हैं! हर तरफ यही चर्चा चलती रहती है कि आखिर है क्या? सिर्फ मनोरंजन क्षेत्र ही इसका अपवाद है। क्योंकि मेरा मानना है कि नया विचार एक आशीर्वाद है। नया खाना/नया गाना/नए डांस/नई फिल्में आदि। यह भूलना आसान नहीं है कि ये बड़ों का आशीर्वाद हैं। हर कोई छोटे बच्चों को कहता है कि जल्दी सीखो और बड़े हो जाओ। लेकिन मैं कुछ अलग कह रही हूँ। जितना जल्दी हो सके

आत्मज्ञान का अध्ययन करो। कम से कम 12वीं कक्षा तक। जिज्ञासा का यह सफर सबसे कठिन है। क्योंकि यहाँ चढ़ने की सुविधा है, उतरने की नहीं। अगर आपको उतरने के लिए मजबूर किया जाए, तो यह बहुत कष्टदायक हो जाता है। देखो और अनुभव करो। खाना पकाने के शौकीन किसी व्यक्ति को लेखन कार्य दो (सभी महिलाएं कहेंगी कि हम सभी को यह पसंद है/कुछ को नहीं)। वह व्यक्ति जो सुझाव देता है और नवाचार ला सकता है, जिसे खाना पकाना पसंद है/जो खाना पकाने का संग्रह करता है। वह व्यक्ति जो इसे आजमाता है और पसंद करता है। दुनिया में ऐसे कितने लोग हैं? कई लोग कहते हैं कि हमें जीवन में ऐसा मौका नहीं मिला। यह सच होगा। इसलिए, स्कूल, आवास और सामाजिक संस्थाएँ जीवन को आकार देने में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। कौन नहीं चाहता कि उनके बच्चों का जीवन अच्छा हो? हर कोई कोशिश करता है। स्कूल में दाखिले से लेकर नौकरी/प्रेमिका तक। फिर भी, बहुत से लोग क्यों खुद को एक ही ढर्रे पर फंसा हुआ महसूस करते हैं? क्योंकि जिज्ञासा की यात्रा माता-पिता की होती है। यह बच्चों की होनी चाहिए। जो बच्चे ऐसा कर सकते हैं, वे ऐसे क्यों होते हैं? तो, जैसे टोकरी में फल खींचते हैं, वैसे ही वे हर जगह खींचे जाते हैं। या फिर बेचारे अकेले रह जाते हैं! अगर ऐसे लोगों का कोई समूह है, तो माता-पिता के लिए एक कचरा निपटान समिति बनानी होगी। क्योंकि बच्चे बात नहीं सुनते। इसलिए, एक एकीकृत शिक्षा प्रणाली ज़रूरी है। इससे भ्रम कम होता है। फल सही समय पर सही जगह पहुँचते हैं। जिज्ञासा की यह यात्रा सफल होती है। हालांकि, इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि होशियार बच्चे शिक्षक को पीछे छोड़कर हँसते फिरें। क्योंकि शिक्षक के लिए अपार सम्मान और विश्वास कमाना पड़ता है। यह अपने आप नहीं मिलता। और अगर बनाया गया विश्वास सच्चा है, तो उसे बनाए रखने की कोई याद नहीं रहती। अगर शिक्षक को स्वीकार नहीं किया जाता, तो शिक्षक को दिया जाता है। जिज्ञासा निरंतर बनी रहती है। सही समय पर सही कार्रवाई आवश्यक है। उस समझ को विकसित करने की आवश्यकता है।

दिनांक :- 8/ 8/ 8/ 820

सब कुछ ऑनलाइन।

इंटरनेट के आने से हमारी ज़िंदगी में सचमुच जादू आ गया; बस एक क्लिक से सब कुछ मिल जाता है। नतीजा यह हुआ कि इंतज़ार करने का अनुभव—और उस प्रक्रिया में छिपे मज़ा और सब्र सिखाने वाले गुण—बच्चों और बड़ों, दोनों के लिए खत्म हो गए। लोगों को लगने लगा कि तुरंत मिलने वाली ये चीज़ें अब परेशान करने वाली हो रही हैं।

जैसे बहुत ज़्यादा काम नुकसानदायक होता है, वैसे ही ऑनलाइन चीज़ों की वजह से हर तरह की शांति और सुकून को खत्म करने की आदत भी गलत है। मैं ऐसी दुनिया का सपना देखता हूँ जहाँ हर ऑफ़िस पैदल दूरी पर हो। ऑफ़िस का समय दिन में छह घंटे और हफ़्ते में छह दिन का होना चाहिए। आठ घंटे और छह दिन के शेड्यूल में, उन तीन अतिरिक्त घंटों में काम पर ध्यान बनाए रखना मुश्किल होता है, चाहे माहौल तनावपूर्ण हो या सुकून भरा। इसके बजाय, पाँच घंटे का समर्पित काम और उसके बाद एक घंटे का लंच और बातचीत का समय सामाजिक अनुशासन को बढ़ावा देता है। छह घंटे और छह दिन का मॉडल हर किसी को—आम स्टाफ़ से लेकर सीनियर मैनेजमेंट तक—अपने काम को असरदार ढंग से पूरा करने का मौका देता है। इसके अलावा, अगर किसी को अतिरिक्त घंटे काम करने की ज़रूरत हो, तो उन्हें अपने सीनियर की मंज़ूरी से ऐसा करना चाहिए और काम के रजिस्टर में औपचारिक रूप से दर्ज करना चाहिए, जिसमें साफ़ तौर पर बताया गया हो कि काम संगठन के लिए है या आर्थिक फ़ायदे के लिए। अतिरिक्त घंटे काम करने वालों की निगरानी के लिए किसी को रखना खुद काम के माहौल का अपमान है। यह सिद्धांत स्कूलों पर भी लागू होता है; छोटे बच्चों को लंबे समय तक स्कूल में बंद रखना सही नहीं है। सात या आठ घंटे चलने वाले स्कूल बच्चों को एक भयानक सज़ा जैसे लगते हैं। कक्षा 1 से 7 तक की कक्षाएँ हफ़्ते में छह दिन, पाँच घंटे चलनी चाहिए, जबकि कक्षा 8 से 12 तक की कक्षाएँ हफ़्ते में छह दिन, छह घंटे चलनी चाहिए। यही बात कॉलेजों पर भी लागू होती है; इस बात पर विचार करना चाहिए कि शैक्षणिक माहौल के लिए यह कितना नुकसानदायक है जब आर्ट्स, कॉमर्स या साइंस कॉलेजों में शिक्षक और छात्र दोनों की कमी हो। यह बात प्रोफेशनल कोर्स पर भी लागू होती है। ज़िंदगी में बदलाव के कई चरण आते हैं; सवाल यह है कि क्या हमें इस स्वाभाविक क्रम को सिर्फ़ इसलिए बाधित करना चाहिए क्योंकि हम बड़े और बौद्धिक रूप से ज़्यादा परिपक्व हो गए हैं? यह एक गलतफहमी है कि केवल प्रोफेशनल कोर्स में ही प्रैक्टिकल काम होता है, जबकि दूसरों में नहीं। उदाहरण के लिए, सोचिए कि आर्ट्स का छात्र एक साल में अलग-अलग विषयों पर कितनी किताबें लिख सकता है। क्या कॉमर्स विभाग के छात्र सचमुच अपना काम करते हैं? अनुभव हमें सिखाता है कि रोज़ाना सौंपे गए कामों को करने से अक्सर नए विचार आते हैं; इसलिए, काम करने का तरीका बहुत ज़रूरी है। जो लोग सब कुछ—स्टूडेंट्स और स्टाफ़ के बीच बातचीत समेत—ऑनलाइन करना सही समझते हैं, उन्हें ज़रूर ऐसा करना चाहिए। हालाँकि, जो लोग ऐसा नहीं सोचते, उन्हें पैदल (या पब्लिक

ट्रांसपोर्ट से) ऑफ़िस जाना चाहिए और तय काम के घंटों का पालन करना चाहिए; इसमें लगातार एक जैसा तरीका अपनाना ज़रूरी है। यह लेख ऑनलाइन तरीक़े के फ़ायदों को मानता है और साथ ही ऑफ़लाइन काम की अहमियत पर भी ज़ोर देता है। यह उस बेतुकी सोच का समर्थन बिल्कुल नहीं करता जिसमें इंसान न तो पैदल चलता है और न ही गधे पर सवारी करता है, बल्कि आखिर में गधे को ही अपने सिर पर उठा लेता है। समझदार के लिए इशारा ही काफ़ी है।

दिनांक :- 1//

अवधारणा

अवधारणाओं के दो मुख्य प्रकार होते हैं। एक है हमारे समूह की अवधारणा और दूसरी हमारी अपनी अवधारणाएँ। अक्सर हमें यह स्पष्ट नहीं होता कि हमारी अवधारणाएँ वास्तव में क्या हैं। इसमें सही या गलत की बजाय एक यात्रा महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि जो कल गलत था, वह कल सही कैसे हो सकता है? सत्य कैसे बदल सकता है? सत्य की खोज न होने पर भी कई लोग अपनी अवधारणाओं को गढ़ने की प्रक्रिया में लगे रहते हैं। अवधारणाएँ जीवन का मूल आधार होती हैं। ये व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार बदलती रहती हैं। ऐसे में समूह की अवधारणा एक बहुत बड़ी संपत्ति साबित हो सकती है। धनवान होना, कपड़े खरीदना पसंद करना, अच्छी सोच रखना स्वाभाविक है, लेकिन परिस्थितियाँ अलग होती हैं और लोग अलग तरह से व्यवहार करते हैं। महिलाओं के बारे में विचारों को परिपक्व होने में समय लगता है। क्योंकि वे भावुक होती हैं। भले ही आपके विचार सही हों, आप यह सोचते रहते हैं कि अगर आपके साथ कोई और हो तो दूसरे क्या सोचेंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए भी, सही काम करने की यात्रा लंबी होती है। जब एक ही समय में अनेक विचार और भावनाएँ मन में आती हैं, तो उनका मिश्रण भ्रम पैदा करता है। अवधारणाएँ तभी समूह में स्वीकार्य होती हैं जब वे स्पष्ट हों और समग्र भावना सकारात्मक हो। अवधारणाओं का आदान-प्रदान महत्वपूर्ण है। मेरे और समूह के बीच, मैं हमेशा समूह से बेहतर होता हूँ। अवधारणाएँ किस बारे में हो सकती हैं? जीवन के सभी आयामों के बारे में। जब वे हमें पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती हैं, कम से कम, तो दुख के क्षण बहुत कम होते हैं। हम समूह की अवधारणाओं को समझने के लिए बहुत छोटे हैं। अगर हम उन्हें देर से समझते हैं, तो हम सोचते हैं, अब इसका क्या फायदा? हम कितनी दूर आ गए हैं? लेकिन चाहे हम दूर ही क्यों न आ गए हों, मुख्य बात आत्मज्ञान है। बात यहीं खत्म नहीं होती। फिर उस क्षण का दर्द हमें उस क्षण के ज्ञान से दूर धकेल देता है। बच्चों को

छोटी उम्र से ही अवधारणाओं का अध्ययन करना चाहिए। एक ऐसे अध्ययन के रूप में जो पूरी तरह से हानि या लाभ से मुक्त हो। क्योंकि मुझे कौन सी अवधारणा पसंद है और मैं इसे सही क्यों मानता हूँ, यही आत्मज्ञान है। यदि हम अपनी-अपनी अवधारणाओं का अध्ययन करते हुए और अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हुए जीवन जीते हैं, तो हम और दूसरे लोग बहुत खुश रहेंगे।

दिनांक :- 20//

आस्था

जीवन में इस प्रकार का विश्वास उत्पन्न होता है। माता-पिता सर्वोच्च सुरक्षा प्रदान करते हैं, इसलिए सबसे पहले उन्हीं के प्रति विश्वास उत्पन्न होता है। जैसे-जैसे हम जीवन में आगे बढ़ते हैं, यह भावना समग्र रूप से समझ में आती है। एक दिन हम प्रकृति को समझ जाते हैं। उसकी विविधता, उसकी प्रचुरता, उसकी सुंदरता, उसका हमें पूर्ण रूप से देना। जीवन के एक पड़ाव पर, यह केवल अनुभव ही होता है। शुरुआत में, अनचाही बारिश और अनचाही कीचड़ जीवन की समझ को बढ़ाती है। प्रकृति के प्रति कृतज्ञता से मनाए जाने वाले त्यौहार मन को मोह लेते हैं। यदि हममें से प्रत्येक व्यक्ति निरंतर कुछ जिम्मेदारी लेता है, तो एक गहरी जागरूकता उत्पन्न होती है कि प्रकृति का संतुलन कभी भी पूरी तरह से समझा नहीं जा सकता। भीषण गर्मी से जीवन मुरझा जाता है, लेकिन हमें बारिश नहीं दिखती। हमारी आँखें आकाश को देखती रहती हैं और यह अब पर्याप्त नहीं है, हम इसे सहन नहीं कर सकते। प्रकृति की असीम कृपा/रहस्यमयता है। मन द्वारा अनुभव की जाने वाली सभी संवेदनाएँ पर्यावरणीय हैं। हम जड़ता और दिव्यता का अनुभव करते हैं। जीवन में जो विश्वास उत्पन्न होता है, वह विभिन्न अनुभवों और जागरूकता के माध्यम से उत्पन्न होता है। कुछ लोग कह सकते हैं कि हम ऐसा नहीं सोचते। हो सकता है। कुछ लोग इसे महसूस करेंगे। आइए जानें कि हमारी रुचियाँ किस प्रकार की हैं और क्यों।

दिनांक :- // 2004

इसे बिल्कुल भी न चूकें

क्या आपने यह फिल्म देखी है? क्या आपने वह गाना सुना है? क्या आप उनसे मिले हैं? क्या आप उससे मिले हैं? छोटी उम्र में इस तरह दौड़ना बहुत अच्छा और स्फूर्तिदायक होता है। कुछ बच्चे इसलिए दौड़ते हैं क्योंकि उन्हें कहा जाता है, जबकि कुछ इसलिए दौड़ते हैं क्योंकि वे समझते हैं। कुछ बच्चे जो यह समझते हैं, उन्हें दूसरे बच्चे अनदेखा कर देते हैं क्योंकि वे कुछ नहीं समझते। वास्तव में ऐसी बहुत सी चीजें हैं

जिन्हें गलत नहीं करना चाहिए। बच्चों को 25 साल की उम्र तक बहुत कुछ सीखना चाहिए। शिक्षा निरंतर चलती रहती है। जो सीखना चाहते हैं, जो सीखना चाहते हैं, उनके लिए। लेकिन सीखने के बाद हम उसे कहाँ और कैसे लागू करते हैं, यह कितना महत्वपूर्ण है? बहुत से लोग शिक्षा का उपयोग दूसरों का मज़ाक उड़ाने और शरारतें करने के लिए करते हैं। एक बार आदत बन जाए तो वह नहीं छूटती। इसलिए, 25 साल की उम्र तक पढ़ाई करना वास्तव में फायदेमंद है। जो हम छोटी उम्र में जल्दी सीख लेते हैं, वह बाद में याद नहीं रहता। मन में बहुत से प्रलोभन होते हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे गलत नहीं करना चाहिए, लेकिन कभी-कभी परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि सब कुछ गलत करना पड़ता है। मानवीय संबंधों में हिसाब-किताब गलत करना पड़ता है! क्योंकि एक परेशान मन लगातार कुछ न कुछ गलत करता रहता है। एक शांत, स्पष्ट मन हमेशा अच्छे रास्ते दिखाता है। बहुत से लोग दूसरों को गलतियाँ न करने की सलाह देते हैं। लेकिन अक्सर हम खुद यह नहीं समझ पाते कि हमारे लिए क्या अच्छा है। इसलिए चाहे हम उन्हें कितना भी कहें, यह करो, वह करो, कुछ न कुछ हमारे साथ ही चलता रहता है। हमारे सामने वाले लोग हमसे बहुत नाराज़ और परेशान हो जाते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि कुछ लोग इतने भटक जाते हैं कि उनकी बहुत सी चीजें गलत हो जाती हैं। जीवन में ऐसे लोग भी होते हैं जो सिर्फ अपनी गलतियों पर ध्यान देते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं, जबकि हमें एहसास होता है कि हमें गलतियाँ नहीं करनी चाहिए, हमें ऐसे लोग, ऐसे दोस्त मिलते हैं जिन्हें भटकने नहीं देना चाहिए। क्या हम उन्हें गलत रास्ते पर जाने देंगे?

दिनांक :-//

अधल स्थिति

पिछले अनुभव ही यह तय करते हैं कि दुख का कारण क्या होगा। फिर दुख का यह चक्र कम होने के बजाय बढ़ता ही जाता है। बेहतर होता है कि व्यक्ति फिर से प्रयास करे या यह कम हो जाए। और एक दिन उसे एहसास होता है, अरे बाप रे, यह तो कभी खत्म ही नहीं होता। हमारे पिछले कर्मों को इतना महत्व क्यों दिया जाता है? जैसे-जैसे वसंत खिलता है, हमारे मूलभूत गुण सामने आते हैं। एक स्वस्थ, गैर-गुप्त व्यक्ति को गुप्त रूप से बताना एक सजा है। लेकिन क्या ऐसा होगा? इससे कुछ पता चलता है। मुझे लगता है कि दुखी होना भी एक मनोवृत्ति बन जाता है। सुखवाद और अहंकार इसके तर्क या प्रकार हैं। लेकिन जब हमारे पास बहुत कुछ सीखने की प्रबल प्रेरणा होती है, तो हम कम क्यों सीखते हैं? यह प्रश्न लगातार उठता है। इसका कारण यह है

कि हम खुश नहीं हैं, हम अपने ही सवालों के बारे में खुद से बात नहीं करते। एक कहावत है, "अतीत एक विशाल खाई है।" वर्तमान स्थिति में बहुत सी बातें हैं। हम नहीं समझते, हम किसी की नहीं सुनते, या हम गलतियाँ करते हैं। लेकिन कुछ लोगों को चीजें अलग तरीके से करनी पड़ती हैं। बहुत से लोग इसे स्वीकार नहीं करते। इसका कारण समझना कठिन है। इसीलिए कोई आम सहमति नहीं है। हर कोई एक स्थिर पद चाहता है। चाहे वह बेटी हो, पत्नी हो या कोई भी पेशा। रिश्तों में वे अपने अधिकारों को जताने के लिए ऐसा करते हैं, व्यापार में पैसा कमाने के लिए ऐसा करते हैं। यह समझना कितना मुश्किल है कि कौन सही सोचता है। स्थिर पदों के मामले में भी यही बात लागू होती है। जिस दिन हमें कर्म का फल, यानी एक स्थिर पद प्राप्त होता है, हम सबसे अधिक प्रसन्न होते हैं। रामदास स्वामी के प्रश्न का उत्तर यही है। सुख जैसी कोई चीज नहीं होती। कड़ी मेहनत से प्राप्त सुख, सुख की परिभाषा में नहीं आता। हम चाहे कितनी भी कोशिश कर लें, सुख का नाम उस मुकाम तक नहीं पहुंचता। जिस दिन हमारी सच्ची भावनाएं और प्रेरणा जागृत होती हैं, पूरी दुनिया नई लगने लगती है। हमें अनचाहे काम करने पड़ते हैं या दूसरों की राय माननी पड़ती है। लेकिन सच्चाई यह है कि प्रेरणा भीतर से आती है। यह किसी स्थिर पद के लिए नहीं होती। यह बड़ों का आशीर्वाद भी हो सकती है। जीवन में होने वाली सभी गलतियां आत्मज्ञान की कमी के कारण होती हैं। जिस दिन हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है, उस दिन मेरे कई दुश्मन होंगे, लेकिन मुझे दोस्त, प्रेमिकाएँ, शुभचिंतक और यहाँ तक कि वे लोग भी मिलेंगे जिनके कोई दोस्त, प्रेमिका या शुभचिंतक नहीं हैं। यह दृढ़ संकल्प की कहानी है। अपनी इच्छाओं को प्राप्त करने की यात्रा में, यह विश्वास रखना कि आपको वह मिलेगा जो आप चाहते हैं और जो सही है, आपको अनगिनत अप्रत्याशित परिस्थितियों में ले जाएगा।

दिनांक :- 23//

मुश्किल चीज़

अगर कोई मुझसे पूछे, "ज़िंदगी में सबसे मुश्किल काम क्या है?" तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के कहूँगा: अपने सपनों, अपने संकल्पों और अपने वादों के मुताबिक जीना। ये सभी काम मुश्किल हैं। हर नया दिन नए विचार लेकर आता है। जवानी का समय मन, शरीर और आदतों के साथ इस सवाल से जूझते हुए बीतता है कि क्या कोई खास विचार कभी हकीकत बनेगा। बाहर से देखने वालों को अक्सर अफ़सोस होता है —वे सोचते हैं कि क्या हुआ, क्या किया जा रहा है, या सोचते हैं, "मुझे इस तरह जीना

चाहिए था" या "मुझे वह करना चाहिए था।" फिर भी, ऐसी बातें कहने वाले सभी लोग सिर्फ़ तमाशबीन नहीं होते; कुछ लोग सचमुच गहरा दुख महसूस करते हैं, भले ही वे हमारे हालात जानते हों और शारीरिक रूप से हमारे करीब न हों। ज़िंदगी ऐसी है कि हम अक्सर हकीकत को समझ नहीं पाते, या उससे बहुत आगे निकल जाते हैं; उस तेज़ रफ़्तार गाड़ी को वापस पटरी पर लाना और सुरक्षित स्टेशन तक पहुँचाना कोई आसान काम नहीं है। कई सपने देखने वाले अपने सपनों को हकीकत में बदलने में नाकाम रह जाते हैं; सपने को असल चीज़ में बदलने की कोई ट्रेनिंग नहीं होती। दूसरों को ये लोग अक्सर अजीब लगते हैं क्योंकि वे रोज़मर्रा की ज़िंदगी की उलझनों से जूझते रहते हैं। युवाओं को खुद को समझने की ज़रूरत है—अपने मन में आने वाले विचारों पर सोचना, यह परखना कि कौन से विचार सचमुच मुमकिन हैं, यह सोचना कि वे अपने स्तर पर क्या हासिल कर सकते हैं, और मौजूदा माहौल में मौजूद रुकावटों को पहचानना। कई युवाओं के मन में बहुत सारे सपने होते हैं, फिर भी उन्हें पूरा करने का रास्ता—और उससे भी ज़रूरी, अटूट इच्छाशक्ति—अक्सर धुंधला पड़ जाता है। उनके विचार और सोच बेहतरीन हो सकते हैं, लेकिन उन्हें समर्थन या हौसला नहीं मिलता। अक्सर, पूरी ज़िंदगी समर्थन न मिलने के दुख में ही बीत जाती है, और उस एक निराशाजनक सोच के बोझ तले सपने, सोच और विचार धूल में मिल जाते हैं। व्यावहारिक लोग कह सकते हैं कि उनके काम हमेशा भविष्य के नतीजों के आकलन पर आधारित होते हैं; असल में, वे बस अनुभव पर भरोसा कर रहे होते हैं। कई जिंदगियों को देखने के बाद, कोई सही नतीजे निकाल सकता है। लेकिन क्या होता है जब कोई किसी बेहतरीन सोच या ठोस विचार को अपनाता है? सपना या सोच कोई ऐसा अनुभव नहीं है जिसे बस आम तौर पर समझा जा सके। सपना देखने वाले को रिसर्च-ओरिएंटेड सोच विकसित करनी चाहिए; किसी सपने को हकीकत में बदलने के लिए ठोस सबूतों की ज़रूरत होती है, और इंसान को उन सबूतों के आधार पर काम करने में सक्षम होना चाहिए। रिसर्च पर आधारित पहलों को ठंडे बस्ते में डालने से पहले, लोगों की समझ और स्वीकार्यता जानने के लिए ओपिनियन पोल कराए जाने चाहिए, ताकि यह तय किया जा सके कि क्या और कैसे करना है। रिसर्च-ओरिएंटेड सोच वाला व्यक्ति सिर्फ़ खुद को सही साबित करने के लिए रिसर्च नहीं करता; बल्कि, यह उनके अस्तित्व की ज़रूरत होती है—उनका चुना हुआ रास्ता। दूसरों को यह लग सकता है कि किसी अस्पष्ट चीज़ पर घंटों बर्बाद किए जा रहे हैं। फिर भी, अपने सपने के लिए जीना दुनिया का सबसे मुश्किल काम है। इसमें बहुत दर्द और सपने को सच

करने का संघर्ष शामिल होता है। दूसरों को अपना सपना जीते हुए देखना, या उन्हें उस कॉन्सेप्ट को समझकर उसे हकीकत में बदलते हुए देखना—या इसके उलट, सपने को राख होते हुए देखना—एक अनोखा अनुभव होता है। जैसे-जैसे कोई दार्शनिक रास्ते पर आगे बढ़ता है, अगर वह समाज की बेहतरी के लिए बने कॉन्सेप्ट्स को सफलतापूर्वक समझकर उन्हें लागू करता है, तो व्यक्तिगत परेशानी का अहसास धीरे-धीरे कम होने लगता है; अहंकार को खत्म करने का सफ़र शुरू हो जाता है। जब सपने—किसी भी स्तर पर—पूरे नहीं होते, तो ज़िंदगी पूरी तरह से बेमतलब लग सकती है। हालाँकि, इंसान को निराशा के उस काले जाल को हटा देना चाहिए और नई पीढ़ी को ऐसे संदेश देने से बचना चाहिए। इसके बजाय, उसे यह दिखाना चाहिए कि टूटे हुए सपने के साथ कैसे जिया जाए। नतीजतन, समाज के लिए रिसर्च-बेस्ड प्रोग्राम बनाने की कोशिश में बिताए गए घंटों का हिसाब नहीं रहता। आखिरकार, चुनाव या तो बस मंच से हट जाने का होता है या फिर—सही मायनों में—एक ऐसा सामाजिक ढांचा बनाने का होता है जहाँ सपने देखने वाला असल में अपना सपना जी सके। मेरे लिए, यह सबसे मुश्किल काम है।

२४/०२/२६

बच्चों के जन्मदिन

बच्चे का जन्मदिन हर माता-पिता के लिए खुशी का मौका होता है। वह दिन एक तरह से दोबारा जन्म लेने जैसा होता है—सिर्फ बच्चे के लिए ही नहीं, बल्कि माता-पिता के लिए भी; यह उनके ज़रिए अपने बचपन को फिर से जीने का मौका देता है। मज़ेदार बात यह है कि एक तरह से, ये बच्चे हमारी नज़रों में हमेशा छोटे ही रहते हैं; चाहे वे कितने भी बड़े क्यों न हो जाएं, माता-पिता के लिए वे हमेशा उनके छोटे बच्चे ही होते हैं। जन्मदिन अलग-अलग तरीकों से मनाए जाते हैं। अक्सर, बच्चों को खिलौने और किताबें जैसे तोहफ़े मिलते हैं—ये प्यार दिखाने के तरीके हैं। लेकिन, सच तो यह है कि कभी-कभी उन्हें इतने सारे खिलौने मिल जाते हैं कि किसी एक खिलौने की असली कीमत उन्हें समझ नहीं आती। अक्सर 'रिटर्न गिफ्ट' भी दिए जाते हैं, हालांकि कुछ जगहों पर ये रिवाज नहीं होते। कई घरों में जन्मदिन मनाने का कोई रिवाज ही नहीं होता; इसके बजाय, माता-पिता बस *औक्षण* की रस्म (जलते हुए दीये से पारंपरिक आशीर्वाद) निभाते हैं और बच्चे की भलाई के लिए प्रार्थना करते हैं। जहाँ ऐसे रिवाज नहीं माने जाते, वहाँ युवा अक्सर दूसरों की नकल किए बिना बस ज़िंदगी की खुशियों का आनंद लेते हैं—और यह भी सही है। जब आर्थिक योजना प्राथमिकता न हो, तो घर

की महिला का कर्ज़ लेकर त्योहार मनाने की ज़िद करना समझदारी नहीं है। ऐसी स्थितियों में, *औक्षण* करना और बच्चे के भविष्य के लिए भगवान से प्रार्थना करना ही सही रास्ता है। हालाँकि, जब कोई आर्थिक रूप से सुरक्षित हो, तो बच्चे के दोस्तों को घर पर बुलाकर जश्न मनाना माता-पिता और बच्चे दोनों के लिए बहुत सुखद अनुभव होता है। मुझे व्यक्तिगत रूप से लगता है कि जश्न मनाने का एक शानदार तरीका बस साथ मिलकर खाना खाना है, बिना बच्चों के बीच तोहफ़ों—यहाँ तक कि किताबों जैसे छोटे तोहफ़ों—के आदान-प्रदान के। बेशक, माता-पिता को जब भी हो सके तोहफ़े देने चाहिए; ये ऐसे खास तोहफ़े होने चाहिए जिन्हें पाने का बच्चे सपना देखते हैं। मेरे अपने जीवन के सफ़र ने मुझे सिखाया है कि जब हम माता-पिता बनने की राह पर चलते हैं तो हम अक्सर कितने अधूरे होते हैं। मैंने एक बार पढ़ा था कि माता-पिता बनना सिर्फ़ इच्छा या चाहत की बात नहीं है, बल्कि सबसे ऊँचे दर्जे की एक बड़ी ज़िम्मेदारी है। यह एक लगातार बनी रहने वाली भावना है। संयुक्त परिवारों में बच्चे अच्छे बनते हैं या नहीं, इस पर अलग-अलग राय हैं। इसका कारण इस सवाल में छिपा है कि असल में ज़िम्मेदारी कौन लेता है और बच्चे सहारे के लिए किसकी ओर देखते हैं; भले ही ज़िम्मेदारी सब मिलकर उठाएं, बच्चे अक्सर अपनी वजहों से किसी खास व्यक्ति की ओर ज़्यादा खिंचे चले जाते हैं। कभी-कभी, जॉइंट फ़ैमिली में बच्चे काफी अलग-थलग दिख सकते हैं। मेरा मानना है कि अगर जॉइंट फ़ैमिली में ज़िम्मेदारियाँ साफ़ तौर पर तय हों और उन्हें ठीक से निभाया जाए, तो उस परिवार का बच्चा सबसे ज़्यादा सुरक्षित और खुश रहेगा। ऐसे परिवारों में, बच्चे का जन्मदिन सबकी राय लेकर मनाया जाना चाहिए, क्योंकि घर के संसाधन सबके होते हैं; किसी भी तरह के असंतुलन से भावनाएँ आहत हो सकती हैं और दूसरी ज़िम्मेदारियाँ निभाना मुश्किल हो सकता है। बहुत सारे तोहफ़े मिलना प्यार की सच्ची निशानी या बच्चे की खुशी का पैमाना नहीं है। इसके बजाय, बच्चे तब सच में खुश होते हैं जब वे घर पर दोस्तों के साथ दावत का मज़ा लेते हैं, गेम खेलते हैं और बड़ों का आशीर्वाद पाते हैं। ये वो पल होते हैं जिन्हें वे संजोकर रखते हैं और खुशी-खुशी याद करते हैं। प्यार एक मूल्य है, जबकि तोहफ़ा सिर्फ़ एक प्रतीक है; प्यार भौतिक तोहफ़ों से कहीं बढ़कर है। जब क्लासमेट्स, जिन्हें पार्टी में नहीं बुलाया गया था, फिर भी शुभकामनाएँ देते हैं, तो यह प्यार और सद्भावना का सच्चा इज़हार होता है। माता-पिता को जन्मदिन के भव्य जश्न के चलन पर सोचना चाहिए; इसके बजाय, वे उस पैसे का कुछ हिस्सा स्कूल से जुड़े या दूसरे सामाजिक कामों के लिए अलग रख सकते हैं। कई माता-पिता अपनी ज़िंदगी के

किसी न किसी पड़ाव पर समाज सेवा करना चाहते हैं, लेकिन अच्छी सोच होने के बावजूद, अक्सर उनके पास ज़रूरी पैसे नहीं होते। किसी सामाजिक काम के लिए सबकी सोच को एक करना ही सबसे बड़ी पूँजी है; आर्थिक मदद तो अलग बात है। जब ये दोनों चीज़ें साथ मिलकर काम करती हैं, तो सच में अच्छा नतीजा निकलता है। बहुत से लोग कहते हैं कि पैसा या भौतिक संपत्ति ही सब कुछ नहीं है, फिर भी उनके काम अक्सर इस सोच के उलट होते हैं। कोई व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चों की खुशी के लिए गलत रास्ते पर भी जा सकता है। अगर यह चलन नहीं रुका, तो सामाजिक गिरावट का एक अलग रूप देखने को मिल सकता है। अपमान सहना—चाहे वह सच हो या सिर्फ़ महसूस किया गया हो—दर्दनाक होता है, लेकिन मिले सम्मान को संभालना (या उसके बावजूद ज़मीन से जुड़े रहना) कहीं ज़्यादा मुश्किल काम है। उन आलीशान होटलों या बैंक्वेट हॉल का क्या? जहाँ ऐसी जगहें उपलब्ध भी हों, क्या सच में बारह साल से ज़्यादा उम्र के बच्चों के लिए उनका इस्तेमाल किया जाना चाहिए? आख़िरकार, छोटे बच्चे एक जैसे ही होते हैं; उस नाज़ुक उम्र में, वे असल में उस कार्यक्रम का महत्व नहीं समझ पाते। किसी बड़े हॉल या होटल में होने वाले जन्मदिन के जश्न से बच्चा असल में क्या सीखता है—एक ऐसा आयोजन जो पूरी तरह माता-पिता की इच्छाओं पर आधारित होता है? क्या हो अगर युवा लोग अपनी सालगिरह या वैलेंटाइन डे को अलग तरह से मनाएं और अपने माता-पिता या गुरुओं के जन्मदिन या सम्मान समारोहों में उनका सम्मान करें? तब समाज किस दिशा में आगे बढ़ेगा? बचपन में जन्मदिन का जश्न एक अलग बात है, जब यह माता-पिता की खुशी से जुड़ा हो और उस भूमिका के लिए ज़रूरी समझ और क्षमता के साथ मनाया जाए। बच्चों की परवरिश एक सफ़र है। हर जश्न खुशी का ज़रिया होना चाहिए, समाज के भले के लिए होना चाहिए, और उससे व्यक्तिगत विकास और समझ बढ़नी चाहिए। आख़िरकार, क्या बच्चे के संवेदनशील स्वभाव को संवारना भी समाज के भले का ही एक हिस्सा नहीं है? तो, आप खुद तय करें: बच्चों का जन्मदिन कैसे मनाया जाना चाहिए?

२५/०२/२६

सभी प्रकार के भागफल

मेरे पढ़ने में कई प्रकार की भावनात्मक बुद्धिमत्ता, भाषाई बुद्धिमत्ता, सामाजिक बुद्धिमत्ता शामिल थी। मन में सवाल आया कि आखिर इस तरह की खुफियागिरी क्यों की जानी चाहिए थी. क्योंकि मैं ज्ञान के छोटे-छोटे रूप जानता था। परन्तु उसे यह

मालूम नहीं था कि ज्ञान इसी को कहते हैं। इतने प्रकार के ज्ञान के साथ, बुद्धि के प्रकार का विषय मेरे लिए उपयुक्त या आकर्षक नहीं था। क्योंकि मेरा मानना है कि बुद्धिमत्ता एक वरदान है। मैंने अपने प्रकाश, आत्म-पहचान के परिचय भाग 1/2 में उल्लेख किया है कि शिक्षा पूरी तरह से आत्म-ज्ञान, फिर आत्म-ज्ञान का अध्ययन और फिर शिक्षा के बारे में है। मैंने इसे अपने अनुभव से किया। स्कूली जीवन में, सभी बच्चे हर चीज़ को पसंद करते हैं और उसका आनंद लेते हैं, लेकिन जिस उम्र में हम तेज़ गति से काम करते हैं, हमारे जुनून ही हमारे जुनून होते हैं। इसलिए भागफल सिखाकर बुद्धि का मॉडल बनाना बहुत खतरनाक लगता है। मुझे लगता है कि यह भावनात्मक बुद्धिमत्ता के बारे में अधिक है। समाज के सभी पहलुओं में, छोटा समूह बड़े समूह के समर्थन पर रहता है। अगर हम प्यार शब्द का इस्तेमाल करेंगे तो लोग जिम्मेदारी से काम करेंगे। और अगर भावनात्मक बुद्धिमत्ता का उपयोग किया जाए, तो लोगों को पता चल जाएगा कि केवल काम छीनकर रिश्तों को कैसे बचाया जाए। इसलिए गुणवत्ता के साथ-साथ नैतिकता भी बनाए रखना जरूरी है। भावनात्मक बुद्धिमत्ता पर किताबें बच्चों के हाथ में हैं। दरअसल, प्यार और सम्मान की भावनाओं के बारे में बाजार में कोई किताबें नहीं हैं। वे जीवन से उत्पन्न होते हैं। अगर प्यार और सम्मान है तो शब्दों से बाहर न जाना समझ आता है। इसका मतलब मानसिक/वैचारिक गुलामी नहीं है. अपनी बात निर्भीकता से कहना ही एक इंसान के रूप में जीना है। लेकिन राय व्यक्त करके दूसरों की भावनाओं का अनादर करना अलग बात है। मैंने एक आर्टिकल में लिखा है कि जन्मदिन कैसे मनाया जाता है। लेकिन एक माता-पिता के तौर पर मैंने खुद अपने बच्चों के लिए बहुत कुछ किया लेकिन जरूरी नहीं कि उनके जन्मदिन पर उन्हें उपहार ही दूं। क्योंकि वह मामला मेरे अनुभव के दायरे से बाहर था. जो एक बार अनुभव कर लेता है, तुरंत उस बिंदु को समझ लेता है, उसके पास एक अद्वितीय बुद्धि होगी। मुझे कभी-कभी जन्मदिन का उपहार मिला लेकिन माता-पिता से नहीं। यह किसलिए है? अतः बुद्धि के कभी भी अमूर्त रूप नहीं होते। वह बात कमाई हुई है. अंतर यह है कि जितना अधिक हम स्वयं को जानेंगे, ज्ञान अर्जित करेंगे और उसे शुद्ध बुद्धि के साथ समाज के लिए उपयोग करेंगे, शायद हमें अप्रत्याशित प्रेम/लोग मिलेंगे। जो लोग इसे अपने दैनिक जीवन में भी लागू करते हैं, वे शब्दों से बाहर नहीं निकलते। ऐसे समय में अलग-अलग स्थानों पर घूमने वाले व्यक्ति को बुद्धि समझ में नहीं आती है। ऐसे समय में भारी सामाजिक क्षति होने की आशंका है. IQ शब्दों की गिनती जितना ही महत्वपूर्ण है।

२६/०२/२६

किस दिशा में?

जब किसी को थोड़ा ज्ञान मिलता है, तो काम आसान लगता है। जैसे-जैसे कोई आगे बढ़ता है, उसे एहसास होता है कि यह उतना आसान नहीं है जितना लग रहा था; और आगे बढ़ने पर वह कहता है, "हे भगवान, यह तो बहुत मुश्किल है!" जिस पल हमें मुश्किल का एहसास होता है, तब पूरी संभावना होती है कि हमने असल में सही ज्ञान पाना शुरू कर दिया है। इसका मतलब यह नहीं है कि हम बच्चों को डराएं या उनसे कहें, "अरे, यह तो बहुत मुश्किल है।" बल्कि, उन्हें चुनौती की असलियत को समझने की ज़रूरत है; उन्हें उस दिशा में गाइड करना ज़रूरी है। जब किसी को समझ नहीं होती, तो वे क्या सीखें, इसके लिए एक्सपर्ट्स की सलाह लेते हैं; इसमें कुछ भी गलत नहीं है। जब कोई पक्का न हो, तो दूसरों के दिखाए रास्ते पर चलना अक्सर सही तरीका होता है। हालाँकि, जब कोई समझता तो है लेकिन स्थिति को स्वीकार करने से इनकार करता है, तो आगे बढ़ने का रास्ता उसके पीछे के कारणों को खोजने में है। क्या निराशा में जीना सच में कोई विकल्प है? मैंने लोगों को अलग-अलग कामों में लगे देखा है; कुछ लोगों के लिए ज़िंदगी का मतलब बस अलग-अलग चीज़ें आज़माना और तरह-तरह के अनुभव इकट्ठा करना है—चाहे इसके पीछे कोई खास मकसद हो या न हो। फिर भी, जब हालात सामान्य हों, तो क्या हमें कम से कम एक क्षेत्र में महारत हासिल करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए? उदाहरण के लिए, अगर कोई महिला ब्यूटी सर्विस (पार्लर चलाना) का क्षेत्र चुनती है, तो उसके लिए यह सही है कि वह तब तक किसी एक्सपर्ट के अंडर काम करे जब तक वह उस काम में माहिर न हो जाए। अक्सर, लोग उन्हें बेसिक स्किल्स सीखने के बाद अपना बिज़नेस शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। लेकिन यह समझना ज़रूरी है कि यह सिर्फ़ सतही ज्ञान है; असली महारत सालों के प्रैक्टिकल अनुभव से ही आती है। इसलिए, अपना बिज़नेस शुरू करने की जल्दबाज़ी करने के बजाय, कुछ सालों तक एक्सपर्ट्स के अंडर काम करना बेहतर है। यह सच है कि इस दौरान क्लाइंट बेस बनाने में समय लगता है, लेकिन इन सालों में बने कनेक्शन और निस्वार्थ सेवा निश्चित रूप से आजीविका चलाने में मदद करती है। इंसान को इसी आधार पर आत्मविश्वास बनाना चाहिए। यह सिद्धांत सभी बिज़नेस पर लागू होता है। लगातार सीखते रहने का कॉन्सेप्ट एजुकेशनल संस्थानों के लिए एक वरदान है। हालाँकि, बिज़नेस की दुनिया में, मुनाफ़े को लेकर छोटे-मोटे झगड़ों की वजह से एग्रीमेंट भी टूट सकते हैं। यहाँ तक कि जो व्यक्ति

कर्म (कर्तव्य/काम) के कॉन्सेप्ट को समझता है लेकिन अपने परिवार की कद्र नहीं करता, उसके लिए भी *कर्म* और न्याय के सिद्धांत आखिरकार सही रास्ता दिखाएंगे। किसी एग्रीमेंट को तोड़ना, जिसमें कोई शामिल हुआ हो, एक अलग बात है; नए लोगों से मिलना, नई जानकारी हासिल करना और समझ बढ़ाना एक अलग बात है। लेकिन किसी बिज़नेस एग्रीमेंट को खत्म करना बिल्कुल अलग बात है। ऐसा क्यों होता है? अगर प्रभावशाली लोग यह मान लें कि हर किसी के काम का दायरा बढ़ता है—सिर्फ़ उनका अपना नहीं—तो कोई जूनियर बिना सीनियर के साफ़ कहे कि "अब तुम्हें अपना काम खुद देखना चाहिए," खुद से अलग होने का गलत फ़ैसला नहीं करेगा। अक्सर हम बातों को दिमाग़ से तो समझ लेते हैं, लेकिन उन्हें दिल से नहीं अपना पाते। तो फिर इसे कैसे हासिल किया जा सकता है? रोज़मर्रा की ज़िंदगी में खुद को सोच-समझकर अनुशासित करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। आपको एहसास होगा कि ईश्वर, प्रकृति और अच्छे लोग बहुत कुछ देते हैं, फिर भी अक्सर हममें उसे पाने की क्षमता नहीं होती। जब मुश्किल हालात आते हैं, तो हो सकता है हमें मदद न मिले, या—समझ की कमी के कारण—हम गलत फ़ैसले ले लें या गलत व्यवहार करें। इसलिए, हमें किस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए? क्या सच्चाई, सच्ची दिलचस्पी, सही अनुभव और अच्छे प्रोफ़ेशनल व्यवहार पर आधारित रास्ते को अपनाना फ़ायदेमंद नहीं होगा?

२७/०२/२६

मेलोड्रामा और मेलोडी

ऐसा लगता है मानो किसी ने जीवन में सुख-शांति के बीच एक नाटक रच दिया हो। कभी यह सच होता है, कभी झूठ। जीवन जीते हुए कभी कोई हमारा मज़ाक उड़ाता है, कभी कोई हमें समझता है, कभी कोई समझने का दिखावा करता है। इसी तरह नाटक रचा जाता है। तो फिर मधुरता कैसे उत्पन्न होती है? समझ के माध्यम से। और यह साथ रहने से नहीं। जो लोग बहुत साथ रहते हैं, वे अक्सर दूसरे को समझने में असफल रहते हैं। जबकि जो लोग बहुत परिचित नहीं होते, वे आसानी से समझ जाते हैं। यही कारण है। यहीं से नाटक और मधुरता में अंतर आता है। मानवीय संबंधों में प्रेम कहाँ से शुरू होता है? जहाँ पछतावा समाप्त होता है। पछतावे का अर्थ है दूसरे के साथ हिसाब-किताब करना। विचार समाप्त। अगर हमने ऐसा किया, तो ठीक है, इत्यादि। सुंदर नाटक मानवीय मनोवृत्तियों का एक मानसिक चित्र बनाते हैं। लेकिन इस मनोवृत्ति के उत्पन्न होने के बारे में कहीं भी कोई अध्ययन या रिपोर्ट नहीं है। दूसरों को लगातार

हराने की मनोवृत्ति दुख के कारण कैसे उत्पन्न होती है? क्या यह सच में होती है? तो दुख कभी भी निस्वार्थ प्रेम की ओर नहीं ले जाता। मैं पराजित हो जाता हूँ और कभी-कभी दूसरों को कुछ दिखाने के लिए कुछ करता हूँ। यह एक पराजित मानसिकता है। लेकिन वह मानसिकता जो यह खोजती है कि मैंने कहाँ और क्या गलती की, कभी पराजित नहीं होती। क्योंकि कुछ करके जीना उसका एक हिस्सा है और जब हम उससे बाहर निकलने का रास्ता खोजकर आगे बढ़ते हैं, तो हम समझते हैं, अरे! हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं? जब हम जीवन में दूसरों से आगे निकलना चाहते हैं, तो मानव इतिहास में केवल नाटक ही घटित होंगे। लेकिन जब हम अपनी गलतियों को स्वीकार करते हुए और अपने कर्मों के अनुसार जीवन जीते हैं, तो केवल मधुरता ही उत्पन्न होगी। यह अज्ञानता का रवैया नहीं है। यह एक आशीर्वाद है। क्या अगली पीढ़ी मधुरता या नाटक में से किसी एक को चुनेगी? नाटक इसलिए घटित होते हैं क्योंकि अतीत के सबक पूरी तरह से भुलाए नहीं जा सकते। दूसरों को सिखाने के लिए बहुत अधिक निकटता की आवश्यकता होती है। अन्यथा, यह दुखद और अपमानित महसूस कराता है। निकटता और सीखने की तत्परता भी आवश्यक है। मानव समाज में, गपशप जैसी चीजें दूसरों को दिखाने का एक हिस्सा हैं। इससे कुछ खास हासिल नहीं होता। इस तरह की क्रिया अलग है।

२८/०२/२६

एक पल में अजनबी

मानवीय रिश्ते कहने में तो बहुत सरल होते हैं, लेकिन निभाने में बहुत जटिल। एक-दूसरे के लिए कुछ करना नज़दीकी और सुरक्षा की भावना बढ़ाता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते हैं। दुनिया में हर किसी के अपने विचार होते हैं। बचपन में खाने-पीने की अलग-अलग इच्छाएँ होती हैं, जवानी में अलग-अलग दोस्तों के साथ समय बिताने की ज़रूरत होती है, बुढ़ापे में किसी के सहारे/सहयोग की ज़रूरत होती है, किसी ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत होती है जो हमारी बात सुने। संस्कृति में पले-बढ़े बच्चे दोस्ती की सीमाएँ अच्छी तरह समझते हैं। जो बच्चे इसे नहीं समझते या गलत तरीके से व्यवहार करते हैं, वे गलत कर रहे होते हैं। अगर वे अपनी गलती नहीं समझते, तो वे किसी को सज़ा दे रहे होते हैं। जब हम लोगों से दूर होते हैं, लेकिन किसी बात को बहुत ज़रूरी भाव से कहते हैं, तो वह भी अंतरंगता का प्रतीक होता है। सुनना या न सुनना हर व्यक्ति का अपना मामला है। लोग पल भर में अलग-थलग क्यों महसूस करते हैं? कुछ उम्मीदें अधूरी रह जाती हैं। कुछ लोग अपने

विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। दूसरों के लिए यह मुश्किल होता है। क्योंकि कई मिली-जुली, समझ से परे भावनाएँ होती हैं। कभी-कभी कुछ लोग अपनी उम्मीदों को सिर्फ बोलकर ज़ाहिर नहीं करना चाहते। ऐसी कई बातें हैं। हम सोचते हैं कि उस समय फलां व्यक्ति ने कुछ कहा था। बाद में मिलने पर इस बारे में ठीक से बात करेंगे। अगली बार वे भूल जाते हैं। हम कब और कहाँ इसके बारे में सोचते हैं? क्या ऐसा होता है? विचारों की दुनिया अलग है। हालांकि, दो साल का बच्चा भी सम्मानजनक जीवन चाहता है। जब यह नहीं मिलता तो बहुत दुख होता है। कुछ लोग मानते हैं कि अलग-थलग रहकर समझौता किया जा सकता है। बिना किसी अलगाव के स्नेह से अपनी बात कहना कोई भावनात्मक छल नहीं है। हम इन बातों को समझने के लिए बहुत छोटे हैं। जीवन के उतार-चढ़ाव सब कुछ समझा देते हैं। बहुत से लोग सोचते हैं कि उन्होंने कुछ गलत नहीं किया है। लेकिन हमारी प्रेरणाएँ और इच्छाएँ जितनी शुद्ध होती जाती हैं, हमारी गलतियाँ उतनी ही समझ में आने लगती हैं। अक्सर, बहुत छोटे बच्चे बहुत विनम्रता से व्यवहार करते हैं, तब हम सोचते हैं, अरे, क्या समाज में यही सिखाया जाता है? या इन बच्चों को कहाँ और कैसे छींक आई? और क्या वे सचमुच प्रेम संबंध बना पाते हैं जब वे लगातार अलग-अलग लोगों से मिलते रहते हैं? क्या आप जानते हैं कि वे पल भर में अजनबी जैसा महसूस करते हैं... आपके जीवन में किसने ऐसा महसूस किया है? आपने किसके साथ ऐसा व्यवहार किया? किसने आपके साथ ऐसा व्यवहार किया? आपको क्या लगता है उन्होंने ऐसा क्यों किया? ऐसा नहीं होना चाहिए, है ना?

२९/०२/२६

मानसिक गिरावट के कारण

मानसिक गिरावट के कई रूप होते हैं। जो लोग अपने लक्ष्य को स्पष्ट रूप से समझते हैं, यदि वे अपनी मानसिक स्थिति का सही ढंग से ध्यान नहीं रखते, तो वे अपनी मानसिक स्थिति में गिरावट के लिए स्वयं जिम्मेदार होते हैं। जो लोग समझते हैं, उनके लिए अपनी मानसिक स्थिति को समझना ही अपने सपनों को साकार करने का एकमात्र उपाय है। ऐसा नहीं है कि दूसरे लोग नहीं समझते। मेरा मानना है कि छोटे बच्चों की मानसिक स्थिति को बिगाड़ना और फिर बाद में उसे सुधारना समाधान नहीं होना चाहिए। तो क्या असली काम उनके लक्ष्य तक उसी समय पहुंचना नहीं है जब वे उस रास्ते पर चल रहे हों? मैं पिछले 23-25 वर्षों से विभिन्न कारणों से इस विषय के संपर्क में आया हूँ, जबकि मेरी मूल इच्छा यह नहीं थी। मैं मनोविज्ञान को गलती से

सीखना या समझना नहीं चाहता था। आज भी, मैं जो लिखता हूँ वह किताबों से मिली शिक्षा नहीं, बल्कि स्वयं के अनुभव से प्राप्त शिक्षा है। यह आम धारणा कि बच्चे बाधाओं या भरपूर सहायता मिलने पर बहुत अच्छे हो जाते हैं, गलत है। इसलिए सही समय पर खुद को समझना बेहतर है। कई लोग इसके लिए अकेले रहना स्वीकार कर लेते हैं। जबकि कई अकेले लोग अनजाने में इस बात से अनभिज्ञ होते हैं। कुछ लोगों में सामाजिक समझ होती है, यह उनकी रुचि/बुद्धि या उचित प्रशिक्षण का परिणाम हो सकता है। लेकिन जिन बच्चों ने अपने सारे फैसले खुद लिए हैं, उन्हें शिक्षा प्रक्रिया में ज़्यादा बाधाओं का सामना करना पड़ता है। और कुछ ऐसे भी हैं जो रिश्तों को पसंद तो करते हैं, लेकिन उन्हें निभाना या बनाए रखना नहीं जानते। मुझे यकीन है कि मेरे जीवन से जो कुछ भी सीखा है, वह ज़रूरतमंदों के काम आएगा। क्या आप कभी ऐसा कुछ करते हैं जिससे आपकी अपनी मानसिकता को नुकसान पहुंचे? जब आप कोई फैसला लेते हैं, तो अक्सर आपको उसके नतीजों और परिस्थितियों का अंदाज़ा नहीं होता। इसलिए, बच्चों को अपने सपनों को जीने के लिए प्रकृति के अस्तित्व के सिद्धांत का पालन करना चाहिए। क्योंकि यही एक चीज़ है जो सपनों को हकीकत पर विजय पाने की शक्ति देती है। बाकी सब तो बस भ्रम हैं। हमें सावधान रहना चाहिए कि हमारी और दूसरों की मानसिकता खराब न हो।

०१/०३/२६

निरंतर स्वयं

जिस व्यक्ति का ज्ञान बहुत सीमित है, जिसे सुख-दुख का ज्ञान नहीं है, उसके लिए आत्मज्ञान मिठाई के समान है। जिन्हें सुख-दुख का थोड़ा-बहुत अनुभव है, उनके लिए यह अच्छा भोजन है। जो अत्यधिक दुःख का अनुभव करते हैं, उनके लिए यह एक आवश्यक औषधि है। उपचार के बिना रोगी का अंत हो जाता है। यदि यह सारी समझ बचपन में ही आ जाए, तो कम से कम समाज का स्तर उस आयु के अनुरूप तो हो जाएगा। अक्सर बच्चे शारीरिक रूप से तो बढ़ते हैं, लेकिन क्या शरीर में मस्तिष्क भी बढ़ता है? यदि वह भी बढ़ता है, तो उसे बढ़ने क्यों नहीं दिया जाता, क्या यह सोचकर कि उसके अधिकारों का हनन होगा? या फिर सब कुछ देकर भी उसे सही समय पर सही दिशा में आगे क्यों नहीं बढ़ने दिया जाता? इस बात ने मुझे बच्चों के बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया। क्योंकि हर बच्चे की समझ कभी भी पूर्ण नहीं होती। कई बच्चों को तो कई विषय शुरू से ही पसंद नहीं आते। इसलिए मैंने आत्मज्ञान या आत्म-पहचान के विषय को उठाया। जैसे-जैसे बच्चों का समय बीतता है, कुछ गतिविधियाँ

उन्हें अलग-अलग दिशाओं में ले जाती हैं। मैं भली-भांति जानता हूँ कि इससे सामाजिक अराजकता उत्पन्न होगी और यदि आत्मज्ञान या आत्म-पहचान का विषय समाज के सभी वर्गों तक नहीं पहुँचाया गया, तो निश्चित रूप से सामाजिक अराजकता उत्पन्न होगी। कई बच्चे एकांत में क्यों रहते हैं? यह बात वे ही सबसे अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए, आत्मज्ञान का उपयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे समाज स्वयं और दूसरों के लिए बेहतर दिशा में अग्रसर हो सके। थोड़ी सी शिक्षा अहंकार को जन्म देती है, जो हर पल शांति भंग करता है। वातावरण में शांति और सद्भाव महत्वपूर्ण हैं, लेकिन मन की शांति उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। जब विश्व का प्रत्येक बच्चा इसे आत्मसात कर लेगा, तब समाज का स्वरूप बदल जाएगा।

०२/०३/२६

नौकरी छोड़ने के कारण

यह लेख मेरे निजी अनुभव पर आधारित है; इसमें एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाने की बात नहीं है। बल्कि, इसका मकसद यह पक्का करना है कि अगली पीढ़ी अपने करियर की चुनौतियों पर ध्यान दे और काम शुरू करने के बाद अपने प्रोफेशनल सफ़र को अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ने दे। न ही इसका मकसद नेताओं या जानी-मानी हस्तियों की गलतियाँ निकालना है; बल्कि, इसका लक्ष्य युवाओं को निडर होकर अपनी राय रखने और सही सोच के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना है। स्थापित हस्तियों को मुश्किल स्थिति में डालना युवाओं का काम नहीं है। जब मैंने पहली बार काम करना शुरू किया, तब भी मुझे अपने माता-पिता से आर्थिक मदद मिल रही थी; इसलिए, मैं मुख्य रूप से जीविका कमाने के लिए काम करने की बात को पूरी तरह से समझ नहीं पाया था। आठवीं कक्षा से ही मैं काम करने के लिए उत्सुक था—शुरुआत करने के लिए कोई भी काम करने को तैयार था—और मेरे माता-पिता कभी-कभी मुझे काम करने के लिए देते थे। समय के साथ, मैंने रोज़गार के बारे में कुछ खास विचार विकसित किए—ऐसे विचार जो मेरी शिक्षा के साथ-साथ बने और मेरी अपनी परिस्थितियों से प्रभावित थे। मैंने वह हासिल नहीं किया जिसे आम तौर पर "सफलता" माना जाता है, और इसके कई कारण हैं। मैं इस विषय पर क्यों लिख रहा हूँ? क्योंकि युवा अक्सर छोटी-छोटी वजहों से अपनी नौकरी छोड़ देते हैं—जैसे बोरियत, काम पर बार-बार डांट पड़ना, या उम्मीद के मुताबिक वेतन न मिलना। हो सकता है कि मुझे हर छोटी वजह का पता न हो, लेकिन आज मैं कुछ अहम वजहों पर चर्चा करना चाहता हूँ। मैंने कई समस्याएँ देखी हैं: कई जगहों पर कर्मचारी काम की

जगह के कल्चर को समझ नहीं पाते; काम के घंटे बहुत ज़्यादा होते हैं; घर और काम की जगह के बीच का सफ़र लंबा होता है; आगे की पढ़ाई के लिए छुट्टी नहीं मिलती; कुछ खास कोर्स करने के लिए मजबूर किया जाता है; काम के बारे में साफ़-साफ़ नहीं बताया जाता; महिलाओं को बिना वजह देर तक रुकना पड़ता है; पुरुष सहकर्मी बिना किसी ठोस काम की वजह के दूसरों को बुलाते हैं या रोके रखते हैं; डेडलाइन इतनी सख्त होती हैं कि थकान हो जाती है; और जब काम की कमी की ओर इशारा किया जाता है या सुझाव दिए जाते हैं, तो दूसरे सहकर्मी या छात्र यथास्थिति बनाए रखने के लिए दबाव डालते हैं। इसके अलावा, पब्लिक ट्रांसपोर्ट की उपलब्धता और समय, घर और काम की जगह के बीच की दूरी, और अलग-अलग सामाजिक समूहों को मिलने वाली आर्थिक मदद में अंतर जैसी समस्याएँ भी हैं। हालांकि ये सभी बातें अहम हैं, लेकिन कुछ मुद्दे मुझे खास तौर पर चिंताजनक लगते हैं: जैसे कि खास तरह की पढ़ाई की ज़रूरतें थोपना, महिलाओं से लंबे समय तक काम करवाना, काम समझाए बिना ही कर्मचारियों को डांटना, हर व्यक्ति की क्षमता को ध्यान में रखे बिना डेडलाइन तय करना, कर्मचारियों के काम का फ़ॉलो-अप न करना, नए कर्मचारियों को कंपनी के कल्चर से परिचित कराने के लिए कोई सिस्टम न होना, और ट्रांसपोर्ट की टाइमिंग से जुड़ी दिक्कतें। इस संदर्भ में, समाज के सामने दो रास्ते हैं: या तो आपसी तालमेल और गलतियों को माफ़ करने की भावना के साथ ज़िंदगी और नौकरी को आगे बढ़ाया जाए, या फिर दूसरा रास्ता अपनाया जाए। मैं इस बात पर ज़ोर देता हूं क्योंकि जो लोग मिले-जुले एजुकेशन सिस्टम से आते हैं, उनके भविष्य के करियर में काम के अच्छे स्टैंडर्ड बनाने की संभावना ज़्यादा होती है। यह चिंता की बात है कि युवा सिर्फ़ इसलिए नौकरी छोड़ देते हैं क्योंकि उन्हें काम समझ नहीं आता या उनकी सैलरी नहीं बढ़ती। किसी एक संस्था में लगातार योगदान देने से वह संस्था मज़बूत होती है। यह सोचकर ही मुझे उम्मीद बंधती है कि अगर कर्मचारी और संस्थाएं सच में इस बात को समझ लें, तो समाज कितना सुखद हो जाएगा। जो लोग पढ़ाई के साथ-साथ काम भी करते हैं, उन्हें डराना-धमकाना न सिर्फ़ काम की जगह के माहौल को खराब करता है, बल्कि उनकी पढ़ाई के स्टैंडर्ड को भी कम करता है। मैं ऐसे सामाजिक सिस्टम का समर्थन करता हूं जो लोगों को ऐसी स्थितियों में न डाले जहां वे न तो अपनी पढ़ाई पर और न ही अपने काम पर पूरी तरह ध्यान दे पाएं। क्या होगा अगर अगली पीढ़ी यह न समझ पाए कि डर या दबाव किसे महसूस होता है, और यह क्यों या किन हालात में पैदा होता है? क्या यह सही नहीं है कि सिर्फ़ भावनात्मक तनाव में काम करने के बजाय, नौकरी पाने

और बनाए रखने, रचनात्मक कामों में हिस्सा लेने और अच्छी नीयत से काम करने पर ध्यान दिया जाए? हमारा मकसद सिर्फ़ ऐसे डॉक्टर, फ़ार्मासिस्ट और साइकियाट्रिस्ट तैयार करना नहीं होना चाहिए जो बीमार समाज का इलाज करें, बल्कि ऐसे काउंसलर, खेती-बाड़ी के कल्चर को बचाने वाले मैनेजर और रिसर्चर भी तैयार करने चाहिए। अगर समाज का हर वर्ग ज़िम्मेदारी को समझना और निभाना सीख जाए, तो कई चीज़ें आसान हो जाएंगी। खासकर युवाओं को बच्चों और माता-पिता की देखभाल के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों पर सोचना चाहिए। कर्मचारी से नौकरी देने वाले (जॉब क्रिएटर) बनने का सफ़र एक अहम पड़ाव है; आख़िरकार, नौकरी की असलियत को समझे बिना कोई नौकरी देने वाला नहीं बन सकता। कई युवा दूसरों की बातों में आसानी से आ जाते हैं, भले ही उन लोगों के पीछे कोई छिपा हुआ मकसद ही क्यों न हो। काम की जगह पर प्रमोशन के मामले में—जो अक्सर सिर्फ़ पद और सैलरी पर केंद्रित होते हैं—हमें परिपक्वता के सभी पहलुओं पर विचार करना चाहिए: शारीरिक, मानसिक, अनुभव-आधारित, बौद्धिक और सामाजिक। बच्चों में बहुत ज़्यादा ऊर्जा होती है और वे या तो बड़ों से दूरी बना सकते हैं या उन्हें बहुमूल्य सहयोग दे सकते हैं। अधिकार का मतलब सिर्फ़ ज़िम्मेदारी नहीं है; यह समझ और नज़रिए की बात भी है।

०३/०२/२६

एक जगह जिसे प्रकृति कहते हैं

स्वभाव हर पल परिस्थिति के प्रति हमारी प्रतिक्रिया, आदतें और फिर हमारी धारणाएँ हैं। परिस्थिति के प्रति हमारी प्रतिक्रिया जन्मजात गुणों और माता-पिता के सहयोग, सही समय पर सही जगह पर सही चीजों की सराहना और स्वयं तथा दूसरों के बारे में हमारे विचारों से बनती है। अच्छे प्रयासों से स्वभाव में निश्चित रूप से बदलाव आ सकता है। लेकिन लोगों को अपने दायरे में शामिल करना एक बात है और उन्हें अपना दायरा खुद बनाने के लिए प्रेरित करना दूसरी बात। तब तक, यह दूसरों के साथ रहना ही है। क्योंकि ऐसा नहीं है कि आप बचपन में बहुत ही बंद परिवार में पले-बढ़े हों और इसलिए शांत स्वभाव के हों। ऐसा भी नहीं है कि आप बहुत ही खुले परिवार में पले-बढ़े हों और शोरगुल पसंद करते हों। कभी-कभी यह परिस्थिति पर निर्भर करता है। कभी-कभी हमें लगता है कि कोई लगातार हमसे प्रतिस्पर्धा कर रहा है, कभी-कभी हम समझ नहीं पाते कि हम किससे हाथ मिला रहे हैं, कभी-कभी हम किसी से बात नहीं करना चाहते। कभी-कभी हमें लगता है कि हमारा कोई करीबी दोस्त अब हमसे बात नहीं करना चाहता। क्या वह व्यक्ति जो हर पल खुश रहता है और लोगों से

अलग-थलग रहता है, अकेला है? क्या वह व्यक्ति जो किसी से खुलकर कुछ कह देता है, सतही है? क्या वह व्यक्ति जो बहुत अनुशासित है, तानाशाह है? चाहे कितनी भी शिक्षा प्राप्त कर लें, परिस्थितिजन्य सीमाओं के कारण विभिन्न परिस्थितियों में उचित योगदान न दे पाने वाला व्यक्ति क्या असहाय हो जाता है? क्या वह व्यक्ति जो समय बीत जाने के बाद भी सम्मान नहीं चाहता, कड़वा हो जाता है? प्रकृति को समझना और फिर उसे आकार देना एक तपस्या है। प्रकृति को आकार दिया जा सकता है। कुछ लोगों को संगति नहीं मिलती, लेकिन उन्हें एक अत्यंत अनुशासित व्यक्तित्व को करीब से देखने का अवसर मिलता है। अध्ययन, दंड और भाग्य जैसे विभिन्न तरीकों से सोचने की क्षमता, समझ, बुद्धि और अनुभव भी प्रकृति को आकार देते हैं। एक व्यक्ति कहता है कि प्रकृति की औषधि को स्वीकार करना ही प्रकृति की औषधि है। प्रकृति की औषधि स्वयं को जानना और उसे आकार देना है।

०४/०३/२६

तरंग

मन में उठने वाली लहरें चाहे रोचक हों या सत्य का दर्शन, सुख की सभी लहरें सुख की ही होती हैं। जी हाँ, सही कहा ना? ऐसा होता है और यह बढ़ता जाता है; पढ़ाई से आप थक जाएँगे, त्याग से ही आप इसे प्राप्त कर पाएँगे। समर्थ रामदास स्वामी या अन्य लेखकों द्वारा लिखित रचनाएँ केवल समय की बर्बादी नहीं हैं, मन में आने वाली बातों को उड़ेल देना मात्र नहीं है। मैंने प्रतियोगी परीक्षाओं के दौरान कई किताबें पढ़ीं। हर कोई लहरें पैदा कर रहा है। लेकिन जैसे-जैसे हम चिंतन की इस प्रक्रिया में आगे बढ़ते हैं, हमें सत्य की झलक मिलती है। यह मनमोहक है। यह सार्वभौमिक है, यह शाश्वत है। जो शुद्ध लहरें होती हैं, वे रोचक हो सकती हैं। कई धर्मों में, जिनके बारे में मुझे जानकारी है, जैसे सिख धर्म और इस्लाम, जिनका मैंने गहराई से अध्ययन नहीं किया है, लेकिन यदि मैं हिंदू धार्मिक ग्रंथों का थोड़ा सा भी अध्ययन करूँ, तो मुझे केवल सत्य को देखने का एक अथक प्रयास ही दिखाई देता है। मुझे लगता है कि यही धर्म का उद्देश्य है। किसी न किसी रूप में सुख और आनंद प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। धर्म इसे एक दार्शनिक आधार देता है, बस इतना ही। ऐसा लगता है कि बहुत से लोग अपना समय कई तरीकों से व्यतीत करते हैं, लेकिन मेरी निजी राय यह है कि कुछ धार्मिक पुस्तकें और प्रार्थनाएँ हमें बहुत कुछ सिखाती हैं। यह सभी धर्मों के साथ संभव है। यदि छोटे बच्चे सच्चे मन से धार्मिक पुस्तकें पढ़ें, तो वे उन संस्थानों में भी

जाएंगे जिनसे वे परिचित नहीं हैं। हास्य के कई प्रकार होते हैं। स्त्री या पुरुष के शरीर से संबंधित चुटकुले तुरंत लोगों को हंसा देते हैं। साथ ही, ऐसे चुटकुले बड़े होते हैं और लंबे समय तक याद रहते हैं। लेकिन आपको इसके बाद उत्पन्न होने वाली भावनात्मकता और गुणवत्तापूर्ण हास्य से उत्पन्न होने वाली मानसिकता/भावनात्मकता का अनुभव करना चाहिए। हम धर्म और एक-दूसरे की बहुत आलोचना करते हैं, लेकिन क्या हम कभी प्रत्येक धार्मिक शिक्षक या धार्मिक पुस्तकों के साथ सही मायने में जी पाते हैं? इसलिए, हमें अपनी भावनाओं का अध्ययन करना चाहिए। हर कोई दूसरों को देखता है। बिना किसी स्थापित संबंध के दूसरों के मन की भावनाओं का अध्ययन करना एक गलती है।

०५/०३/२६

रास्ता

किसी के बारे में जानकारी रखना एक आदत बन जाती है और फिर स्वभाव में समा जाती है। एक स्त्री को घर के लोगों पर नज़र रखने की आदत होती है। उसे याद रहता है कि घर के फलां-फलां लोग, जैसे भाई, बहन और भाभी, काफी हैं, लेकिन घर के मुखिया की ज़रूरत है। वे कहाँ गए हैं, कब निकलेंगे, कब पहुँचेंगे, क्या भाई और भाभी ठीक हैं, क्या उनके कई बच्चे हैं, क्या उन्हें किसी चीज़ की लत तो नहीं है, क्या वे बैठकर बातें करेंगे, क्या वे समय पर घर आएंगे, क्या वे बच्चों से नाराज़ होंगे? चाहे मन कितना भी काम में लगा रहे, घर के मुखिया को नापसंद करने वाली स्त्री को ढूंढना ही पड़ता है, घर के मुखिया पर इतना भरोसा होता है। गुरु हमेशा अच्छे शिष्यों की तलाश में रहता है। चाहे वह कहीं भी हो, लड़का हो, अच्छा काम करता हो, सुनने के लिए हमेशा मौजूद रहता है। गुरु अपने भक्त की तलाश में रहता है। जिसे काम नहीं मिलता, जिसके पास खाने को नहीं होता, वह इन सब चीजों की तलाश में रहता है। बड़ों द्वारा ईश्वर की अवधारणा सिखाए गए व्यक्ति को चाहे कितना भी समझाया जाए कि वह वास्तविक रूप से ईश्वर नहीं है, वह उस अवधारणा में विश्वास रखता है। जो व्यक्ति मानव धर्म अपनाता है, उसे समाज का सबसे बुरा परिणाम भुगतना पड़ता है। अंत में, कुछ प्रयासरत लोगों को उनके कर्मों का फल मिलता है। जो लोग "हे प्रभु" कहते हैं, वे अंत तक अपने बिस्तर पर बैठे रहते हैं। उन्हें न तो प्रभु से कुछ मिलता है, न ही उनके बिस्तर से। कर्मठ प्रयास सफल होते हैं। ईश्वर से डरने वाले लोग आलसी हो जाते हैं। कुछ लोग अपने अकेलेपन को महसूस करते हैं, जीवन में कोई सहारा नहीं होता, कोई न कोई उनका पीछा करता है। कभी-कभी लोग अपना काम पूरा होने पर

उनका पीछा करते हैं। कभी कोई पैसा चाहता है, कभी बच्चे, कभी मान-सम्मान, कभी धन, कभी कोई बदला। देखिए, मानव जीवन में हर चीज का पीछा किया जाता है। क्या यह आश्चर्य की बात है कि भूखे पेट उपदेश सुनते बच्चे यह नहीं पूछते कि यह घड़ी कब खत्म होगी? यदि सब कुछ पाने वालों के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है, तो फिर क्या गलत है? हम सब अध्ययन करते हैं, हम किस चीज का पीछा कर रहे हैं?

०६/०३/२६

आत्म अनुशासन

सभी बच्चों को बचपन में कुछ नियम और कायदे सिखाए जाते हैं। जब वे घर की चारदीवारी से बाहर निकलते हैं, तो ये नियम और कायदे उनके मार्गदर्शक बन जाते हैं। क्योंकि उन्हें इससे एक तरह की सुरक्षा का एहसास होता है। कुछ बच्चों में बहुत रचनात्मकता और स्वतंत्रता होती है या वे कुछ नया करने की तीव्र इच्छा रखते हैं। जब उन्हें कुछ करने से मना किया जाता है, तो वे पूछते हैं, क्यों? अगर मना किया जाता है, तो ही वे चुपचाप बैठते हैं। अगर नहीं, तो नहीं। ऐसे बच्चे अपना काम गलत तरीके से करने की कोशिश करते हैं। ऐसे बच्चों के लिए आत्म-अनुशासन सीखना बहुत ज़रूरी है। वे घर के नियम और कायदे तो जानते हैं, लेकिन उन्हें यह नहीं पता होता कि उनका पालन क्यों करना है और उनमें आत्म-अनुशासन भी नहीं होता। तो फिर ये बच्चे दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं? ऐसे सवाल उठते हैं। भले ही वे इतने बड़े हो गए हों, फिर भी उन्हें यह या वह समझ नहीं आता, या भले ही वे इतने बड़े हो गए हों, फिर भी वे यह या वह नहीं कर पाते, भले ही वे इतने बड़े हो गए हों, फिर भी उनके पास नौकरी नहीं है, वे समझते नहीं हैं, इत्यादि। क्या हम सोच सकते हैं कि ऐसे बच्चों के प्रश्न और जीवन अलग हो सकते हैं? छोटे बच्चों में व्यवहार संबंधी समस्याएं दूसरों के व्यवहार के साथ-साथ कई अन्य कारणों से भी उत्पन्न होती हैं। ऐसे बच्चों के लिए आत्म-अनुशासन बहुत लाभदायक होता है। क्योंकि जब तक हम दूसरों के लिए आशीर्वाद नहीं बनते, तब तक हम एक समस्या बने रहते हैं। यदि हमारे पास उस रास्ते पर चलने की इच्छाशक्ति है, जिस दिन या जब हमें अपना रास्ता मिल जाता है, तो यह ठीक है, अन्यथा केवल आत्म-अनुशासन ही महत्वपूर्ण हो जाता है। माता-पिता द्वारा निर्धारित नियम और कायदे आपके लिए आशीर्वाद साबित हो सकते हैं। लेकिन इसके अलावा, यदि आपके मन में प्रश्न हैं या कभी भी प्रश्न उठेंगे, तो आपके द्वारा अपनाया गया आत्म-अनुशासन आपके लिए आशीर्वाद साबित होना चाहिए। यह आपको अपने सपनों को पूरा करने में मदद करता है। क्योंकि हर बार जब कोई नया प्रश्न उठता है,

तो आपको क्या करना चाहिए? आपके द्वारा चुने गए मोड़ के साथ-साथ आत्म-अनुशासन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि परिस्थितियाँ अलग हैं, लोग अलग हैं, सवाल अलग हैं, समय अलग है। तो फिर क्या समान है? हम अकेले हैं! इस बारे में सोचिए।

०७/०३/२६

जीवन में सामंजस्य और एकरूपता

जीवन में एक सामंजस्य है। यदि हम नियमों का पालन करें, दिनचर्या का अनुसरण करें, बड़ों की बात सुनें, अपनी जिम्मेदारियों को पहचानें, आदि, तो हम जीवन में निहित सामंजस्य को समझ पाएंगे। एक ऐसा समय होता है जब अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ तेजी से अनुभव होती हैं। बहुत सी बातें हमारे समझने से पहले ही घटित हो जाती हैं। जीवन चाहे कितना भी तेज गति से चले, चाहे वह दिया गया हो या लाया गया हो, जब हम विकर्षणों को हावी नहीं होने देते, तब हम जीवन के सामंजस्य को समझ पाते हैं। बहुत से लोग अनेक प्रकार की चीजें आजमाना चाहते हैं। ऐसे समय में, स्कूली जीवन से ही बच्चों के संघर्षपूर्ण रवैये को दूर करने से उनके जीवन में सामंजस्य बढ़ता है। जीवन एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। इसे समझना और इस समग्र समझ के साथ जीवन जीना एक बहुत बड़ा कदम है। यह धीरे-धीरे समझ में आता है। बहुत से लोग सरल बातों पर ध्यान नहीं देते, क्योंकि मन अनेक विषयों में उलझा रहता है। विद्यार्थियों के जीवन में सामंजस्य बढ़ाने, उनके जीवन को आयाम देने और जीवन की नींव रखने के लिए उन्हें आत्म-जागरूकता विकसित करनी होगी। यह किसी निश्चित विजय की बात नहीं है। इसलिए, हम यह समझते हैं कि जीवनशैली विकसित करने के लिए तपस्या कितनी महत्वपूर्ण है। इसका मालिक वही होता है जो इसे संभालता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति का अच्छा व्यक्तित्व दूसरों को प्रभावित कर सकता है, उसी प्रकार यह ईर्ष्या/घृणा जैसी नकारात्मक भावनाएँ भी उत्पन्न कर सकता है। प्रभावित होने का अर्थ है प्रेरित होना – सकारात्मकता होना। और अनेक अज्ञात नियमों/बंधनों के साथ जीवन जीना दुख/कष्ट का कारण बनता है। जीवन में निरंतरता से ऐसा कुछ भी नहीं होता। हम यह नहीं समझते कि किसी दूसरे को इतनी विपरीत परिस्थितियों में खुश देखकर भी हमें दुख होता है। आइए हम आत्म-जागरूकता विकसित करें और जीवन में निरंतरता बनाए रखें। हम चाहते हैं कि लोग हमारा अनुसरण करें और हमारे सांचे में ढल जाएँ। हालाँकि, हमें लगता है कि ऐसा करने से हमने कुछ भी हासिल नहीं किया है। इसका कारण यह है कि हर किसी का अपना भतीजा होता है, और उसे

समझने के बजाय, अपनी मनमानी करने से जीवन की निरंतरता और उस व्यक्ति का व्यक्तित्व दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। इसके अलावा, जिम्मेदारी भी एक महत्वपूर्ण पहलू है।

०८/०३/२६

पार्टी कार्यकर्ता

मुझे राजनीति या सामाजिक सक्रियता की कोई जानकारी नहीं है, चाहे दूर से हो या पास से; मुझे यह भी नहीं पता कि ये चीज़ें 'पाव' (ब्रेड) के साथ खाई जाती हैं या 'भाकरी' (रोटी) के साथ। सिर्फ़ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर, ये क्षेत्र ऐसे केंद्र लगते हैं जो युवा पीढ़ी को अपना वर्तमान—और नतीजतन अपना भविष्य—आलस या बेपरवाही में बर्बाद करने के लिए बढ़ावा देते हैं। ऐसा क्यों कहा जाता है? मुझे नहीं पता कि दुनिया में टेलीविज़न कब आया, लेकिन मेरे घर में यह शायद 2003 के आसपास आया। तब से, मुझे राजनीति और सामाजिक मामलों की बहुत सीमित समझ मिली, हालाँकि मैं तब भी बहुत कम समझता था। मैं बस अपना काम करता रहा—वह काम जिसे मैंने खुद चुना था। सामाजिक माहौल को देखते हुए, अब मुझे एहसास हुआ है कि समाज सेवा और राजनीतिक काम अलग-अलग चीज़ें हैं। मुझे देश की अलग-अलग राजनीतिक पार्टियों के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी थी। मेरे मन में हमेशा यह सवाल उठता है: क्या एक देश को सच में इतनी सारी पार्टियों की ज़रूरत है? गुलामी या दमन के माहौल से निकला बच्चा—जिसे कुछ नहीं मिला और जो आराम का मतलब भी नहीं जानता—राजनीति और सामाजिक मुद्दों पर बहुत अच्छे से बात करता है। ऐसा क्यों होता है? हालाँकि जानकार लोगों का साथ अहम भूमिका निभाता है, लेकिन पैंतीस साल से ज़्यादा उम्र के किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसा मार्गदर्शन ज़रूरी है। अगर मौका और माहौल मिले, तो तीन साल का बच्चा भी अपनी बात कहने लगेगा—चाहे समाज उसे किसी भी सांचे में ढालने की कोशिश करे। मेरी राय में, समाज में अलग-अलग राजनीतिक पार्टियाँ मुख्य रूप से फूट डालने का काम करती हैं। आख़िरकार, माहौल चाहे कैसा भी हो, कई पार्टियाँ एकता की भावना कैसे पैदा कर सकती हैं? असल में, लोग एक-दूसरे से बहुत अलग होते हैं; ऐसे दो लोग मिलना मुश्किल है जो सच में एक जैसे हों। इंसान का मन हर पल बदलता रहता है। अगर इसके ऊपर हम लोगों को और बँटवारे पर ध्यान देना सिखाएँ, तो बेहतर है कि हम यह सोचें भी नहीं कि समाज किस हद तक गिर सकता है। जब कोई छोटा बच्चा बड़ा होता है, तो वह अक्सर अपने माता-पिता को ही सिखाने-समझाने लगता है। ज़्यादातर माता-

पिता को यह पसंद नहीं आता, क्योंकि उन्हें लगता है कि बच्चे में समझ की कमी है। इसीलिए बड़ों से सलाह लेकर काम करने का रिवाज़ है। कुछ युवा इस बात को समझते हैं, जबकि कुछ नहीं। हो सकता है कि अलग-अलग राजनीतिक पार्टियाँ युवाओं में जोश भरने का काम कर रही हों; हालांकि, यही युवा लोग आगे चलकर सीखेंगे और इन सीखों को असल ज़िंदगी में अपनाएंगे। अगली पीढ़ी की भलाई के लिए, एक ऐसा सिस्टम होना चाहिए जिसमें "रूलिंग पार्टी" (शासन करने वाली पार्टी) और "सजेस्टिंग पार्टी" (सुझाव देने वाली पार्टी) हों—एक ऐसी व्यवस्था जहाँ सामाजिक मुद्दों को समझने वालों को उन्हें सामने रखने और उनके समाधान सुझाने का मौका मिले। प्रैक्टिकल अनुभव से ही पता चलेगा कि क्या अगली पीढ़ी आगे चलकर सामाजिक और राजनीतिक मामलों पर बेवजह चर्चा करना बंद कर देगी या नहीं। अक्सर छोटे बच्चों को बस पार्टी एक्टिविस्ट बनने का मन करता है, और इस भावना में आकर ज़िद में अलग-अलग पार्टियां बनाना गुमराह होने का एक बड़ा उदाहरण है। भविष्य की पीढ़ी के लिए, अभी से ही रूलिंग पार्टी को सभी को भूमिकाएँ सौंपनी चाहिए, एक समूह को "रूलिंग पार्टी" और दूसरे को "सजेस्टिंग पार्टी" के तौर पर तय करना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि समाज के अलग-अलग वर्गों के लोग देश के लिए समर्पित एक्टिविस्ट के तौर पर काम करने के लिए ज़रूर आगे आएंगे।

०९/०३/२६

आने वाला पल

“**आनेवाला पल, जानेवाला है, हो सकते तो इसमे, जिंदगी बितालो, पल ये जानेवाला है**”,

मुझे गीतकार, संगीतकार या गायक का नाम तो नहीं पता, लेकिन यह गाना यह संदेश देता है कि हर पल गुज़र जाता है, इसलिए हमें इसे खुशी-खुशी बिताना चाहिए। बचपन सीखने का समय भी होता है। दार्शनिक लंबे समय से जीवनशैली विकसित करने के महत्व के बारे में बात करते रहे हैं। फिर भी, सब कुछ करने के बाद भी, बच्चे अक्सर बोरियत की शिकायत करते हैं। कुछ नया करने की लगातार इच्छा ज़रूरी लगती है; किताब पढ़ते समय भी इंसान उसमें कुछ नया ढूंढता है। जो मन हमेशा कुछ नया ढूंढता रहता है, वह आखिरकार हर चीज़ से ऊब जाता है। बोरियत मन की एक स्थिति है; यह खुशी पाने के लिए कुछ भी करने की लगातार इच्छा से पैदा होती है। दूसरी ओर, एक रूटीन आपको लगातार खुश रखता है। हर किसी की दिनचर्या व्यस्त नहीं होती, लेकिन अगर कोई बचपन में ही मेहनत करने को तैयार हो, तो शरीर और

दिमाग इसकी आदत डाल लेते हैं। जिस युवती ने बचपन में घर के काम करने की आदत नहीं डाली, उसे बाद में ये काम सीखने में शर्मिंदगी महसूस हो सकती है। इसके विपरीत, अगर वह कम उम्र से ही ये काम करती है, तो ये काम सच्ची दिलचस्पी का ज़रिया बन सकते हैं। यह भावना कि "जो पल आ रहा है, वही पल जा भी रहा है" आत्म-जागरूकता से गहराई से जुड़ी है। कई लोग जीवन के बाद के चरणों में अकेलापन और बोरियत महसूस करते हैं, अक्सर परिवार से जुड़ी वजहों से। एक जैसी बातें दोहराने से नीरसता आ जाती है, जिससे बोरियत होती है। प्यार और आपसी समझ ही वे चीज़ें हैं जो गुज़रते पलों को अच्छी तरह बिताने की ताकत देती हैं। एक आम सोच है कि शनिवार और रविवार को बाहर जाना चाहिए—वीकेंड का मज़ा लेना चाहिए—क्योंकि उस खुशी से अगले हफ़्ते काम करने के लिए ज़रूरी ऊर्जा मिलती है। हालाँकि, इस नज़रिए को अपनाने से ऐसी स्थिति बन सकती है जहाँ सब कुछ अनुभव करने के बाद, इंसान बुढ़ापे में किसी भी चीज़ को बर्दाश्त नहीं कर पाता। इसमें कोई शक नहीं कि जीवन में अनुशासन से मन में थोड़ी कड़वाहट पैदा हो सकती है; चुनौती यह है कि उस कड़वाहट को जड़ जमाने से कैसे रोका जाए। हमें दूसरों के जीवन में अनुशासन लाना पसंद है; इसीलिए हम बच्चों को हमेशा अपनी पढ़ाई पूरी करने की सलाह देते हैं। फिर भी, हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि जो अनुशासन हम खुद पर लागू करते हैं, उससे कड़वाहट और चिड़चिड़ापन पैदा हो सकता है। आखिर यह गुस्सा किस वजह से आता है? हम खुद से पूछते हैं: "मैंने कुछ करने का फ़ैसला किया था लेकिन उसे पूरा नहीं किया"—और फिर हमें खुद पर गुस्सा आता है। हम ऐसी स्थितियों को कैसे संभालते हैं? क्या हम बस सब कुछ छोड़ दें, या काम पूरा करने की पूरी कोशिश करें? कभी-कभी, खुशी से जीने के लिए हमें खास वजहों या बहानों की ज़रूरत होती है, जबकि कभी-कभी हमारी रोज़ की दिनचर्या ही हमें खुश रखती है। दूसरे लोग सोच सकते हैं, "यह कैसे हो सकता है?" लेकिन यह सच है। आखिर, अगर आप इतनी सारी नई और अलग-अलग तरह की गतिविधियों में शामिल होते हैं, तो आप खुश क्यों नहीं होंगे? यह आपके स्वभाव का हिस्सा बन जाता है। आने वाला पल तो गुज़र ही जाएगा। अगर कोई इसे बहस या झगड़े में बिताता है, तो वे पल सचमुच बर्बाद हो जाते हैं; लेकिन अगर कोई खुद को और दूसरों को खुश रखता है, तो उसने सचमुच जीवन जिया है।,"आनेवाला पल.....”

१०/०३/२६

खुशी का सृजन

अगर आप लगातार इच्छा करते रहते हैं, तो मन को उसकी आदत पड़ जाती है। फिर, जब आपको अपनी इच्छा पूरी नहीं होती, तो आप दुखी हो जाते हैं। खुश रहना स्वभाव है। यह बात चाहे कितनी भी सच हो, सभी मनुष्यों की कुछ बुनियादी ज़रूरतें या रुचियां होती हैं। जब वे पूरी होती हैं, तो वे खुश होते हैं। कुछ लोग जीवन में उत्कृष्टता के उच्चतम स्तर तक पहुँच सकते हैं। लालच भरी मानसिकता न तो विशेषज्ञता पैदा करती है और न ही खुशी। खुशी की तलाश में भटकते हुए आप कैसे मुसीबत में पड़ गए? लोग भ्रमित हो जाते हैं और और भी दुखी हो जाते हैं। जीवन में, कुछ लोग चलते हैं, कुछ चोट खाते हैं, कुछ भ्रम पैदा करते हैं, कुछ हार जाते हैं, कुछ आपको हंसाते हैं, कुछ लगातार परेशान रहते हैं, कुछ लगातार कहते रहते हैं, "तुम पीछे रहो, मैं आगे जाता हूँ।" क्या यह सच है कि व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार ही स्वाभाविक होता है? अपनी दिनचर्या, अपने दोस्तों का समूह, सुख-दुख का पालन करने वाला व्यक्ति होना, कुछ पसंदीदा विषयों का लगातार अध्ययन करना, क्या इससे खुशी मिलेगी या नहीं? सभी छोटे बच्चे खूब गंदगी करना पसंद करते हैं। फिर कभी वे गिर जाते हैं, कभी उन्हें खरोंच लग जाती है, कभी बहुत खून बहता है। यह पूछने की कोई ज़रूरत नहीं है कि पड़ोस में कोई डॉक्टर या चाचा हैं या नहीं। माँ बलि का बकरा बने बच्चे को वहाँ ले जाती है। वे दवा देते हैं, पट्टी बाँधते हैं। क्या किसी को ये सब याद रहता है जब वो थोड़ा बड़ा हो जाता है? वो अपार खुशी जो उन्हें एक दिन खेलने का मौका मिलने पर हुई थी, गिरना, खरोंच लगना और दोस्तों का डर के मारे भाग जाना। यादें धुंधली पड़ जाती हैं। जो कुछ भी उनके हाथ लगता है, वो थोड़ा और मजबूत मन बन जाता है। एक ऐसा मन जो छोटी-छोटी चीजों में खुशी ढूंढता है। ऐसा नहीं है कि हम बहुत कुछ पाकर खुश होते हैं। ये तो हमारे पूर्वजों की मेहनत का फल है। है ना? उनके आशीर्वाद और मेहनत से हमें कुछ मिलता है। और जो कुछ हमें बहुत मिलता है, हम उसका आनंद भी लेते हैं। अगर हम जीवन को जटिल बना देते हैं, तो वो जटिल हो जाता है। अगर हम सादा जीवन जीते हैं, तो वो सरल और आसान हो जाता है। हमें लाभ मिलना चाहिए था, हमें फलाँ-फलाँ चीज नहीं मिली, ये चीज सही नहीं थी, आदि। देखिए, हम झगड़ों में समय बिताकर कितना दर्द मोल लेते हैं? झगड़ालू रवैया और संस्कृति बनाने में एक पल भी नहीं लगता। लेकिन सच्चा प्यार और खुशी पाने के लिए क्या चाहिए?

११/०३/२६

सामाजिक संस्थाओं की आवश्यकता

लोग अपना घर तब छोड़ते हैं जब परिवार में खाने वालों की संख्या बढ़ जाती है, निजी ज़रूरतें बढ़ जाती हैं या आपसी झगड़े होने लगते हैं। हालाँकि, जो लोग किसी खास अंदरूनी मकसद से प्रेरित होते हैं, वे सच में कुछ अलग कर दिखाते हैं—और वे ऐसा सिर्फ़ दिखावे के लिए नहीं, बल्कि समाज की भलाई की गहरी इच्छा से करते हैं। घर पर बच्चों को अक्सर डांटा-फटकारा जाता है; हो सकता है किसी बच्चे को इसलिए डांट पड़े क्योंकि किसी दूसरे बच्चे ने कुछ ऐसा कर दिया जो उसने नहीं किया या नहीं कर पाया। कुछ लोग दूसरों के बच्चों की तो बहुत तारीफ़ करते हैं, लेकिन अपने ही बच्चों के लिए मन में गहरी, दबी हुई नाराज़गी रखते हैं। जैसे अपने बच्चे के प्रति नाराज़गी रखना ठीक नहीं है, वैसे ही किसी और के बच्चे के प्रति भी ऐसा सोचना ठीक नहीं है। यह संतुलन बनाना कोई मामूली बात नहीं है; अपने और दूसरों के हितों के बीच तालमेल बनाए रखना बहुत मुश्किल और चुनौतीपूर्ण काम है। किसी एक का पक्ष लेने पर भी परेशानी होती है और पक्ष न लेने पर भी। यह संघर्ष हर जगह देखने को मिलता है, चाहे घर-परिवार हो या सामाजिक संस्थाएँ। समय के साथ, सामाजिक संस्थाओं में काम की रफ़्तार इतनी धीमी हो सकती है कि लोग बस बैठकर बातें करते रह जाते हैं। कुछ लोग सोच सकते हैं, "इसमें क्या बुराई है?" बातचीत करना तो स्वाभाविक है, लेकिन हर समय बस बातें करते रहना और कुछ न करना सही नहीं है। जो लोग सामाजिक संस्थाओं में बैठते हैं—और अक्सर चुप रहते हैं—वे उन शांत, सहनशील लोगों की तरह होते हैं जो बहुत दुख सहते हुए भी दूसरों की भलाई के लिए समर्पित रहते हैं। दूसरे लोग उन्हें मिलने वाले सम्मान और इज़्ज़त को तो देखते हैं, लेकिन उसके पीछे की मेहनत और मुश्किलों को अक्सर न तो देखा जाता है और न ही उनकी सराहना की जाती है। यह सोचना गलत है कि सिर्फ़ महिलाओं को ही सम्मान की चाहत होती है या पुरुषों को सम्मान की ज़रूरत सिर्फ़ समाज में पहचान मिलने से पूरी हो जाती है; सम्मान की चाहत दोनों में बराबर होती है। जिस दिन हम अपने काम को पवित्र मानने लगते हैं, उस दिन कर्तव्य की सच्ची भावना मन में घर कर जाती है; तब हमें उन कामों में बर्बाद हुए समय पर अफ़सोस होता है जो कभी हमारी ज़िम्मेदारी थे ही नहीं। ऐसा हर जगह होता है, चाहे घर-परिवार हो या सामाजिक संस्थाएँ। आख़िरकार, काम करने में मज़ा किसे आता है? बहुत से लोग तो बस इसलिए वहाँ अपना समय बिताते हैं क्योंकि उनके परिवार वालों ने उन्हें भेजा होता है; वे बस इसी भावना से वहाँ जाते हैं। जिस दिन हम अपनी मर्ज़ी से काम पर जाते हैं, उस दिन कम से कम इस बात की संभावना तो होती है कि हम अच्छा काम करेंगे—हालाँकि

सफलता की कोई गारंटी नहीं होती। जब कोई किसी पद पर होता है, तो बहुत से लोग मान लेते हैं कि वह व्यक्ति उनके निजी काम भी करेगा। लोगों की उम्मीदें कितनी ज़्यादा होती हैं! असल में, हम अक्सर काम की असली प्रकृति को नहीं समझ पाते, भले ही हम प्रतिष्ठा या सम्मान की बात को अच्छी तरह समझते हों। जो लोग अपमान या शर्मिंदगी का सामना करते हैं, उनमें से कुछ लोग काम करने के लिए प्रेरित होते हैं, जबकि दूसरे लोग आखिरकार काम को समझने लगते हैं। बहुत से लोगों के लिए, लोगों से मिलने वाली तारीफ़ प्रेरणा नहीं देती, बल्कि जलन पैदा करती है। प्रेरणा जलन से नहीं आती; यह खुशी देती है, जबकि जलन दुख और बेचैनी पैदा करती है। किसी सामाजिक संस्था में काम करना सिर्फ़ मज़े करने के लिए नहीं होता; इसमें ज़िम्मेदारी भी शामिल होती है। उस ज़िम्मेदारी को निभाने में चूक होने से कई लोगों को नुकसान हो सकता है। सामाजिक संस्था सिर्फ़ समय बिताने की जगह नहीं है; कभी भी ऐसी सोच के साथ वहाँ नहीं जाना चाहिए, क्योंकि ऐसी सोच से काम का महत्व कभी नहीं बढ़ेगा। अगर आपको तुरंत कोई बड़ी कामयाबी न मिले तो निराश न हों; कोशिश करते रहें। एक दिन आप सच में कुछ बहुत अच्छा कर दिखाएँगे। कई लोग अलग-अलग कारणों से सामाजिक संस्थाओं के लिए आज़ादी पाने की कोशिश करते हैं, लेकिन सुरक्षा और सम्मान के महत्व को कभी नहीं भूलना चाहिए। एक मज़बूत सामाजिक संस्था की नींव रखना और उसे बनाना पूरी तरह से मुमकिन है। सामाजिक संस्थाएँ सिर्फ़ खाना-पीना देने के लिए नहीं होतीं; वे ऐसी सामाजिक जगहें होती हैं जहाँ कोई व्यक्ति अपना दिन किसी नेक काम के लिए समर्पित कर सकता है। इन जगहों पर बिना वजह अफरा-तफरी या गड़बड़ पैदा करना गलत है। ज़बरदस्ती थोपे गए अनुशासन और खुद से अपनाए गए अनुशासन में बहुत बड़ा फ़र्क होता है, है ना? सामाजिक संस्थाओं और रहने की जगहों के ज़रिए बच्चों में खुद से अनुशासन अपनाने की आदत डालना बहुत ज़रूरी है। सख़्त अनुशासन इंसानी भावनाओं को दबा देता है। ऐसा कोई फूल नहीं होता जो आँखों को अच्छा न लगे; सामाजिक संस्थाओं को ऐसी फ़ैक्टरियाँ नहीं बनना चाहिए जो भावनात्मक रूप से खाली, उथले या मुरझाए हुए लोगों को तैयार करें।

१२/०३/२६

आत्मसम्मान और श्रेष्ठता की भावना

ये मानवीय भावनाएँ हैं। जो लड़के-लड़कियाँ अपने माता-पिता के निर्देशों का पालन करते हैं, साथ ही अपनी पसंदीदा गतिविधियों और विषयों का अध्ययन करते हैं, उनमें

निश्चित रूप से आत्मसम्मान की भावना विकसित होती है। हमारे आस-पास के संसाधन श्रेष्ठता की भावना पैदा करते हैं। एक दिन, आत्मसम्मान कम हो जाता है और श्रेष्ठता की भावना बढ़ जाती है। जब जीवन युद्धक्षेत्र नहीं होता, तो हम उसे युद्धक्षेत्र बना देते हैं। अगर हम इसे समझें, तो जीवन एक रंगमंच जैसा लगता है। हर अभिनेता/अभिनेत्री को आकर अपनी भूमिका निभानी चाहिए। मेरे पास यह कहने का अनुभव नहीं है कि जीवन में श्रेष्ठता की भावना बेहतर है या आत्मसम्मान की भावना। लेकिन आपके पसंदीदा खेल, अध्ययन के विषय, गीत, कलाकार, लेखन आपके भीतर क्या पैदा करेंगे? आत्मसम्मान की भावना। लेकिन आपके दादाजी, आपकी चाची आपके भीतर क्या पैदा करेंगे? अपनेपन की भावना। आप समझते हैं कि आपसे श्रेष्ठ कौन है और क्यों। आत्मसम्मान अहंकार बनाए रखने के बारे में नहीं है। आत्मसम्मान चापलूसी के बारे में नहीं है। तो मैं इसे कैसे प्राप्त करूँ? हम इसे जन्म से ही अपने साथ लिए चलते हैं। यह देखना कि यह कैसे रूपांतरित होता है, यह समझने के लिए है कि जीवन एक रंगमंच है या युद्धक्षेत्र। क्या आपने किसी नाटक की शुरुआत सुनी है? आत्मसम्मान और श्रेष्ठता की भावना कर्मों के माध्यम से उत्पन्न होती है।

१३/०३/२६

प्रथा

समाज में अनेक रीति-रिवाज हैं। कुछ लोग इनके पीछे के कारण जानते हैं। अनेक अन्य लोग बिना समझे ही इनका पालन करते हैं। क्या यह समाज के हित में है? बच्चों को शिक्षा तो मिलती है, लेकिन क्या सामाजिक रीति-रिवाजों को न समझने से उन्हें अच्छा लगता है? अक्सर कहा जाता है कि समाज के अनेक रीति-रिवाज केवल मनोरंजन के लिए होते हैं। आस्था लोगों को जीवन जीने का आधार प्रदान करती है। ऐसे रीति-रिवाज जो लोगों के जीवन में आस्था का संचार नहीं करते, यदि वे उपहास या छल मात्र हैं, तो क्या वे मानव समाज के लिए उचित हैं? सामाजिक संस्थाओं में भी, यदि आप थोड़ा सा भी योगदान देते हैं, तो आपको सम्मान मिलता है। संस्था के लिए धन का उपयोग होता है। इसके विपरीत, 'कमाओ और सीखो' योजना में धन का उपयोग नहीं होता। दूर-दूर से आने वाले शिक्षक या शिविर में आने वाले अतिथि कब लौटेंगे? यही होता है। क्या उन्हें उपहार/सम्मान दिए बिना विदा करना उचित है? यह सत्य होते हुए भी, क्या संस्था के छात्रों के लिए धन का होना आवश्यक नहीं है? क्या कोई संस्था ऐसे रीति-रिवाजों के लिए कोई निधि उपलब्ध कराती है? एक ही व्यक्ति को एक ही स्थान पर कई सम्मान देना/लेना, या सम्मान न दिखाना, साक्षी भाव से देखा जाना चाहिए।

कुछ लोग समाज में इतना काम करते हैं, फिर भी उन्हें कहीं सम्मान नहीं मिलता। बच्चों को घर पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए। सबसे बड़ा सम्मान तो बच्चों द्वारा माता-पिता को दिया गया सम्मान होता है। सामाजिक संस्थाओं में मार्गदर्शन की आवश्यकता है। जिन लोगों को मानदेय तक नहीं मिलता, उन्हें तो अवश्य सम्मानित किया जाना चाहिए। विभिन्न त्यौहार परंपरा का हिस्सा हैं। इन्हें मनाने से एक अच्छा सामाजिक वातावरण बनता है। कामकाजी महिला के लिए दूसरों की मदद के बिना सभी त्यौहार मनाना संभव नहीं है। इसलिए, महिलाएं अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखते हुए यथासंभव काम करने और कम से कम कुछ त्यौहार मनाने का नियम बना सकती हैं। उन रीति-रिवाजों और त्यौहारों का पता लगाएं जो अवांछित हैं। अपने लिए। बिना सोचे-समझे उनकी आलोचना करने या उन्हें अपनाने के बजाय, बेहतर तरीके खोजें। यह समाज के हर वर्ग के लिए बेहतर होगा। जो रीति-रिवाज बनाए गए हैं, वे सुखमय जीवन जीने के लिए हैं। अगर ऐसा नहीं है, तो उन रीति-रिवाजों का क्या फायदा? काम करना किसे पसंद है? काम तो काम है? खाने-पीने के सुख से कौन दूर रह सकता है? रीति-रिवाजों को केवल खाने-पीने का सुख न समझें। उनमें बड़े विचार छिपे होते हैं। इन्हें दूसरों के कारोबार चलाने का तरीका न समझें। सोच-समझकर ही रीति-रिवाजों को अपनाएं।

१४/०३/२६

धन जुटाने का व्यवसाय

क्या हो अगर हम अपने काम के प्रति सच में समर्पित होना सीख जाएं? क्या हो अगर हम अपने पेशे को सिर्फ़ दूसरों की ज़िंदगी आसान बनाने का ज़रिया न मानकर, यह भी सोचें कि इससे हमें व्यक्तिगत रूप से क्या फ़ायदा होता है? जैसे टीवी सीरियल मन को खुशी देते हैं, वैसे ही क्या हो अगर हम लिखित सीरीज़ को दिमाग़ की खुराक मानें —ऐसी चीज़ें जो ज़िंदगी के अलग-अलग नज़रिए देती हैं और पल भर के लिए संतुष्टि का एहसास कराती हैं? बड़े मॉल से ढेर सारे कपड़े खरीदने के साथ-साथ, क्या हो अगर हम साल में कुछ कपड़े स्थानीय दर्ज़ियों से भी सिलवाएं? क्या हो अगर हम सैलून जाने को कुछ खास समय और जगहों तक ही सीमित रखें? क्या हो अगर हम फ़िल्म बनाने के लिए एक पेशेवर कोर्स शुरू करें, यह जानते हुए भी कि कई फ़िल्में बॉक्स ऑफ़िस पर फ़्लॉप हो जाती हैं? क्या ऐसा नहीं लगता कि सिर्फ़ मुनाफ़े के पीछे भागने से कभी-कभी ज़िंदगी का उत्साह कम हो जाता है? क्या यह दुखद नहीं है कि होटलों में खाना बर्बाद होता है, या बिना सही ट्रेनिंग, सफ़ाई या व्यवस्था के सिर्फ़ पैसे

कमाने के लिए जल्दबाज़ी में खाने की जगहें खुल जाती हैं, जबकि घर के सादे और पौष्टिक खाने को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है? कुछ लोग कंजूस के तौर पर जाने जाते हैं, तो कुछ लोग अपने बिज़नेस-माइंडेड रवैये के लिए। एक आशावादी सोच यह है कि "अगर मैं आज अच्छी तरह से जीता हूँ, तो कल भी अच्छी तरह से जी पाऊँगा।" इसके उलट, "कल की कोई गारंटी नहीं है, इसलिए आज ही मज़ा कर लो" वाली सोच भोग-विलास की ओर ले जाती है। फिर एक निराशावादी सोच भी है: "भले ही मैं आज अनुशासित जीवन जीऊँ, कल की कोई गारंटी नहीं है।" समाज में *भिक्षुकी* (भिक्षा/आजीविका मांगना) की अवधारणा स्वीकार्य है। हालाँकि, *भिक्षुकी* और भिखारी होने के बीच फ़र्क है। बिना कोई काम किए उम्मीदें रखना भिखारी वाली सोच है; जबकि कड़ी मेहनत और कोशिश करते हुए उम्मीदें रखना *भिक्षुकी* है। क्या कोई बिना नियमित प्रार्थना किए भगवान तक पहुँचने की ज़िद कर सकता है? क्या यह बेहतर है कि मंदिरों में आने वाला पैसा समाज से छिपा रहे—बिना किसी रिपोर्ट के—और इससे सच्ची आस्था कम हो और गलत मान्यताएँ बढ़ें? क्या शिक्षण संस्थान मंदिरों या शराब के अड्डों से मिलने वाली मदद पर निर्भर हैं? क्या इस बात का डर है कि सामाजिक कार्यक्रम सिर्फ़ पैसे कमाने या भीख मांगने वाले कामों से हटकर सच्ची सलाह और मदद की ओर बढ़ सकते हैं? जो व्यक्ति सचमुच "सब प्राणी सुखी हों" के आदर्श में विश्वास करता है, वह पूरी ईमानदारी से कोई भी आजीविका—यहाँ तक कि भिक्षा माँगने का काम भी—सफलतापूर्वक चला सकता है। क्या आप भी ऐसा मानते हैं? बड़ी मशीनें बेशक उपयोगी होती हैं, लेकिन खाली हाथ, खाली दिमाग और खाली या निराश दिल मुसीबतें पैदा करते हैं। रिसेप्शन डेस्क पर अक्सर सुंदर और अच्छी तरह बात करने वाली महिलाएँ ही होती हैं; ऐसी महिला शायद ही कभी वहाँ मिलती है जो पारंपरिक रूप से सुंदर न हो, लेकिन जिसका व्यवहार और बातचीत का तरीका सुखद हो। क्या हम सचमुच कोई सार्थक काम कर रहे हैं, या बस ऐसे काम कर रहे हैं जिनमें किसी दिमागी मेहनत की ज़रूरत नहीं होती? क्या हम इसे सचमुच "मानव समाज" कह सकते हैं? क्या हमें रिसेप्शन डेस्क पर बैठी महिला के रूप-रंग पर ध्यान देना चाहिए, या उसके व्यवहार पर? जब कोई साँवले रंग की महिला जीवन के बारे में कोई गहरी सच्चाई कहती है, तो मुझे एहसास होता है कि त्वचा के रंग का मुद्दा कितना मामूली है। शायद मानव समाज में एकमात्र "धर्म" जो बना रहना चाहिए, वह है *भिक्षुकी* की भावना—यानी माँगने और देने का विनम्र काम। समाज की कमज़ोर व्यवस्थाएँ अक्सर हमें डरपोक और समझौते वाली ज़िंदगी जीने पर मजबूर कर देती

हैं। आइए सोचें: हमारा पेशा हमारे अपने जीवन और दूसरों के जीवन में कितनी खुशी लाता है?

१५/०३/२६

परिस्थिति और पहचान

चाहे कुछ भी हो जाए, अगर हम अपनी बनाई पहचान को बनाए रखने में नाकाम रहते हैं, तो हम बहुत परेशान हो जाते हैं। हम कई वजहों से उस पहचान को बचाने की हर मुमकिन कोशिश करते हैं; फिर भी, सबसे बड़ी बात हमारे आत्म-सम्मान या खुद के बारे में हमारी सोच को पहुँचने वाली चोट होती है। एक समय था जब मैं कोई खास भूमिका निभाता था या कोई काम करता था, लेकिन हालात बदल गए, और अब मैं वैसा नहीं करता। अगर कोई ज्ञान की लहर के साथ आगे बढ़ सके तो ठीक है, लेकिन अगर कोई ऐसा न कर पाए तो? अगली पीढ़ी लगातार नई चीज़ें खोज और बना रही है। हालाँकि, क्या पिछली पीढ़ी के लिए यह सच में आसान है कि वे एक पल में उस चीज़ को छोड़ दें जिसे उन्होंने बहुत मेहनत से बनाया है? क्या नई चीज़ों की तारीफ़ करना गलत है? क्या उन्हें अपनाना गलत है? अगर टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करके उपन्यास, कहानियाँ या कविताएँ लिखी जाएँ, तो क्या इंसानी वजूद का मतलब ही खत्म हो जाता है? स्वेटर मशीन से बुने जा सकते हैं और जहाँ ज़रूरत हो वहाँ तेज़ी से बाँटे जा सकते हैं; फिर भी, अगर कोई माँ स्वेटर बुनती है, तो क्या कोई उसमें घुले प्यार को नज़रअंदाज़ कर सकता है? भले ही उसने मुश्किलों भरी ज़िंदगी जी हो, लेकिन अपने बच्चे के लिए कुछ करते समय उसे कभी भी मेहनत ज़्यादा नहीं लगती। हो सकता है कि मैंने एक खास पहचान बनाई हो, लेकिन अगर कभी मुझे फ़र्श पर झाड़ू लगाने की नौबत आए, तो क्या इससे मेरे आत्म-सम्मान को चोट पहुँचती है, या यह मुझे याद दिलाता है कि "काम ही पूजा है"? हालात बदल गए हैं; उनका सामना कैसे किया जाए? जब हमारी सोचने की क्षमता कम हो जाती है, तो बेबसी का एहसास होता है। क्या युवाओं का ऐसे हालात पैदा करना सही है? क्या मैं अपनी पहचान बनाए रखने के लिए कुछ भी करता हूँ, या मैं उसूलों पर जीता हूँ जो मैंने खुद तय किए हैं—सच की तलाश करना और उस पर अमल करना? सिर्फ़ पहचान बनाने के लिए कुछ करने और अपना सही फ़र्ज़ निभाने के बीच फ़र्क होता है, है ना? यह एक अटूट सच हो सकता है कि दिमाग को खाने से पोषण मिलता है, लेकिन क्या हमने कभी महसूस किया है कि नेक विचार भी पोषण देते हैं? ज़रा उस स्थिति के बारे में सोचिए जब आपको एक सुंदर बंगले से एक साधारण, मामूली घर में जाना पड़े। हमारे काम और

हमारे आस-पास के लोग ही हमारी पहचान बनाते हैं। जब लोगों को अपनी मनचाही चीज़ मिलती है तो वे खुश होते हैं, लेकिन जो सही है उसे करने का रास्ता समझना एक लंबा और मुश्किल सफ़र है। क्या आप एक बेस्ट-सेलिंग लेखक बनना चाहते थे? क्या आप अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहते थे? क्या इसीलिए आप लिखते हैं? मैंने इस किताब का नाम *सूचले ते* ("जो मन में आया") रखा है क्योंकि इसमें वे बातें शामिल हैं जो स्वाभाविक रूप से सामने आईं—वे विचार जो मेरे मन में आए और उस पल मुझे सही लगे। एक तरह से, यह *कर्मयोग* है—यानी काम के ज़रिए योग। हमें अक्सर लगता है कि हमारे आत्म-सम्मान को चोट पहुँची है; लेकिन, हमें यह पूछना चाहिए: आखिर वह आत्म-सम्मान आया कहाँ से था? अगर वह सच में था, तो उसे इतनी आसानी से कैसे चोट पहुँच सकती थी? अगर किसी को लगातार अपमानित महसूस होता है, तो निश्चित रूप से कुछ तो गड़बड़ है। क्या ऐसी स्थितियाँ पैदा होतीं अगर हर कोई बस अपनी ही गलतियों को देखता? मेरा मानना है कि ऐसा कभी नहीं होता। गलती असल में इस सोच में है कि "मैं सही हूँ" और साथ ही दूसरों में गलतियाँ ढूँढ़ना। अपनी गलती का एहसास होना ही असल में सच्चा आत्म-सम्मान बनाता है। हमें अक्सर लगता है कि दूसरे ही हमारे आत्म-सम्मान को चोट पहुँचा रहे हैं, लेकिन यह सच नहीं है। हालात और लोग अक्सर मिलकर एक झूठी पहचान बना देते हैं।

१६/०३/२६

दृष्टिकोण

मुझे फलां जगह पर अच्छा अनुभव नहीं हुआ। मुझे फलां जगह पर बहुत अच्छा अनुभव हुआ। उनके रीति-रिवाज बहुत अच्छे हैं। वहां का वातावरण खुला है। बाबा, वहां का वातावरण बहुत पथरीला है। जीवन में हम सब कुछ अपनी समझ के अनुसार ही समझते हैं। समझ से ही नजरिया बनता है। हम दुखी हो जाते हैं क्योंकि कई बार हमें कोई बात बताई नहीं जाती या बताने के बाद भी हम नहीं समझते। कई बार हमें अपनी गलतियां माननी पड़ती हैं। ईमानदार लोग कभी नहीं कहेंगे कि मैंने गलती नहीं की। क्योंकि वे जानते हैं कि इस बात से मुझे कभी चैन नहीं मिलेगा। बेईमान लोग मुझे बहुत परेशान करते हैं। बहुत से लोगों को ऐसे अनुभव होते हैं। जीवन ने उन्हें ऐसा जीना सिखाया है। एक व्यक्ति जो बहुत ईमानदारी से जीवन जीता है, एक दिन अपनी ही ईमानदारी से थक जाता है, निराश हो जाता है, अकेलापन महसूस करता है। दूसरे कहते हैं कि उन्हें जीवन जीना ही नहीं आता। क्या ये सभी नजरिए होते हैं? लेकिन सत्य का कोई नजरिया नहीं होता। वह अकेला होता है। जब तक हम उसे नहीं देखते, कई

नजरिए पैदा होना तय है। नजरिया वे परिस्थितिजन्य विचार होते हैं जो हमारे मन में आते हैं। परिस्थिति बदलने पर विचार भी बदल जाते हैं। फिर एक दिन, यदि हम जिज्ञासु हों, तो हमें सत्य का ज्ञान हो जाएगा। हमारी मनोवृत्ति/विचार हमें प्रसन्न/दुखी नहीं करते। सत्य का ज्ञान और दूसरों का व्यवहार ही इसके लिए जिम्मेदार होते हैं। स्वयं को और दूसरों को दोष देना बंद करने पर जो परिणाम होता है, उसका अनुभव करें।

१७/०३/२६

सामर्थ्य

अक्सर ऐसा लगता है कि छोटे बच्चे, महिलाएं, किसान और मज़दूर वर्ग बहुत मुश्किलों का सामना करते हैं। जब मेहनत का समय दुख में बीतता है, तो वह बहुत लंबा लगता है—खासकर तब जब मुश्किलें और बढ़ जाएं। क्या इसका मतलब यह है कि इंसान को कड़ी मेहनत करना छोड़ देना चाहिए? एक और पहलू भी है जिस पर विचार करना चाहिए। अगर किसी के भाई-बहन हों, तो वे अक्सर टोकते हैं: "देखो मैंने यह कैसे किया," या "देखो मैंने कितना कुछ हासिल किया—तुम काफी कुछ नहीं कर रहे हो।" लोगों की अपनी कमियां और खामियां होती हैं। जो इंसान बहुत ज़्यादा शारीरिक मेहनत का आदी है, वह शायद यह न समझ पाए कि दूसरा व्यक्ति शारीरिक थकान महसूस कर सकता है; उनके लिए, वह काम बस एक मुश्किल परीक्षा जैसा लग सकता है। अगर कोई कमी रह जाती है, तो लगातार आलोचना होती है: "क्या तुम्हें अभी तक समझ नहीं आया? क्या तुम समझे नहीं?" बड़े-बुज़ुर्ग अक्सर झुंझलाकर चिल्लाते हैं। हालाँकि, अगर हम मेहनत या दुख के हर पल को सिर्फ़ एक मुश्किल परीक्षा के तौर पर देखें, तो कुछ भी हासिल नहीं होगा। किसान तब मुश्किल का सामना करते हैं जब वे बीज बोते हैं लेकिन बारिश नहीं होती; इसीलिए हर तरह से अनाज बचाना हमारा फ़र्ज़ है। पढ़ाई न करने से समझ की कमी हो जाती है—जो अपने आप में एक संघर्ष है। माँ का दिल तब दुखता है जब वह अपने बच्चों को तकलीफ़ में देखती है। मुश्किलों को वैसे ही लेना चाहिए जैसे हम नमक को लेते हैं—ज़िंदगी का एक ज़रूरी लेकिन सीमित हिस्सा। अक्सर हमें ऐसी चीज़ों का सामना करना पड़ता है जो हमें पसंद नहीं हैं, फिर भी हमें उन चीज़ों को करना चाहिए जिन्हें हम पसंद करते हैं। जब हर कोई हड़बड़ी में भागता है, तो संसाधनों पर दबाव पड़ता है—एक ऐसी बात जिसे हम अक्सर समझ नहीं पाते। हम शिकायत करते रहते हैं कि सरकार लापरवाह है और आम आदमी परेशान है। फिर भी, जो लोग अनुशासित

दिनचर्या का पालन करते हैं, उन्हें शायद ही कभी ऐसी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जो लोग निर्देशों का पालन करते हैं, उन्हें बेवजह तकलीफ़ नहीं उठानी पड़ती। हालाँकि, जो लोग सिर्फ़ अपने विचारों के अनुसार काम करते हैं, उनके लिए मुश्किलों का सामना करने की संभावना बहुत ज़्यादा होती है। एक बार जब आप अपनी असली पहचान जान लें, तो अपना ख्याल रखना शुरू करें। एक किसान तय कर सकता है, "इस साल, मुझे एक निश्चित मात्रा में अनाज पैदा करना है।" ज़रूरी खाद और पानी का इंतज़ाम रखना, पैदावार का अंदाज़ा लगाना, और अपने औज़ार और मदद करने वाले लोगों को तैयार रखना—इन सभी पहलुओं को सही ढंग से संभालने से बेवजह की मुश्किलों और चिंता से बचा जा सकता है। हर साल, कई छात्र आर्ट्स और कॉमर्स स्ट्रीम से ग्रेजुएट होते हैं। अगर वे रिपोर्ट लिखने जैसे हुनर सीख लें, तो वे अलग-अलग सामाजिक संगठनों में असरदार ढंग से काम कर सकते हैं; वे क्रिएटिव राइटिंग—जैसे कविता, उपन्यास या छोटी कहानियाँ—भी कर सकते हैं। इसके लिए बहुत कुछ करने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन अगर काम दिल से किया जाए, तो दूसरे लोग ज़रूर उसकी तारीफ़ करेंगे। बच्चों की परवरिश भी कुछ ऐसी ही है। किसी और के बच्चे की देखभाल वैसे ही करना जैसे वह अपना ही बच्चा हो, एक बड़ी चुनौती है। अगर आप अपने बच्चे को थप्पड़ मारते हैं, तो वह उसे जल्दी ही भूल जाता है। लेकिन अगर किसी और के बच्चे के साथ ऐसा हो, तो दिल को बहुत तकलीफ़ होती है—बशर्ते उसमें सच्चा प्यार हो। अपने बच्चों के साथ भी ऐसी ही भावनाएँ होती हैं, लेकिन उनकी यादें जल्दी धुंधली हो जाती हैं। हालाँकि, दूसरे लोगों के बच्चों के मामले में ज़िम्मेदारी का एक अलग ही एहसास होता है। हम अक्सर बिना जाने ही अपने बच्चों की ज़रूरतों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं, लेकिन किसी और के बच्चे के साथ ऐसा शायद ही कभी होता है। किसी और के बच्चे को एक बेहतरीन इंसान बनाना—बिना उन्हें कोई तकलीफ़ दिए—एक असली चुनौती है। खुशी का विचार और उसका अनुभव उतना ही भारी और बोझिल हो सकता है जितना कि पीठ पर लादा गया खाने का गट्ठर। जो व्यक्ति इसे कभी समझ ही नहीं पाता—जो हमेशा सिर्फ़ मज़ा ढूँढ़ता है, मेहनत से बचता है, दूसरों की मेहनत पर जीता है, और जिसमें ऐसी कोई समझ नहीं है—वह भला मुश्किलों का मतलब कैसे समझ सकता है? इंसानी समाज आपसी निर्भरता पर टिका है। हम उम्मीद करते हैं कि किसान फ़सल उगाएँगे, भैंस और गाय दूध देंगी, और माँएँ खाना बनाएँगी; इसी तरह, हम सफ़ाई कर्मचारियों से साफ़-सफ़ाई की उम्मीद करते हैं (हालाँकि उन्हें भी दिन में दो बार

भरपेट खाना मिलना चाहिए), लेखकों से लिखने की और मनोरंजन उद्योग के काम करने की उम्मीद करते हैं। ज़रा देखिए कि कैसे इस तरह हर कोई ज़िंदगी के अपने अनोखे, और अक्सर मुश्किल भरे सफ़र का अनुभव करने लगता है। कहा जाता है, "ढूँढ़ोगे तो पाओगे।" एक लेखक को पाठक ढूँढ़ने होते हैं, चाय बेचने वाले को ग्राहक... कहीं न कहीं, कोई अच्छा विचार मन में आ सकता है, और उसके बाद का संघर्ष—सिर्फ़ एक मुश्किल इम्तिहान बने रहने के बजाय—एक सुखद सफ़र में बदल सकता है। यह सोच कि "दूसरे मेहनत करें और मैं खुशी से रहूँ" उतनी ही गलत है जितनी यह सोच कि "मैं सारी मेहनत करूँ और दूसरे खुशी से रहें।" जिस दिन हमें अपनी सही लय मिल जाती है, हम बोरियत को पीछे छोड़ देते हैं और ऐसे काम में लग जाते हैं जिसे हम सच में पसंद करते हैं। हर काम सिर्फ़ पैसे के लिए नहीं होता, और न ही हर काम सिर्फ़ सेवा का काम होता है। आख़िरकार, कोई इंसान शारीरिक रूप से कितना काम कर सकता है? रोज़-रोज़ वही काम करते-करते इंसान बोर हो जाता है। ऐसा कहते हुए, हम अक्सर खुद को बिना वजह की मुश्किलों में डाल लेते हैं। बच्चों या पुरुषों से जुड़ी रोज़मर्रा की भागदौड़ के बारे में सोचिए—उनके खाने-पीने की आदतें, उन्हें बहुत ज़्यादा लाड़-प्यार देना, और उसके बाद होने वाली परेशानियाँ। लोग सामाजिक संगठनों में मौकों का इंतज़ार करते-करते थक जाते हैं, फिर भी किसी को पक्का भरोसा नहीं होता कि वे सच में काम करेंगे; परिवारों की चिंता बनी रहती है, और दरवाज़े खटखटाने का कभी न खत्म होने वाला सिलसिला चलता रहता है। क्या इस तरह का संघर्ष सही है, या लोगों के लिए थोड़ी समझदारी दिखाना बेहतर है? क्योंकि कोई यह नहीं समझ पाता कि असल में कहाँ और कैसे बसना है, इसलिए वह अंतहीन रूप से भटकता रहता है। चाहे कोई कुछ भी करे, अगर वह दूसरों का भरोसा नहीं जीत पाता तो संघर्ष जारी रहता है; फिर भी, उन्हें खुश करने की कोशिश में अक्सर काम पर बहुत बुरा असर पड़ता है। ज़रा सोचिए: किन क्षेत्रों में, क्यों, कब, किसकी वजह से, कितने समय तक, और किन खास बातों को लेकर आपने ऐसे संघर्षों का सामना किया है?

१८/०३/२६

कार्यों की प्रतिष्ठा

हर कोई सम्मानजनक ज़िंदगी जीना चाहता है। आइए शिक्षा, अलग-अलग तरह के हुनर और कामों पर बात करते हैं। कोई म्युनिसिपैलिटी में सफ़ाई कर्मचारी की नौकरी पा सकता है—इससे कितनी ज़बरदस्त सुरक्षा की भावना मिलती है। फिर भी, पब्लिक

पार्क और जगहों को देखें तो अक्सर वे उपेक्षित हालत में दिखते हैं। नज़रिए में बदलाव इंसानी ज़िंदगी को सच में बदल सकता है। बड़े होते हुए, मैंने दिमागी और शारीरिक, दोनों तरह के काम किए। इसका मतलब यह नहीं कि मैं बाल मज़दूर था; बल्कि, अपनी माँ की कड़ी मेहनत देखकर मैं कभी-कभी उनकी मदद के लिए हाथ बँटाता था। इससे मैंने प्रैक्टिकल हुनर सीखे: बर्तन धोना, फ़र्श पर पोंछा लगाना, कपड़े तह करना, राशन खरीदना, सब्ज़ियाँ चुनना, फ़्रिज को व्यवस्थित और साफ़ रखना, और अपना मेकअप, पढ़ाई का सामान और कपड़े ठीक-ठाक रखना। मैंने अपनी फ़ॉर्मल पढ़ाई के साथ-साथ ये सब सीखा। हालाँकि मैंने ये हुनर सीख लिए, लेकिन असली चुनौती थी इन्हें लगातार करते रहना। कोई कुछ समय तक तो कड़ी मेहनत कर सकता है, लेकिन जैसे ही उसे पता चलता है कि दूसरों को कितना सम्मान मिलता है, उसे अचानक लगने लगता है कि उसका अपना काम सम्मानजनक नहीं है। फिर भी, काम कभी भी छोटा या अपमानजनक नहीं होता; लोग ही उस सच्चे जुड़ाव की भावना को खो देते हैं। जैसे-जैसे इंसान बड़ा होता है, उसे एहसास होता है कि ज़्यादातर झगड़े काम, रुतबे और लेन-देन वाले रवैये से जुड़े मुद्दों की वजह से होते हैं। बच्चे भी यही तौर-तरीके सीखते हैं। अक्सर, प्यार-मोहब्बत की भावना ही खत्म हो जाती है और उसकी जगह सिर्फ़ लेन-देन वाले रिश्ते रह जाते हैं। इसमें संतुलन बनाना एक नाज़ुक काम है। अगर आप इन लेन-देन वाले पहलुओं को सावधानी से संभालते हुए रिश्तों को भी निभा सकते हैं, तो आपने ज़िंदगी में सच में कुछ अहम हासिल किया है—हालाँकि यहाँ यह खास विषय नहीं है। अपमान की भावना तब पैदा होती है जब लोग अपने सौंपे गए काम ईमानदारी से नहीं करते। म्युनिसिपल काउंसिल और कॉर्पोरेशन में कई कर्मचारी अपने कर्तव्यों की अनदेखी करते हैं। क्या यह सच में स्वीकार्य है? खेलने के लिए पार्क में लाए गए बच्चों से गंदगी के बीच खेलने की उम्मीद कैसे की जा सकती है? घास कटी नहीं होती, मच्छर बहुत होते हैं, और पेड़ लगाने के बाद भी उनकी छँटाई नहीं की जाती। क्या सिर्फ़ दिखावे के लिए अपनी मर्ज़ी से किसी बड़े अधिकारी को पार्टी में बुलाना सही है? बातचीत का दायरा सिर्फ़ खाने पर बुलाने या चाय पिलाने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए; क्या बिना ज़रूरत के—और ज़रूरत से ज़्यादा—तोहफ़े देना सच में सम्मान है? ऐसा व्यवहार असल में व्यक्ति और अधिकारी, दोनों को नैतिक गिरावट की ओर ले जाता है। जो अधिकारी तोहफ़े चाहते हैं, उन्हें वे तोहफ़े उन लोगों से मिल ही जाते हैं जो उन्हें देना चाहते हैं। सिर्फ़ अपने काम की आलोचना से बचने के लिए तोहफ़े देना कितना गलत है! गंदे बर्तनों को ठीक से साफ़

किए बिना बस साबुन घुमाना यह दिखाता है कि बर्तन धोने का सही तरीका नहीं पता है। पोंछा लगे फ़र्श पर पानी के निशान रह जाना सफ़ाई के काम में लापरवाही दिखाता है। जिस बात पर खुद यकीन न हो, उसे जल्दी-जल्दी पब्लिश करना शोहरत की चाहत को दिखाता है। बिना किसी सच्चे यकीन के, बस दिखावे के लिए रंगोली बनाना भी साफ़ दिखता है। ऐसे अनगिनत उदाहरण देखने को मिलते हैं जहाँ काम के प्रति कोई सच्ची लगन नहीं होती और काम को कोई सम्मान नहीं दिया जाता। इससे ज़िम्मेदारियों से जी चुराने की आदत पड़ती है। लोग असल काम पर ध्यान देने के बजाय छोटी-मोटी शिकायतों पर ध्यान देते हैं—जैसे कोई खास स्नैक न मिलना। क्या झगड़े से कुछ हासिल करने में कोई खुशी है जो अच्छे व्यवहार से नहीं मिल सकता था? कुछ लोग कह सकते हैं कि ऐसे तरीकों के बिना कुछ नहीं मिलेगा; फिर भी, यह इंसानियत में भरोसे की कमी को दिखाता है। हम सब बेहतर शहर और गाँव चाहते हैं, लेकिन मुश्किल काम की पहल कौन करेगा? अगर हम बस अपना काम अच्छे से करने पर ध्यान दें, तो लोग, गाँव और शहर सभी ज़्यादा खुश रहेंगे। क्या हमें खुद अपने काम को सम्मान नहीं देना चाहिए? मैंने अपनी असलियत के हिसाब से पढ़ाई की और कुछ प्रोफेशनल काम किए, लेकिन लिखना मेरे लिए ज़िंदगी भर का सफ़र रहा है। मैं कई मामलों में गलतियाँ करता हूँ, और इसलिए मुझे सुरक्षा या समर्थन नहीं मिलता; यह निराशाजनक है। फिर भी, सच तो यह है कि कभी-कभी मेरी ही गलती होती है। अगर हम अपने काम का सम्मान करना सीख जाएँ, तो हमें कभी भी अपने हालात या समय से शिकायत नहीं होगी। बहुत से लोग सिर्फ़ इसलिए नौकरी छोड़ देते हैं क्योंकि वे देखते हैं कि किसी और को वह मौका मिल गया जो उन्हें नहीं मिला था। लोग नौकरी इसलिए छोड़ देते हैं क्योंकि वे काम की जगह के कॉम्पिटिटिव माहौल को समझ नहीं पाते या उन्हें लगता है कि सैलरी कम है। खुद से पूछिए: क्या आप कभी किसी ठोस, खास वजह के बिना नौकरी छोड़ेंगे? आपको लग सकता है कि आपको नौकरी से निकालने की जान-बूझकर कोशिश की जा रही है, लेकिन ऐसा शायद ही कभी होता है —हालाँकि कभी-कभी ऐसा हो सकता है। अगर ऐसा होता है, तो यह बस यह दिखाता है कि इंसानी समाज को अभी विकास के मामले में बहुत आगे जाना है। सिर्फ़ पैसे कमाने या शोहरत पाने के लिए किसी पद पर बने रहने की कोशिश न करें; इन मक़सदों से आगे की सोचें। अपने काम के प्रति लगन आपको बड़ी उपलब्धियाँ हासिल करने के लिए प्रेरित करेगी।

१९/०३/२६

ब्रह्मा की अवधारणा

विभिन्न ग्रंथों में ईश्वर और ब्रह्म की अनेक अवधारणाएँ हैं। ऐसा नहीं है कि जो कुछ भी कहा गया है वह पूरी तरह से गलत है। कहा जाता है कि ब्रह्म सत्य है, संसार असत्य है। इसका वास्तव में क्या अर्थ है? जीवन मायावी है। इसका क्या अर्थ है? जीवन में हम छोटी-बड़ी गलतियाँ करते हैं। कई बार हम उन्हें दूसरों से, और अक्सर स्वयं से भी छिपाते हैं। ब्रह्म की अवधारणा इसे स्वीकार नहीं करती। संसार को मायावी क्यों कहा जाता है? इसलिए, प्रेम ही जीवन का मूल सिद्धांत है। जो दिखाई नहीं देता, पर विद्यमान है। ऐसा करना कभी प्रेम नहीं समझा जाता। प्रेम से बढ़कर कोई मूल्य नहीं है। ईश्वर की अपनी यात्रा में मैंने इस सत्य को अनुभव किया कि प्रकृति में ईश्वर है, मानवता में ईश्वर है, और उत्तरदायित्व में ईश्वर है। लेकिन यह परम शांति में भी विद्यमान है। यदि हम ईश्वर की उपासना को अत्यंत महत्वपूर्ण मानें, और यदि हम इसे तूफ़ान में घास के एक तिनके के जीवित रहने के समान मानें, तो ब्रह्म हमें कभी भी साधारण लोगों को शामिल करके स्वतंत्र रूप से जीना नहीं सिखाता। यह सिद्धांत यह भी नहीं कहता कि व्यक्ति को संसार से दूर रहना चाहिए। यह सिद्धांत यह भी नहीं कहता कि व्यक्ति को सुखों का अनुभव नहीं करना चाहिए। क्या संसार झूठा है? क्या आपका मतलब यह है कि संसार के लोग कपटी, झूठे और छलपूर्ण हैं? नहीं। परिवर्तन हो सकते हैं। रूपांतरण होगा। लेकिन प्रकृति, उसकी शांति और जीवन के कुछ सिद्धांत स्थिर रहेंगे। संसार में सभी प्रकार के विवाद झूठे हैं। जो बातें दिखाई नहीं देतीं, गलतियाँ और ऐसी ही बातें सत्य हो सकती हैं। लेकिन जिन विवादों को याद रखना चाहिए, वे झूठे हैं। ब्रह्म का सिद्धांत कभी गलतियों को संरक्षण नहीं देता। तो क्या संसार में गलतियाँ नहीं होतीं? होती हैं, है ना? जिस दिन सभी लोग उपासना का अर्थ समझेंगे, सभी अपनी गलतियों को देख पाएंगे। संसार के धार्मिक ग्रंथ पाठकों को आकर्षित करते हैं। यदि उन्हें पढ़कर आपको संतुष्टि या ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तो उन्हें न पढ़ें। लेकिन आपको वे पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिए जो आपको शांति और संतुष्टि प्रदान करें। जीवन में संघर्ष है। इसीलिए विवाद होते हैं। यह व्यर्थ नहीं कहा गया है कि "विवाद समाप्त हो जाते हैं", विवाद शब्द दर शब्द बढ़ते हैं। तो क्या यह व्यर्थ कहा गया है कि "शब्दविं संवादु, वदजीविं अनुवादु" (शब्दविं संवादु, वदजीविं अनुवादु)? यदि हम कला और विज्ञान के संदर्भ में सब कुछ त्याग दें, तो पवित्रता की अवधारणा नष्ट हो जाएगी। और यदि हम सब कुछ धर्म से जोड़ दें, तो कर्मवाद की अवधारणा समाप्त हो जाएगी। हम न तो ईश्वर का अनुभव करते हैं और न ही कर्मवाद का। हम स्वयं

कर्मवाद सीखते हैं। देखते हैं यह सत्य है या असत्य? जब हम इन सब बातों को अपने जीवन में उतारेंगे, तब जाकर हमें इन अवधारणाओं की थोड़ी समझ आएगी।

२०/३/२६

यह सिलसिला जारी रहेगा।

मैं 'अतिभार' शब्द सीख रहा था। जो व्यक्ति शांति, सहयोग और सीखने का शौकीन होता है, वह अक्सर दूसरों को हल्के में लेता है। ऐसा व्यक्ति जो दूसरों को हल्के में लेता है, वह कई चीजों को भी हल्के में ले लेता है। आपका क्या विचार है? एक नियमित दिनचर्या आपको व्यस्त रखती है। लेकिन ऐसे समय में आप कुछ भी नया स्वीकार नहीं कर पाते। आपकी योजना में ज्यादा गुंजाइश नहीं होती। कई बार, कई जगहों पर घूमने से आप नए लोगों से मिलते हैं। उनके कौशल पर ध्यान जाता है। लोगों को उनकी आवश्यकतानुसार अलग-अलग जगहों पर नियुक्त किया जाता है। आप जहां भी कहते हैं कि काम हो जाएगा, कभी-कभी आप और दूसरे लोग आपकी वजह से चिढ़ जाते हैं। इसका कारण क्या है? तो कुछ चीजें ऐसी हैं जो आपके लिए काम नहीं करतीं। जिनके बारे में आपको पता भी नहीं होता क्योंकि आप काम में व्यस्त रहते हैं। क्या कभी ऐसा हुआ है? जो व्यक्ति कहता है कि मैं अपने बारे में बहुत सटीक हूं, वह आत्मज्ञान के बहुत उच्च स्तर पर पहुंच चुका है। लेकिन जो व्यक्ति ऐसा महसूस करता रहता है, वह अधूरा है। क्योंकि दूसरों के बारे में हमारी गलतफहमियां हमारे खुद के बारे में गलतफहमियों के कारण अधिक होती हैं। जब हम खुद को जान लेते हैं, तो हम खुद के साथ थोड़ा बेहतर व्यवहार करते हैं। हम दूसरों के साथ भी बेहतर व्यवहार करते हैं। हम दूसरों की अपेक्षाओं को पूरा करने में थोड़ा-बहुत प्रयास करते हैं। जब हम सोचते हैं कि सब कुछ ठीक चलेगा, तो हम यह नहीं समझ पाते कि क्या ठीक नहीं चल रहा है। हमें पता ही नहीं चलता कि क्या हो रहा है। हमें समझ नहीं आता कि ऐसा क्यों हो रहा है। दूसरों के बारे में ज़रूरत से ज़्यादा सोचना उतना ही खतरनाक है जितना खुद के बारे में ज़रूरत से ज़्यादा सोचना। क्या यह रुकना नहीं चाहिए? बिल्कुल रुकना चाहिए। अगर आप खुद को और दूसरों को समझते हैं, तो बड़ी-बड़ी बातें होती हैं। बचपन से ऐसे माहौल में पले-बढ़े लड़के-लड़कियां न सिर्फ अपने रिश्तों में, बल्कि सही समय पर समाज में भी अच्छा योगदान दे सकते हैं। आत्ममुग्ध होना स्वभाव नहीं, बल्कि संवेदनशीलता का एक स्तर है। कुछ लोग कह सकते हैं कि उस संवेदनशीलता का क्या फायदा जो दूसरों के काम न आए? इसलिए, संवेदनशील लोग अलग-अलग कारणों से अलग-अलग स्तरों पर काम कर सकते हैं, यही समझ है। जब

हम कहते हैं कि सब कुछ ठीक चलेगा, तो अगर ऐसा न हो तो बहुत दुख होता है। यह बात कुछ चीज़ों पर भी लागू होती है। और जब हम बहुतों के साथ रहते हैं, तो हम खुद को जान पाते हैं। हमें उन सभी के लिए आभारी होना चाहिए। चलिए सोचते हैं, क्या अच्छा होगा...

२१/०३/२६

समय कैसे व्यतीत करें?

कुछ लोग ज़िंदगी को बस समय बिताने का ज़रिया मानते हैं; दूसरों की बात सुनने में उन्हें परेशानी होती है, इसलिए वे अक्सर उनसे बचते हैं या दूर भागते हैं। लगातार मुश्किलों का सामना करते हुए, कोई व्यक्ति व्यस्त रहने के लिए नई-नई चीज़ें सीख सकता है या फिर कड़वाहट से भर सकता है; ऐसे पलों में, लोग अक्सर सोचते हैं कि अपना समय सबसे अच्छे तरीके से कैसे बिताया जाए। माता-पिता औपचारिक स्कूली शिक्षा या पारंपरिक जीवनशैली के ज़रिए इसके जवाब खोजने की कोशिश करते हैं। कई लोग रिटायर होने के बाद कुछ खास काम करने का संकल्प लेते हैं—और कुछ सच में करते भी हैं—फिर भी शिकायत यही रहती है कि समय कटता ही नहीं। इसकी असली वजह बोरियत की आदत—और आखिरकार बोरियत वाली सोच—है। अगर आप इस पर गौर करें, तो पाएंगे कि भले ही कई काम किए गए और आज़माए गए, लेकिन अक्सर उन्हें बीच में ही छोड़ दिया गया, और फिर वही पुरानी बात दोहराई गई: "मैं बोर हो गया।" इसका अक्सर जो उपाय निकाला जाता है, वह है ज़रूरत से ज़्यादा शॉपिंग करना—चाहे चीज़ों की ज़रूरत हो या न हो। यही बात लोगों से मेल-जोल पर भी लागू होती है; कुछ लोगों को दूसरों में कोई खास दिलचस्पी नहीं होती, लेकिन वे बस समय बिताने के लिए दूसरों का साथ चाहते हैं, और अक्सर घर लौटने से पहले बेकार की बातें करते रहते हैं। फिर, इंसान सोचता रह जाता है कि असल में समय कैसे बीता। कुछ लोग तो इसे बस एक उबाऊ काम मानकर छोड़ देते हैं। मुझे यकीन है कि जो लोग शुरू में मेरी किताबें बड़े उत्साह से पढ़ते हैं, वे शायद बाद में पढ़ना छोड़ दें—चाहे वे फ़ीडबैक दें या न दें—क्योंकि धीरे-धीरे बोरियत हावी हो जाती है, और साथ में यह सोच भी आती है कि "यह सब तो मुझे पहले से ही पता है।" आपको यह जानकर हैरानी हो सकती है कि सिर्फ़ पढ़ने की आदत ही हमारे कई नज़रियों और झुकावों को बदल सकती है। अक्सर, इंसान एक ही लेखक की कई किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित होता है। एक बार पढ़ने की आदत पड़ जाए, तो समय बिताने का सवाल शायद ही कभी उठता है। लोगों को सच में समझने के लिए गहरे अनुभव की ज़रूरत होती है—

इतना गहरा अनुभव जो कुछ पलों में नहीं मिल सकता। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं अच्छा हूँ और दूसरे बुरे, लेकिन हम इंसानी व्यवहार पर तो गौर करते ही हैं, है ना? अक्सर गैर-ज़िम्मेदाराना रवैया या खुद को बहुत बड़ा समझने की भावना ही इंसान से यह क्षमता छीन लेती है। इसीलिए रोज़ाना का रूटीन और एक ही जगह पर टिके रहना ज़रूरी है—ताकि "समय कैसे बिताएँ" वाला सवाल कभी उठे ही नहीं। हमारा भी एक रूटीन है, लेकिन उसमें शनिवार और रविवार भी शामिल हैं। हर वीकेंड बाहर जाने से हमें असल में क्या हासिल होता है? यह नियम शायद युवाओं के लिए सही हो—आखिरकार, यह उम्र मौज-मस्ती की ही तो होती है। लेकिन जब हम उस दौर से आगे निकल जाते हैं, तो रोज़मर्रा की दिनचर्या और अपनी एक तय जगह अहम हो जाती है, है ना? और इसका मकसद क्या है? अपनी निजी जगह बनाए रखना? लोगों का दायरा बनाना? अपनी अहमियत साबित करना? नहीं, यह तो कुछ और ही है; यह शांति से सोचने-विचारने की एक सुरक्षित जगह बन जाती है। यहाँ बाहरी चीज़ें लुभाती नहीं हैं, बोरियत नहीं होती, समय कैसे बिताएँ—यह सवाल नहीं उठता, और न ही दूसरों के साथ तालमेल बिठाने की उलझनों से जूझना पड़ता है। इस स्थिति में, कुछ नया रचने की संभावना होती है—हालांकि इसकी कोई गारंटी नहीं है। जब हमारे सामने "समय कैसे बिताएँ" का सवाल आता है, तो अक्सर इसका मतलब यह होता है कि हमें लगता है कि हमने सब कुछ सीख और समझ लिया है; ज़िंदगी में बोरियत छा जाती है, एक ही चीज़ को बार-बार दोहराना बर्दाश्त नहीं होता, और मन में यह सवाल ज़ोर पकड़ने लगता है कि "इस सबका क्या मतलब है?" फिर भी, अगर हम उतनी ही आसानी से जीने की कोशिश करें जितनी आसानी से हम साँस लेते हैं—यानी ज़िंदगी को कुदरती तौर पर बहने दें—तो "समय कैसे बिताएँ" वाली सोच धीरे-धीरे खत्म होने लगती है। और जैसे-जैसे यह सोच कम होती है, जवाब खुद-ब-खुद मिलने लगते हैं।

२२/०३/२६

इतने दिनों

जब हालात बेहद मुश्किल होते हैं, तो आपके करीबी लोग इतना ही कहते हैं, इतना लंबा खींचते हैं। कई बच्चे इसे समझ जाते हैं। कई बच्चे बार-बार समझाने पर भी नहीं समझते। इसका समाधान न तो चुप रहना है और न ही बहुत कुछ कहना। कोई व्यक्ति देखने में बहुत घमंडी और अभिमानी लग सकता है, लेकिन असल में वह ऐसा नहीं होता। किसी व्यक्ति को इतना लंबा खींचने वाली बात महत्वपूर्ण है। ज्ञान के क्षेत्र में कड़ी प्रतिस्पर्धा यह दिखाती है कि विद्वानों में संवेदनशीलता नहीं होती। देना,

सहानुभूति, उपेक्षा जैसी बातें भी होती हैं। हर माता-पिता को अपने बच्चों को जीवन में ये बातें जरूर सिखानी चाहिए। नहीं, कुछ सिखाना ठीक है, लेकिन ये बातें इंसान को बहुत कुछ सिखाती हैं। माता-पिता का प्यार, सुरक्षा, दूसरों के लिए सम्मान, नियम और भी बहुत कुछ। छोटे बच्चों को परेशान करना एक बात है और उन्हें जीवन का मार्ग सिखाना दूसरी बात। कुछ लोग इसे सांसारिकता कहते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। सभी रीति-रिवाज जीवन नहीं बदलते। कुछ बदलते हैं। समझदार और जानकार लोग इन रीति-रिवाजों को समझते हैं। वे इन्हें अपनाते हैं।

२३/०३/२६

एक मज़ेदार कहानी

जीवन में हम चाहे कितना भी आगे बढ़ जाएं, कुछ लोगों में शर्मिंदगी महसूस करने की आदत पड़ जाती है। बाद में धीरे-धीरे यह एक रवैया बन जाता है, यह एक और पहलू है। करीबी रिश्ते कितने संवेदनशील होते हैं, यह हम तभी समझ पाते हैं जब हम किसी से प्यार करते हैं। ऐसा प्यार कैसा हो सकता है जो हमें कमजोर और असुरक्षित बना दे? इसलिए, करीबी रिश्तों में कभी भी मजाक नहीं करना चाहिए। जिस बात का अर्थ ही हमें समझ न आए, उसमें अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करने का क्या फायदा? दूसरी बात यह है कि किसी को भावनात्मक रूप से कमजोर बनाकर हम किस तरह की तरक्की करते हैं? या क्या हम किसी दूसरे को नीचा दिखाते हैं? जब हम सार्वभौमिक शक्ति में विश्वास करते हैं, तो हमें एहसास होता है कि जीवन में प्रयास महत्वपूर्ण हैं, और अच्छाई भी महत्वपूर्ण है। कहावत है कि एक छड़ी पर दूसरी छड़ी रखी जाती है। बराबरी, पुरस्कार, दंड और अंतर के साथ-साथ, मुझे लगता है कि जीवन के लिए नियम और प्रार्थनाएं भी हैं। हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति कितनी दूर तक पहुंचा है, या कहां तक गया है। हम अपने साथियों पर नजर रखते हैं। क्यों? क्योंकि हमें एक-दूसरे के साथ रहना अच्छा लगता है। अगर आपको किसी के साथ रहना अच्छा लगता है, तो शिकायतें, बड़बड़ाहट, कानाफूसी या बहस कैसे हो सकती है? मनुष्य का मूल सिद्धांत अच्छाई से प्रेम करना है। लेकिन हम अपने आस-पास के लोगों के प्रति उस प्रेम के कारण हुए नुकसानों का हिसाब जरूर लगाते हैं। क्या हम ऐसा करते हैं? लेकिन बड़ों के साथ हम ऐसा नहीं करते। हम वहाँ विनम्रता से अपनी गलतियाँ स्वीकार करते हैं, माफी मांगते हैं। भले ही हमें वहाँ शर्मिंदगी महसूस हो, हम समझते हैं कि वे हमसे ज्यादा जानते हैं। हमारी उम्र के लड़के-लड़कियाँ भी ऐसे ही हो सकते हैं। सुख की खोज ही मानव जीवन है। शर्मिंदगी, अपमान जीवन में कैसे आते हैं, और हम कैसे

गंभीर या मूर्ख बन सकते हैं, यही शर्मिंदगी की कहानी है। एक चंचल भावना तो बस समय बिताने का एक जरिया है। दोस्ती में ऐसा नहीं होता। इसलिए शर्मिंदगी की कहानी आती है। चाहे हम कितना भी पक्ष लें, पक्ष का बचाव करें, अगर किसी को जानबूझकर शर्मिंदा किया गया है, तो यह हमेशा चेतना के स्तर पर ही रहता है। इसका मतलब है कि बिना किसी को सिखाए इसे कैसे सहन किया जाए? लोग अलग-अलग गति से सीखते हैं, और जो सीखना चाहते हैं वे अंततः समझदार बन जाते हैं। अगर आप उनका मजाक उड़ाते हैं और उन्हें सिखाते हैं, तो वे सीखने में कभी रुचि नहीं खोएंगे। इस तरह की छेड़छाड़ बेहद करीबी रिश्तों में आम बात है, भले ही करीबी व्यक्ति सब कुछ समझता हो। और फिर मनमुराद हंसता है। आपको यह मजाक कैसा लगा?

२४/०३/२६

सामाजिक सहायता

तुम्हारे हाथ में वह मोबाइल क्यों है? तुम क्या खेल रहे हो? तुम्हें सब कुछ चाहिए, फिर भी कुछ समझ नहीं आता। तुम्हारी उम्र के लोगों को नौकरी मिल गई है; तुम्हारे पास दिखाने के लिए कुछ नहीं है। उनकी शादी हो गई है और परिवार भी बन गए हैं। लगता है मेरी किस्मत में खुशी नहीं है। ज़्यादा काम करने से मेरा शरीर थक गया है, और मेरा मन इतना थक गया है कि कुछ बोल भी नहीं पाता। जब युवा कुछ करते हैं, तो अक्सर माता-पिता को लगता है कि वे बस बेकार के कामों में समय बर्बाद कर रहे हैं। फिर भी, जैसे वे अपने दोस्तों से कुछ बुरी आदतें सीखते हैं, वैसे ही सही चीज़ें भी सीखते हैं। युवा—चाहे लड़के हों या लड़कियाँ—अनजाने में कुछ गलत चीज़ें सीख ही जाते हैं; यह उस उम्र की स्वाभाविक बात है। घर में बंद रहना, कभी बाहर न निकलना और बातचीत से बचना सिर्फ़ अकेले रहने की बात नहीं है; यह अक्सर सामाजिक माहौल में घुल-मिल न पाने का संकेत होता है। सामाजिक परिवेश बहुत बदल गया है; कुछ लोग इसके साथ तालमेल बिठा पाते हैं, तो कुछ नहीं। युवा अक्सर अपना खाली समय बिताने के लिए तरह-तरह के तरीके सोचते हैं—कुछ विचार तो सचमुच बहुत अच्छे होते हैं। हालाँकि, किसी विचार को सोचने और उसे असलियत में बदलने के बीच एक अंतर होता है—यह अंतर अक्सर सामाजिक समर्थन की कमी के कारण होता है। दूसरे लोग सोच सकते हैं कि इन युवाओं ने किस तरह के काम हाथ में लिए हैं, लेकिन समाज को चलाना बहुत मुश्किल काम है। युवा, अक्सर पूरी समझ के बिना, समूहों में बँट जाते हैं: वे जो सिर्फ़ अपने फ़ायदे की सोचते हैं, वे जो सामाजिक मुद्दों पर

सिर्फ़ खोखली बातें करते हैं, और वे जिनमें ऐसी बुरी आदतें आ जाती हैं कि दूसरे सोचने लगते हैं कि उनके साथ क्या किया जाए। यहीं से समाज सेवा शुरू होती है। समाज सेवा का मतलब लोगों की बातों को समझने की कोशिश करते रहना नहीं है—यह बेकार की कोशिश है। असली समाज सेवा मज़बूत सिस्टम बनाने में है। लेकिन ऐसे सिस्टम कैसे बनाए जाते हैं? हो सकता है कि कोई इंजीनियर किसी प्रोजेक्ट का डिज़ाइन बनाए, लेकिन कमियाँ बताए जाने पर उसे ठंडे बस्ते में डाल दिया जाए। इसके कई कारण हो सकते हैं। हालाँकि, अगर कई कमियों में से उस खास रुकावट की पहचान कर ली जाए, तो युवा कम से कम सच्चाई को समझ सकते हैं और शांत रह सकते हैं; वे सच्चाई को स्वीकार करने की हिम्मत जुटा सकते हैं। सामाजिक मदद का मतलब सिर्फ़ खाना या वैसी ही दूसरी मदद देना नहीं है; एक विचारक की सामाजिक भूमिका में दूसरों के विचारों को समझना और यह सोचना शामिल है कि क्या उन्हें असलियत में बदला जा सकता है। अलग-अलग विचारों पर चर्चा करना—जैसे "वह विचार कैसे आया?", "यह काम नहीं करेगा," "मैंने ऐसा क्यों नहीं सोचा?", या "चलो कोई दूसरा तरीका आज़माते हैं"—और फिर सबकी सहमति से आगे बढ़ना, एक तरह का सामाजिक आंदोलन या सक्रिय जुड़ाव है। यह भागीदारी का एक अनोखा और नया प्रयोग है। सिर्फ़ बच्चों से बातचीत करते रहने से ही उनका व्यक्तित्व नहीं बनता; वे मुरझा सकते हैं, उनका उत्साह खत्म हो सकता है, वे निराश हो सकते हैं, या समय से पहले बड़े हो सकते हैं। सामाजिक सहायता के अलग-अलग रूपों पर विचार करें: सांस्कृतिक कार्यक्रम, बच्चों की परवरिश, अलग-अलग विचारों पर बौद्धिक चर्चा, समाज के विभिन्न वर्गों के लिए पहल (सिर्फ़ योजनाओं के बजाय सशक्तिकरण पर ध्यान देना), और सशक्त समूहों द्वारा तैयार की गई कार्य-योजनाएँ—ये सभी सामाजिक सहायता के दायरे में आते हैं, है ना? कुछ लोगों के बीच आम बातचीत सामाजिक कार्य नहीं है; ये बस मानसिक थकान दूर करने वाली गतिविधियाँ हैं—और यह भी हर कोई नहीं कर पाता। हर कोई दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाए बिना इस तरह की बातचीत नहीं कर सकता। हो सकता है कि कोई एक काम करने निकले और नतीजा बिल्कुल अलग निकले। अक्सर, लोगों के बौद्धिक स्तर और समझ में बहुत अंतर होता है; कुछ लोग समझते हैं, तो कुछ नहीं। इस तरह, सामाजिक समावेश और सामाजिक सद्भाव बहुत बड़े विषय हैं। उन्हें पूरी तरह समझा गया है या नहीं, यह अलग बात है, लेकिन समाज का सफ़र सामाजिक सहायता के विभिन्न रूपों के ज़रिए

सशक्तिकरण के एक चरण से दूसरे चरण तक बढ़ने का सफ़र है। आपकी क्या राय है?

२५/०३/२६

नखरेबाज़ से लेकर आत्म-अनुशासित तक

इतना हंगामा क्यों होता है? अगर उनसे चुप रहने को कहा जाए, तो वे ऐसा नहीं कर पाते; हम उन्हें डरा-धमकाकर चुप कराने की कोशिश करते हैं। हम जितना ज़्यादा उन पर ज़ोर डालते हैं, वे उतनी ही ज़्यादा शरारत करते हैं। फिर भी, अगर हम उन्हें उनके हाल पर छोड़ दें, तो अपनी ऊर्जा खर्च होने के बाद वे खुद-ब-खुद शांत हो जाते हैं। क्या आप बच्चों के विचारों की दुनिया को—कम से कम मोटे तौर पर—समझ सकते हैं? उन्हें शरारत करने और फिर शांत होने में मज़ा आता है। अगर इस प्रक्रिया को कोई रचनात्मक दिशा मिल जाए तो अच्छा है; वरना उनका बचपन और जवानी बेकार चली जाती है। बच्चों को अक्सर खुद इसका एहसास नहीं होता। इसीलिए हमें उन पर लगातार हिदायतों की बौछार नहीं करनी चाहिए; हमें उनके स्वभाव के साथ चलना चाहिए। हमें लग सकता है कि उनसे बहुत सारा काम करवाने से वे मज़बूत बनेंगे—और शायद उनकी ज़िंदगी सच में वैसी ही बन जाए—लेकिन हम यह क्यों तय करते हैं कि उन्हें *इसी* खास तरीके से ढाला जाना चाहिए? वे स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले होते हैं। क्या हम चाहते हैं कि सब कुछ हमें आसानी से मिल जाए? अगर ऐसा है, तो हर किसी को बस ज़रूरी सेवाओं में काम करना चाहिए। मैं कभी मनोरंजन को ज़रूरी चीज़ नहीं मानता था—जीवन के लिए नमक जितना ज़रूरी। लेकिन ज़िंदगी के एक पड़ाव पर मुझे एहसास हुआ कि मनोरंजन भी उतना ही ज़रूरी है जितना पढ़ना। हालाँकि, पढ़ना उस अनुभव की गुणवत्ता को बढ़ाता है; पढ़ना और भी ज़्यादा ज़रूरी है। क्या छोटे बच्चों के लिए पढ़ने का मतलब सिर्फ़ अपनी इच्छाओं के सफ़र को देखना है? यह एक स्प्रिंग के खुलने जैसा है—वे धीरे-धीरे खुद को समझने लगते हैं। बस देखते रहिए—वे आखिरकार खुद ही हंगामा करना बंद कर देंगे। हमारी अपनी अंदरूनी उथल-पुथल अक्सर इस बात का नतीजा होती है कि हम हालात पर कैसी प्रतिक्रिया देते हैं। अगर हमें यह बात समझ आ जाए तो अच्छा है; वरना, एक बार गलत व्यवहार करने के बाद, हम अक्सर उसी व्यवहार को दोहराते रहते हैं। यह पैटर्न बचपन से ही शुरू हो जाता है। इसीलिए मुझे यह सही नहीं लगता कि बच्चों से हंगामा न करने के लिए कहा जाए। वे शोर मचाएंगे, लेकिन वे शांत भी हो जाएंगे। वे बड़े होकर अपने अंदर उस खुशी को संजोकर रखेंगे। दूसरी ओर, दबाने से वे एक अलग,

अक्सर नकारात्मक, दिशा में चले जाते हैं। और मनमानी करने की बात भी है। कभी-कभी, लगातार टोकने से बचने पर ही उन्हें सिर्फ़ एक बातचीत में बात समझ आ जाती है। बहुत से लोग इस तरीके को गलत मानते हैं। "बच्चों को न डांटने का क्या मतलब? वे बिगड़ जाएंगे!" या, "वे बिगड़ *रहे* हैं।" क्या हम तब तक आंखें बंद रखेंगे जब तक वे सच में बिगड़ न जाएं? आजकल, कई लोग अलग-अलग वजहों से बच्चों की पिटाई कर देते हैं; यह अक्सर खुद पर काबू न रख पाने की निशानी है। दूसरी ओर, कई बच्चे तब तक मनमानी करते हैं या बदतमीजी करते हैं जब तक कि माता-पिता आखिरकार उन पर गुस्सा न हो जाएं। मैंने खुद के अनुभव से सीखा कि खुद पर काबू कैसे रखा जाए। एक बार, मैंने एक लड़की को थप्पड़ मार दिया था क्योंकि उसने बिना तैयारी के एक कॉम्पिटिशन में हिस्सा लिया था और आए हुए मेहमानों से बात करने से मना कर दिया था; तब मुझे एहसास हुआ कि ऐसे तरीकों की ज़रूरत नहीं थी। बस बातों को समझाना ही काफी है। अगर प्यार सच्चा हो, तो बच्चे सज़ा भूल जाते हैं—बशर्ते बच्चा भी बदले में प्यार करे। माता-पिता और बच्चे का रिश्ता कभी एकतरफा नहीं होता। हम अक्सर सोचते हैं कि अगर हम बच्चों पर ज़बरदस्ती नहीं करेंगे, तो उन्हें नुकसान होगा। हमें डर लगता है कि जब तक उन्हें समझ आएगी, तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। हम—और हमारे आस-पास के लोग—बच्चे के लिए सब कुछ तय करते हैं, यह भूलकर कि वे आज़ाद इंसान हैं। इसका मतलब बदतमीज़ी को बढ़ावा देना नहीं है; बल्कि, यह उन्हें मज़बूत बनाने की दिशा में आगे बढ़ने के बारे में है। अगर बड़ी बहन अपने भाई को कोई सलाह दे, तो उसे सुनना चाहिए; अगर बड़ा भाई अपनी बहन को सलाह दे, तो उसे भी सुनना चाहिए। जब बड़ों का सब्र खत्म हो जाता है, तो वे बस बच्चों को शोर-शराबा करने से रोक देते हैं। असली नैतिकता इस बात से शुरू होती है कि कोई कैसा व्यवहार करता है—या कैसा व्यवहार न करने का फैसला करता है—जब बड़े उसे देख नहीं रहे होते। यह ट्रेनिंग बचपन में ही होती है। बच्चों, क्या तुम अपनी शरारत की हद, जगह और साथ तय करोगे? क्या बड़ों के कुछ कहने से पहले ही शोर बंद हो जाएगा? क्या तुम खुद पर काबू रखना सीखोगे?

२६/०३/२६

सूर्योदय और सूर्यास्त

हर दिन उगने वाला सूरज हमें क्या देता है? पेड़ों के लिए हरा-भरा पदार्थ, विटामिन और इंसानों व जानवरों के लिए ज़रूरी रोशनी का एहसास। क्या आप सबने सूरज की तस्वीर देखी है? बच्चों, तस्वीरों में उसकी किरणें हर जगह फैलती हुई दिखती हैं, है ना?

लेकिन अगर आप धरती का चक्कर लगाकर देखें कि क्या सच में ऐसा होता है, तो आपको समझ आ जाएगा। आप यहाँ से दो कदम आगे जाना चाहते हैं और उसके साथ न होने पर डर महसूस करते हैं। है ना? तो फिर आप सूरज की किरणों को कैसे समझेंगे? सूरज की तस्वीर हमें एक समान रोशनी का एहसास कराती है। एक छोटे से विषय में सारा ज्ञान। हर दिन उगने वाला सूरज हमें आज का दिन सिखाता है। हर दिन वह खुद को दिखाता है, अपना काम करता है। वह जहाँ है वहीं रहता है। क्योंकि धरती घूमती है, इसलिए वह दो बार दिखता है। उगते और डूबते समय। असल में, वह न तो उगता है और न ही डूबता है। उसकी वजह से पेड़ उगते हैं, जानवर खुश रहते हैं। कोई भी उसके ज़्यादा असर को बर्दाश्त नहीं कर सकता। तुरंत बारिश और सर्दी आ जाती है, है ना? लेकिन उसे रोज़ देखना हमें आशावाद सिखाता है। तो फिर सूर्यास्त क्या सिखाता है? हर चीज़ का एक अंत होता है। जिसकी झलक पाने की इच्छा होती है, वह उदास और अंधकारमय हो जाता है। इसी प्रकार, सूर्यास्त मन में व्याप्त सभी चिंताओं, बेचैनी, निराशा और आक्रोश को त्यागने का उपदेश देता है। जो भी व्यक्ति अपने जीवन में सूर्योदय और सूर्यास्त के बारे में सीखता है, शायद यह अवधारणा उसे कई जन्मों में प्राप्त होती रहे।

२७/०३/२६

ध्यान का विषय

समय कम होता जा रहा है, क्या करें? कुछ चर्च छोटे बच्चों के पालन-पोषण का जिम्मा उठाते हैं। इसलिए वहां बच्चे प्रेम विषय पर चर्चा करते हैं। क्या यह अद्‌भुत नहीं है? प्रेम एक ऐसा विषय है जिसमें कोई पूर्णता नहीं है। यह करना प्रेम है, वह न करना प्रेमहीनता है, वह करना चिंता है, वह न करना चिंताहीनता है। प्रेम की कई परिभाषाएँ हैं। वास्तव में, जिस विषय पर हम चिंतन करते हैं, हम उसे थोड़ा-बहुत समझते हैं। कम से कम ऐसा लगता है। बचपन में हम हर चीज को लेकर असुरक्षित महसूस करते हैं। लेकिन बाद में, जब अलग-अलग अच्छे लोग हमारी देखभाल करते हैं, तो विद्रोह की भावना बहुत बढ़ जाती है। क्या यह सच है या झूठ? कहने का तात्पर्य यह है कि चिंता और दंड तराजू के दो पहलू हैं। रंग चाहे जो भी हो। लेकिन चिंता सबको खा जाती है। यह एक आदत बन जाती है और फिर स्वभाव। जो भी इससे निपटने में सक्षम होता है, वह कहता है, हमारे साथ जो भी होगा, वही होगा। गीता हमें बताती है कि हमें किस पर चिंतन करना चाहिए? अनेक चीजों पर। यदि हम सही काम करते हैं, तो वह काम होगा, लेकिन इसके लिए मानवीय प्रयास आवश्यक हैं। यदि वे नहीं हैं, तो चिंतन में

चिंता का भाव ही शुरू हो जाता है। जो भी इतना कुछ करता है, वह उस समय सही जगह पर नहीं होता। क्योंकि अगर उसके सारे पिछले पल ऐसी ही चीजों से भरे हों, तो उस व्यक्ति ने अपना जीवन इसी तरह बिताया है। मैं यह नहीं कहूंगा कि मैंने ऐसा किया है। प्रेम, देखभाल, नफरत और ईर्ष्या का विषय है। घर की चाह रखना, किताब होना/ऐसी इच्छा रखना कम से कम सामान्य होने का संकेत है। लेकिन किसी चीज के न मिलने पर उसके लिए तड़पना ध्यान का विषय है... है ना? इस बात को किस पर लागू किया जाना चाहिए?

२८/०३/२६

जीवन की ध्वनि

एक व्यक्ति धीरे-धीरे एक खास सड़क पर चलता है, किसी के बारे में नहीं सोचता, लेकिन मन में सवालों के पहाड़, इमारतें उठती रहती हैं, उन्हें सुलझाने की कोशिश करता है, गाड़ी आती है, एक अर्थहीन जीवन के करीब। क्या मैंने ऐसा सोचा था? तभी वह गीत याद आता है, "जीवन का संघर्ष मुझे अर्थहीन लगता है", सोचता हूँ कि इसे किसने लिखा, क्यों लिखा, "मैं भीड़ में लोगों को खोजता हूँ", याद आता है। यानी, हम कुछ महसूस करते हैं, इस दुनिया में ऐसे लोग हैं। जब हमें यह जानकर राहत मिलती है कि हम अकेले नहीं हैं, तो क्या हम उस धुन को खो देते हैं जो हमें मिली थी? कोई व्यक्ति यूँ ही खुश नहीं रह सकता। लोग सीमा पार कैसे करते हैं जब उन्हें दुखी नहीं होना चाहिए? कोई ऐसे लोगों को जानता है, और उनके बारे में सोचने से कुछ होता है। कर्म योग और उसकी शिक्षाओं में विश्वास रखने वाला व्यक्ति किसी की नज़र में गधे से ज़्यादा कुछ नहीं हो सकता। लेकिन मन के विभिन्न प्रलोभन, सामाजिक चर्चाओं की परेशानी, वह धुन जिसे हम एक ही समय में जानते हैं... जीवन का नज़रिया। यह सच है कि कोई कभी यह नहीं जान पाएगा कि वह कौन सी धुन है। लेकिन क्या इसे महसूस करने वाला व्यक्ति इससे बच पाता है, यही सवाल है। सब कहते हैं कि कोहम से सोहम जाने का रास्ता है, पर यह समीकरण क्यों बिगड़ जाता है? जीवन का अर्थ है। यह हमारे खून में बसा है। यह सच है कि अर्थ दिए बिना अर्थ नहीं मिल सकता, लेकिन इसकी खोज कहाँ तक जाती है? और अगर मिल भी जाए, तो भी यह जीवन जीने के लिए पर्याप्त क्यों नहीं होता?

२९/०३/२६

किरकिरा

जब कोई बच्चा रोना शुरू करता है, तो हम इसे शारीरिक लक्षण मानकर उसे उचित भोजन देते हैं। बाद में, वह बड़ा हो जाता है। वह अपने रोने को ढूंढने और उस पर काबू पाने की कोशिश करता है। अक्सर, वह दूसरों पर चिल्लाकर खुद को शांत करने की कोशिश करता है। यह शारीरिक और मानसिक दोनों पहलुओं में होता है। क्या अपने सभी विचारों को दूसरों पर थोपने और दूसरों द्वारा हमारे विचारों को स्वीकार किए जाने में कोई अंतर है? जीवन में हर दिन ऐसे प्रश्न उठते हैं। हम इन प्रश्नों को हल करने का प्रयास करते हैं। रोना-धोना एक आदत बन जाती है और फिर स्वभाव बन जाता है। संयम की शक्ति विकसित करने और स्वभाव से संयमित होने में अंतर होता है। लोग कई कारणों से संयम विकसित करते हैं। जब सभी सुख प्राप्त करने के बाद भी हमारा रोना-धोना बंद नहीं होता, तो इसका कारण सुख की आदत और सुख की खोज होती है। इसके अलावा, हमें लगता है कि फलां काम करना चाहिए, फलां कला करनी चाहिए, आदि। लेकिन इसमें भी, यदि हम इसे केवल दूसरों को नीचा दिखाने या दूसरों को कुछ प्रदर्शित करने के लिए करते हैं, तो यह बहुत गलत है। दिखावे के लिए किया गया कार्य क्षणिक संतुष्टि देता है। जिस दिन हम इस सोच पर पहुँच जाते हैं कि मैंने ऐसा किया, वो सही नहीं था, तब हम बहुत परेशान हो जाते हैं। इसलिए हमें शिकायत करने का कारण समझना चाहिए। लेकिन अगर हम ऐसा काम करते हैं और उसके परिणामों के बारे में नहीं सोचते, तो क्या वो करना सही है? हम शरीर को कितना भी दें, उसे फिर भी चाहिए होता है। यह बिल्कुल सच है कि दिमाग को इससे पोषण मिलता है। लेकिन विचारों से मिलने वाला आनंद शाश्वत होता है। भोजन से मिलने वाला आनंद क्षणिक होता है। आज हमें ऐसा खाने का मन हुआ, कल मन करता रहेगा। अगर आप हमें इसका मतलब बताएँ, तो क्या आपको अच्छा नहीं लगेगा? इसलिए, बचपन से ही मेरी यही राय रही है कि भोजन संपूर्ण ब्रह्म है और भोजन को कोई नाम नहीं देना चाहिए। शिकायत करने से शांति नहीं मिलती। इसलिए बचपन से ही इस पर काबू पाना सीखें। लोग दूसरों को धमकाकर अपनी इच्छाएँ पूरी करते हैं। या फिर वे ज़िम्मेदार व्यवहार सिखाकर दूसरों को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। अगर वे इतना कर लेते हैं और शिकायत करना बंद कर देते हैं, तो उन्हें वह मिल जाता है। अन्यथा, इतना सब कुछ करने के बाद भी अगर असंतोष बना रहता है, तो क्या वे कभी खुद से इसका कारण पूछेंगे? जब मन किसी चीज की ओर आकर्षित होता है, तो उसका कारण अपूर्णता ही होती है। आइए अपने असंतोष के कारणों का पता लगाएं।

३०/०३/२६

भ्रामक मन

दुनिया में बहुत से लोग हैं जो दूसरों के विचारों और भावनाओं को समझते हैं और उनका मार्गदर्शन करते हैं। कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए उन्हें हतोत्साहित करते हैं। नैतिकता केवल कहने की बात नहीं, बल्कि कर्मों की बात है। बहुत से लोग सोचते हैं कि वे कभी गलती नहीं करते। कुछ लोग लगातार सोचते रहते हैं कि क्या उन्होंने कोई गलती की है। हर कोई यह सवाल पूछता है कि अगर मार्गदर्शन करने वाला कोई न हो और भटक जाए तो जीवन में क्या हासिल किया? लेकिन दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो किसी भी परिस्थिति में अपना मनोबल नहीं गिरने देते। अक्सर मैं अपनी स्थिति समझता हूँ, लेकिन मन में यह डर रहता है कि क्या वे चुनौती का सामना कर पाएंगे। परिस्थिति चाहे कितनी भी बदल जाए, हम कैसा व्यवहार करेंगे, अगर हमें कोई सहारा मिले तो क्या हमारा जीवन पथ बिगड़ जाएगा, क्या हम इसे इस दिशा में जाते देखकर असहाय महसूस करेंगे? बहुत से लोग इसका उत्तर हाँ में देंगे, जबकि कुछ लोग नहीं में। जीवन के हर पहलू में स्पष्टता से बढ़कर कोई खुशी नहीं है। और इस मामले में बिना गुमराह किए मदद करने वाले से बेहतर कोई व्यक्ति या मित्र नहीं है। ऐसा लगता है कि यह एक भ्रम है कि हम दूसरों को गुमराह करके जीवन में अधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यही बात मनुष्य के "मैं" पर भी लागू होती है। हमारा मन अक्सर इस "मैं" के भ्रम में रहता है। यह "मैं" भय से भी उत्पन्न होता है। हम आत्मसम्मान के लिए, यानी खुद को अच्छा महसूस कराने के लिए, इतना अधिक "मैं" बनाए रखते हैं कि यह विचार ब्रह्मांड से परे हो जाता है। जीवन में आवश्यक ज्ञान होने के बावजूद पर्याप्त संसाधन न होना, यहां तक कि करीबी लोगों का न होना भी "मैं" का संकेत है, साथ ही "मैं" के अभाव का भी संकेत है। यह "अहंकार" सूक्ष्म होता है। यदि अहंकार है, तो स्वयं से उठने वाले प्रश्न कभी हल नहीं होते, और दुनिया के लिए तो बहुत बाद में, कम से कम स्वयं के लिए तो नहीं। आप ऐसा क्यों कहते हैं? अहंकार का त्याग किए बिना, शांति का अनुभव नहीं किया जा सकता। यह ऐसी शांति नहीं है जो कब्रिस्तान की शांति हो, बल्कि ऐसी शांति है जिसमें आप स्वयं के बारे में अच्छा महसूस करने लगते हैं। जब मन भ्रमित होता है, और ऐसे समय में जब कोई आपसे मिलता है, तो हम न केवल दूसरों के बारे में, बल्कि स्वयं के बारे में भी गलतफहमियां पाल लेते हैं। यदि जीवन में कोई बड़ी बात है, तो वह है "धारणा"। जिस व्यक्ति की मान्यताएँ वास्तविकता पर आधारित होती हैं, वह विद्वान होता है। उसका मन कभी भ्रमित नहीं होता।

३१/०३/२६

सम्मान

कई घरों में छोटी बच्चियां या लड़के सम्मान के साथ बड़े होते हैं। कभी-कभी यह सम्मान झूठा होता है, कभी-कभी यह ज़रूरत से ज़्यादा होता है। आइए देखें कि यह कितना झूठा है। आंटी क्या सीखेंगी? अगर आप कुछ सीखने की कोशिश करते हैं, तो बाद में पता चलता है, अरे, यह तो झूठा है। अगर यह सच्चा है, तो तस्वीर कुछ अलग होती है। कई जगहों पर, आंटी को दिया जाने वाला सम्मान गलतफहमियों, गैरजिम्मेदार व्यवहार और हर जगह झगड़ों का कारण बनता है। और समर्थ की यह बात याद आती है, "दुनिया में सबसे खुश इंसान कौन है?" है ना कमाल की बात? हम समझते हैं कि सम्मान हमारे जीवन में एक ऐसी चीज है जो हमें जलाती है। अगर आप इसे नहीं देते, तो दुख होता है, अगर आप इसे देते हैं, तो दुख होता है, अगर आपको यह नहीं मिलता, तो दुख होता है, और अगर आपको यह मिलता है, तो भी दुख होता है। इसका कारण यह है कि हम सम्मान के बढ़ते ग्राफ को ज़रूरी समझते हैं। फिर हम सम्मान पाने के लिए बाकी सब कुछ करने के बजाय हर संभव कोशिश करते हैं। मुझे जीवन में सबसे दिलचस्प और बेकार चीज सम्मान ही लगती है। क्योंकि सिर्फ इसी एक चीज की वजह से जीवन अधूरा रह जाता है। सीखने के लिए बहुत कुछ है। लोग क्या कहेंगे, उनका रूप कैसा होगा, वे कैसा महसूस करेंगे, यही किसी व्यक्ति का जीवन होता है। उन्हें सम्मान अर्जित करना नहीं सिखाया जाता, बल्कि ऐसे ही वातावरण में पाला-पोसा जाता है। दूसरी ओर, ऐसा लगता है कि लोग किसी की परवाह किए बिना व्यवहार करते हैं। लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं है। जहाँ सच्चा सम्मान दिया/प्राप्त किया जाता है, वहाँ वह सम्मान भीतर से आता है। बाकी सब तो व्यवहार है। यदि किसी को तीस वर्ष की आयु में सम्मान मिलता है, तो उसे स्वयं से पूछना चाहिए, मैंने किसका सम्मान किया? और क्या मुझे यह उचित लगा? मुझे किसी ऐसी चीज़ से सम्मान का अनुभव होता है जो अत्यंत घृणित है। क्योंकि यहीं से व्यवहार का भाव शुरू हो जाता है। सम्मान देने वाले को भी अलग महसूस होता है। लेकिन जिन्होंने कई स्थानों पर सम्मान और अपमान के पहाड़ों पर चढ़ाई और उतराई की है, वे समझते हैं कि यह कितना बनावटी है। क्योंकि ऐसा सम्मान देने के बाद अपमान कैसे मिल सकता है? या अपमानित होने के बाद सम्मान कैसे मिल सकता है? यह एक खेल जैसा लगने लगता है। सम्मान की आदत इस असुविधा को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करती। क्या हमें छोटे बच्चों को केवल सम्मान सिखाना चाहिए? क्या हमें उन्हें यह

सिखाना चाहिए कि यह एक ग्राफ है? क्या हमें उन्हें यह सिखाना चाहिए कि सम्मान के भी कई प्रकार होते हैं? या उन्हें खुद सीखने देना चाहिए? क्या हमें परिस्थितियों के अनुसार सही-गलत का ज्ञान देना चाहिए? क्या सम्मान न मिलने पर भी अच्छा लगता है? या फिर साथ मिलकर अपमानित होना बेहतर है? आइए सम्मान के प्रकारों पर विचार करें। सम्मान एक सांस्कृतिक अवधारणा है। इसके प्रकार संस्कृति के अनुसार भिन्न होते हैं।

०१/०४/२६

टोकन

नाम का महत्व और नाम से जुड़ी ज़िम्मेदारी, पसंद से चुना गया नाम, ये सब बातें मेरे मन में आईं। समय बदल गया है और जब लोग बूढ़े हो जाते हैं, तो ज़िम्मेदारियाँ और इसलिए कई अवधारणाएँ भी समय के साथ बदल जाती हैं। चाहे लोग हम तक पहुँचें या न पहुँचें, कोई समस्या नहीं। संदर्भों का मुद्दा सामने आया। हमें ये संदर्भ क्यों देने पड़ते हैं? विषय के विशेषज्ञों तक पहुँचने के लिए बनाई गई एक कड़ी। इसमें खतरा यह है कि अगर संदर्भ के रूप में नामित अजनबी और विशेषज्ञ सभी अजनबी ही हों, तो एक ईमानदार व्यक्ति का क्या मतलब रह जाता है? वास्तव में, जीवन में ज़िम्मेदारी से काम करने का कोई विकल्प नहीं है। और बहुत से लोग सोचते हैं, लोग ऐसे लक्ष्यहीन काम क्यों करते हैं? अरे, अब तो खाना-पीना हर जगह उपलब्ध है। ऐसी तकनीक आ गई है कि हमें अपने दिमाग का इस्तेमाल करना बंद कर देना चाहिए। अरे वाह! मानव मस्तिष्क का विकल्प! मज़ा आ गया। क्या जीवन एक रिमोट कंट्रोल नहीं है? मैं संदर्भों की बात कर रहा था। एक फिल्म जो लंबे समय तक कड़ी मेहनत करती है, बॉक्स ऑफिस पर हिट हो जाती है। मैं पैसे, कलाकारों की मेहनत, अथक समय का हिसाब लगाता रहता हूँ। मुझे लगता है कि इस पर भी पुनर्विचार होना चाहिए। है ना? इसमें अवधारणा की चोरी का पहलू भी है। अगर विचारक ईमानदारी से काम करें तो कितने लोग खुश होंगे? नौकरी के लिए संदर्भ चाहिए, लड़की के लिए संदर्भ चाहिए, पीएचडी के लिए संदर्भ चाहिए! यानी, यह उम्मीद रहती है कि हम किसी ज़िम्मेदार व्यक्ति तक पहुँचने के लिए किसी मुश्किल रास्ते से गुज़रेंगे। जैसे चिड़िया दाना चुगती है, वैसे ही नाम तो जाने-पहचाने होते हैं, लेकिन निश्चित नहीं। क्योंकि व्यवहार और काम की गुणवत्ता का कोई भरोसा नहीं होता। संदर्भ महत्वपूर्ण हैं। लेकिन इसमें बहुत ज़िम्मेदारी भी जुड़ी है। संदर्भ एक प्रतीक हैं। प्रतीक मिलने पर काम हो जाता है। धीरे-धीरे काम करने की प्रेरणा कम हो जाती है। थकान और ऊब

बढ़ जाती है। और सिर्फ़ संदर्भ बढ़ते जाते हैं। इसलिए याद रखें कि संदर्भ एक ज़िम्मेदारी हैं।

०२/०४/२६

बवंडर

इंसानी समाज में उथल-पुथल अक्सर रोमांटिक रिश्तों की उलझनों से पैदा होती है—इसमें रुकावटें, सच और झूठ का मिला-जुला रूप, एक-दूसरे को चोट पहुँचाने के पल, गहरी नफ़रत और दर्दनाक भावनाएँ शामिल हैं। मैं अक्सर सोचता हूँ: क्या इस दिशा में बढ़ रहे समाज को सच में 'महान' कहा जा सकता है? क्या हर किसी को इस बात पर सोचना नहीं चाहिए कि चीज़ें कहाँ गलत हो जाती हैं—वहाँ तक जहाँ रिश्ते खट्टे हो जाते हैं? घर से निकलते ही इंसान सामाजिक संस्थाओं की दुनिया में कदम रखता है; जबकि घर के अंदर एक स्थिर जीवन होता है। हम नए दायरे बनाने के लिए रिश्तों को *डोसा* के घोल की तरह खमीर उठने देते हैं, लेकिन क्या इस बात की कोई गारंटी है कि नए माहौल में रिश्ते फिर से खट्टे नहीं होंगे? असल में, जब ज़िम्मेदारियाँ निभाना मुश्किल हो जाता है, तो आसान रास्ता खोजना या पुराने रिश्तों के खट्टे होने पर नया दायरा बनाना—क्या यह सच में तरक्की की निशानी है? खूबसूरत गाने, फ़िल्में और रचनाएँ विचारों की दुनिया की झलक दिखाते हैं और एक संदेश देते हैं: ऐसी रचनाएँ इसलिए मौजूद हैं क्योंकि दुनिया में कुछ अच्छा और नेक है। इंसान को हर नई चीज़ को समझने और अपनाने की मजबूरी महसूस हो सकती है, क्योंकि उसे 'आउटडेटेड' या पुराना पड़ जाने का डर होता है—तेज़ी से बदलते ट्रेंड्स का यही स्वभाव है। लोग अक्सर दूसरों के बारे में बातें करते हैं—चाहे जान-बूझकर या बिना सोचे-समझे—जिससे सामाजिक दायरों या साथ रहने की जगहों पर गपशप और बातचीत का सिलसिला शुरू हो जाता है। जब इंसानी दिमाग में शक के बीज बोए और पाले जाते हैं, तो वे ज़हर बन जाते हैं। मेरा मानना है कि यह सोचना गलतफहमी है कि इस तरह तरक्की हासिल की जा सकती है। सिक्के के दो पहलू होते हैं: ज़िंदगी बदलने वाली घटनाओं से हिल जाना और दूसरों को ऐसे झटके देना। समझाने और तर्क देने की कोशिशों के बावजूद, लोग अक्सर किसी आम सहमति पर नहीं पहुँच पाते; नतीजतन, ज़बरदस्ती का इस्तेमाल ज़रूरी हो जाता है। जब दूसरा व्यक्ति 'सो रहा' हो—यानी अनजान या ध्यान भटका हुआ हो—तब अपना एजेंडा पूरा करने की इच्छा होना स्वाभाविक है, लेकिन हम अक्सर भूल जाते हैं कि वे आखिरकार जागेंगे ही। ऐसी चौंकाने वाली घटनाएँ हो सकती हैं जो किसी के नज़रिए से बहुत परे हों, फिर भी अपने

मक़सद को पाने की कोशिश कभी नहीं रुकती। इसलिए, खुद के साथ-साथ दूसरों का भी ख्याल रखने की क्षमता—और ज़िंदगी में इस सबक को सीखकर अपनाना—ही टिकाऊ विकास का रास्ता बनाती है। आज की भागदौड़ भरी ज़िंदगी अक्सर लोगों की ज़िंदगी में उथल-पुथल मचा देती है, जबकि रचनात्मक पहल हमारे और दूसरों के जीवन को बेहतर और समृद्ध बनाने में मदद करती हैं। शिक्षा सिर्फ़ स्कूल-कॉलेज तक ही सीमित नहीं है; आज कई तरह के विषय और सीखने के क्षेत्र मौजूद हैं। "जीवन की शिक्षा" बहुत ज़रूरी है, लेकिन इसे हर किसी को खुद ही हासिल करना होता है। हमें तय करना होगा कि हम बिना सोचे-समझे अंधी दौड़ का हिस्सा बनें या समझदार, ज़िम्मेदार और संवेदनशील नागरिक बनें। ऐसा करते समय हमें यह याद रखना चाहिए कि हर किसी की संवेदनशीलता का स्तर अलग-अलग होता है; लोग चीज़ों को अलग-अलग नज़रिए से देखते हैं। हालाँकि, ज़बरदस्ती करने के बजाय आपसी समझ से चीज़ों का हल निकालना कहीं बेहतर है। हम अक्सर इस बारे में कितना सोचते हैं? दूसरों की गलतियों को "सोशल कैपिटल" (सामाजिक पूँजी) के तौर पर इस्तेमाल करना सच्चे सामाजिक विकास का सही रास्ता नहीं है; यह सोचना भी गलत है कि ऐसा करने से हमारा भला होगा। टिकाऊ विकास गलतियों की नींव पर नहीं, बल्कि रचनात्मक विचारों की नींव पर खड़ा होता है। जिस दिन समाज में बेबुनियाद अफ़वाहें और गपशप फैलना बंद हो जाएँगी, उस दिन हर किसी को व्यक्तिगत विकास के लिए ज़रूरी हिम्मत, दिशा और संकल्प मिलेगा। हम अपने विकास की दिशा में तब एक कदम बढ़ाते हैं जब हम दूसरों से अपनी तुलना करके या उनकी चीज़ों की चाहत में बेचैन होना बंद कर देते हैं—और यह सब बिना यह समझे कि हमारे लिए व्यक्तिगत विकास का क्या मतलब है या अपनी इच्छाओं को स्पष्ट रूप से जाने बिना करते हैं। अब चुनाव हमारा है: क्या हम समाज में उथल-पुथल मचाएँगे या नहीं? अलग-अलग विचार रखना उथल-पुथल मचाने जैसा नहीं है; बल्कि, विचारों का बौद्धिक आदान-प्रदान बहुत ज़रूरी है।

०३/०४/२६

केवल लालची

बचपन से आप क्या करते आए हैं? बस बैठकर खाते रहते हैं, हमेशा भूखे रहते हैं। हम माता-पिता से बातें करते-करते बड़े होते हैं। बहुत सी बातें। समझ नहीं आता, है ना? कितनी बार कहना पड़ेगा? एक बार कहोगे तो समझ आ जाएगा। कुछ बच्चे बेशर्म और शरारती होते हैं। उन्हें हर चीज़ अपनी जगह पर चाहिए होती है। अगर माता-पिता

लगातार ऐसे ही बोलते रहते हैं, तो या तो वे थक गए हैं या ऊब गए हैं। अगर बिना बोले या दिखाए सिखा सकते हैं, तो वही सिखाने का तरीका है। जब आप किसी से बहुत प्यार करते हैं, तो ऐसा ही होता है। उसे जल्दी आना चाहिए, जल्दी समझना चाहिए, किसी को अपशब्द नहीं बोलने चाहिए। अगर माता बोलती हैं, तो बच्चे बहुत आहत होते हैं और दूर चले जाते हैं, कभी शारीरिक रूप से, कभी मानसिक रूप से। अक्सर माता-पिता कुछ हासिल करना चाहते हैं। कभी यह सही होता है, कभी गलत। वे अपनी अधूरी इच्छाओं को भी हमसे पूरा करवाना चाहते हैं। कुछ बच्चे समझते हैं, कुछ नहीं। ऐसे बच्चों को भूखा कहा जाता है। माता-पिता बनने के सफर में एक तरह की मुश्किल लड़ाई होती है। यह बिल्कुल मेरे या सिर्फ मेरे जैसा ही है। जो बच्चे इस तरह से छोटे-बड़े अंतरों को समझने का तरीका सीखते हैं, चाहे वह बोलने का तरीका हो या व्यवहार का, उनका विचार और भावनाएँ बहुत अलग होती हैं। कुछ बच्चों में धैर्य होता है, तो कुछ में करुणा। जब वे पूरी दुनिया को समझने लगते हैं, तो उनके मन में बस यही भावना आती है कि हमें ज़िम्मेदारी से व्यवहार करना चाहिए। अक्सर जब कुछ बच्चे ऐसा करने की कोशिश करते हैं, तो माता-पिता सोचते हैं, अब इसका क्या फायदा? जब हम हर चीज़ में संतुलन बनाए रखने के आदी हो जाते हैं, तो हमें किसी भी चीज़ की कद्र और अहमियत का एहसास नहीं होता। बच्चों, 18 साल की उम्र तक अपनी पसंद की चीज़ें सीखना हमारा कर्तव्य है। इसलिए, 25 साल की उम्र तक, और अगर सीखने की इच्छा बनी रहे, तो पढ़ाई जारी रखनी चाहिए, लेकिन 18 साल की उम्र के बाद हमें अपना स्वतंत्र जीवन जीने की कोशिश करनी चाहिए। स्वतंत्रता क्या है? यह आप तय करें कि यह स्वतंत्रता और उससे पैदा होने वाला उन्माद है या वह संवेदनशीलता जिसे बनाए रखा जाता है...

०४/०४/२६

स्वतंत्रता का स्वाद

जब हम अलग-अलग तरह की आज़ादी पाते हैं, हासिल करते हैं या उसके लिए लड़ते हैं, तो हमें खुद से ज़रूर पूछना चाहिए कि हम उस आज़ादी का इस्तेमाल कैसे करते हैं —या कैसे किया है। इसके पीछे क्या वजह है? आपको कौन-कौन सी खास आज़ादी मिली थी? ऐसे सवाल अक्सर बदले की भावना से पूछे जाते हैं, हालांकि कभी-कभी ये सच्ची उत्सुकता से भी पूछे जाते हैं। क्या सिर्फ़ आज़ादी और ज़िम्मेदारी के बारे में जानना काफ़ी है? इसके आगे क्या है? क्या हम पूरी तरह से और संवेदनशीलता के साथ सोच सकते हैं? ऐसा करने का मकसद क्या है? हम घमंडी या लापरवाह बने बिना

अलग-अलग इंसान बनते हैं। फिर भी, आज़ादी और ज़िम्मेदारी का ध्यान रखने पर भी, घमंडी या लापरवाह होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता; ऐसा अपनी इज़्ज़त बनाए रखने की प्रक्रिया के दौरान हो सकता है—अक्सर बहुत बारीक स्तर पर। समाज में घूमने-फिरने की आज़ादी होने का मतलब यह नहीं है कि हर कोई सब कुछ समझ जाएगा; इसके उलट, समझ की कमी उस आज़ादी को न देने की कोई वजह नहीं है। अगर कोई सुरक्षा और असुरक्षा की बातों को समझने से पहले ही दुनिया में कदम रखता है, तो हो सकता है कि वह या तो निडर हो जाए या—कुछ घटनाओं की वजह से—बहुत ज़्यादा डर जाए। लापरवाही और डरपोकपन, दोनों ही निजी और सामाजिक जीवन में रुकावट डालते हैं। सिर्फ़ आज़ादी पाना और ज़िम्मेदारी के बारे में जानना काफ़ी नहीं है। क्या हम सच में उन लोगों की भावनाओं को समझ सकते हैं जो दमनकारी पाबंदियों में रहे हैं और जिन्होंने कई ज़िम्मेदारियाँ उठाई हैं? क्या हम उन नियमों को बर्दाश्त कर सकते हैं जिनके तहत वे जिए? हम अक्सर अपने अधिकारों को पाने के लिए लड़ते हैं। मुझे अक्सर लगता है कि संवेदनशील, ज़िम्मेदार और समझदार लोग ही असल में अधिकारों और ज़िम्मेदारियों की समझ देते हैं। यहाँ बात यह नहीं है कि जिन लोगों ने बेहिसाब आज़ादी का मज़ा लिया है, उन्हें पाबंदियों में रहने की कोशिश करनी चाहिए। बल्कि, बात यह है कि जहाँ पाबंदियाँ सुरक्षा देती हैं, वहीं वे हमारी सीख को सीमित भी कर सकती हैं; इसके उलट, जहाँ आज़ादी हमें बहुत कुछ सिखाती है, वहीं यह हमें असुरक्षा और बुरे अनुभवों का सामना भी करा सकती है जो मन पर गहरी छाप छोड़ते हैं। ज़िंदगी खुद हमें सबक सिखाती है—पाबंदियों के बीच भी, हम थोड़ा सीखते हैं लेकिन अच्छा सीखते हैं, और कीमती अनुभव पाते हैं। हालाँकि, किसी को—खासकर खुद के लिए—इस बात पर सोचना चाहिए कि जो आज़ादी उसने माँगी या पाई है, उससे उसने क्या सीखा है। दूसरे लोग अपनी समझ के आधार पर बोलते हैं, और हम चीज़ों को अपनी समझ के अनुसार देखते हैं, फिर भी सच अक्सर कहीं और होता है... क्या यह दिलचस्प लगता है? कुछ लोग कह सकते हैं कि उन्होंने बस वही करके एक बहुत अच्छी ज़िंदगी जी, जो उन्हें करने के लिए कहा गया था। इसमें कुछ भी गलत या बुरा नहीं है। फिर भी, एक नज़रिया यह भी है—जिसे वे लोग मानते हैं जो अपने विचारों को खुलकर और सही ढंग से रखते हैं—कि युवाओं को आज़ादी का अनुभव करना चाहिए: इसके जोखिम और खुशियाँ, रुकावटें, उससे मिलने वाले अनुभव, उससे मिलने वाली समझ, उससे बनने वाला व्यक्तित्व और

उसके बाद लगातार किए जाने वाले बदलाव; या फिर, अगर उन्हें साफ़ तौर पर न भी बताया जाए, तो वे यह सब खुद ही सीख जाएँगे...

०५/०४/२६

बच्चों के व्यक्तित्व

हम अपने बच्चों के व्यक्तित्व को आकार देने की कोशिश करते हैं—चाहे वे ज़िद्दी, गुस्सैल, आकर्षक, प्यार करने वाले, आलसी, मेहनती, हुक्म चलाने वाले, डटे रहने वाले, वफ़ादार, अच्छे व्यवहार वाले, निराशावादी, सपने देखने वाले/कलाकार, सतही, शांत, प्रयोग करने वाले, डरपोक/साहसी, बातूनी/कम बोलने वाले, या कुछ और बनें। व्यक्तित्व उन गुणों और कमियों के आधार पर बनता है जो सामने आते हैं। जो बच्चे मार्गदर्शन सुनते हैं, वे अक्सर सोचते हैं कि माता-पिता के कहने पर किए गए कामों का क्या नतीजा निकला। आखिरकार, बच्चे फायदे और नुकसान को तौलना सीखते हैं, क्योंकि इसी तरह वे जीवन का अर्थ समझते हैं। कोई कितना भी सिखाए या सीखने के मौके दे, हालात पर प्रतिक्रिया देने की जन्मजात क्षमता अक्सर खून में होती है। जब दूसरों के मार्गदर्शन से इस जन्मजात क्षमता को निखारा जाता है तो खुशी मिलती है, लेकिन जब बच्चा खुद इसे खोजता है तो सीखना कहीं बेहतर होता है। क्या इसका मतलब यह है कि दूसरों से मार्गदर्शन की ज़रूरत नहीं है? बिल्कुल नहीं; ऐसा मार्गदर्शन बस समय और संदर्भ से बंधा होता है। इसलिए, दूसरों की बात सुनकर अपने व्यक्तित्व को आकार देने में सक्षम होना चाहिए। हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि दूसरों को धोखा देना, उनका मज़ाक उड़ाना या उन पर हंसना जैसे गुण कैसे विकसित होते हैं। कभी-कभी ऐसी स्थिति पैदा होती है जब हालात की वजह से बच्चे और बड़े दोनों हंस सकते हैं; हालाँकि, गहरी संवेदनशीलता वाला व्यक्ति स्थिति की गंभीरता और बारीकियों को समझता है। सिर्फ़ संवेदनशीलता ही काफी नहीं है; सही-गलत को पहचानने और निर्णय लेने की क्षमता की भी ज़रूरत होती है। यह ज़रूरी नहीं है कि यह समझ केवल बहुत ज़्यादा अनुभव से ही आए; यह समझने की क्षमता पर भी निर्भर करता है। माता-पिता का यह चाहना और उसके लिए कोशिश करना स्वाभाविक है कि उनके बच्चे शानदार और बुद्धिमान बनें और दुनिया में नाम कमाएँ; फिर भी, अगर हम दूसरे बच्चों के नज़रिए और भावनाओं पर भी विचार करें, तो हम बेहतर सामाजिक संतुलन बना सकते हैं और समाज की भलाई में असरदार ढंग से योगदान दे सकते हैं। क्या बच्चों को दिमागी विकास बढ़ाने वाला खाना खिलाने और उन्हें वह खाना देने के बीच संतुलन बनाना ज़रूरी नहीं है जो उन्हें वास्तव में पसंद

है? जब माता-पिता सोचते हैं कि बच्चे को समझाने के लिए क्या किया जाए, तो अक्सर उन पर स्थिति को हाथ से निकलने देने का आरोप लगाया जाता है। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता। बच्चा एक व्यक्ति और समाज का सदस्य होता है; इसलिए, अगर कोई बच्चा अलग लगता है, तो बच्चे का खुद को समझना उतना ही ज़रूरी है जितना माता-पिता का उसे समझना। कई माता-पिता शिकायत करते हैं, "तुम हमें ऐसी शर्मनाक स्थितियों में डाल देते हो।" और सच में, ऐसी स्थितियाँ आती भी हैं। अगर बच्चों को एहसास हो कि उनके कामों से शर्मिंदगी हो रही है, तो उस गलती को दोहराना गलत है। हालाँकि, अगर वे किसी स्थिति के नतीजों को नहीं समझ पाते हैं, तो इसका मतलब बस इतना है कि उनमें अभी उन्हें समझने की क्षमता विकसित नहीं हुई है। क्या यह सोचना कि हमारा बच्चा दूसरों जैसा नहीं है, इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपने बच्चे के साथ होने का आनंद लेने का मौका गँवा रहे हैं? बच्चा घर में नई ज़िंदगी की खुशी लेकर आता है। रंग-रूप या खूबियों की परवाह किए बिना, जैसे ही बच्चा आता है, घर चहल-पहल और ऊर्जा से भर जाता है। फिर भी, बाद में वही बच्चा बोझ जैसा लगने लग सकता है। माता-पिता के तौर पर, हमारी असली परीक्षा तब शुरू होती है जब बच्चा हमारे खिलाफ बोलता है या हमारी बात मानने से इनकार कर देता है। जबकि हम चाहते हैं कि बच्चे में सभी गुण हों, क्या हम कभी खुद से पूछते हैं कि क्या *हम* सच में गुणी माता-पिता हैं? बेशक, बच्चे के व्यक्तित्व की कमियों को कम किया जाना चाहिए, लेकिन गुण ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें बच्चों को खुद समझना और अपनाना चाहिए। अगर दोस्तों की खुशहाल ज़िंदगी को देखकर मन बेचैन होता है, तो इसका मतलब है कि किसी ने अभी तक सच्ची दोस्ती नहीं पाई है; क्योंकि जहाँ दोस्ती में प्यार और शांति की कमी होती है, वहाँ चरित्र की ज़रूरी गहराई नहीं बन पाती। और यह बात सिर्फ दोस्ती पर ही लागू नहीं होती। बेचैन मन की असली वजह को समझना, अपने आप में सीखने की एक प्रक्रिया है। व्यक्तित्व कई तरह से विकसित होता है—कभी-कभी खास बातों या सीखों के ज़रिए मन को सोच-समझकर ढालने से, और कभी-कभी मन की अपनी समझ और उन चीज़ों के एहसास से जिन्हें वह याद करता है या महसूस करता है। इस प्रक्रिया में, किसी व्यक्ति के अंदर अंदरूनी कमियाँ पैदा होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता; इन कमियों की पहचान करना भी ज़रूरी है। समाज में दूसरों की कमियाँ निकालने से कोई खास फायदा नहीं होता। कहा जाता है कि एक समय था जब किसी विषय पर खुलकर आलोचना आम बात थी, फिर भी ऐसी आलोचना सही समय पर और किसी व्यक्ति के जीवन को बेहतर बनाने

के मकसद से की जाती थी। जब सीधे तौर पर व्यक्तिगत संपर्क संभव नहीं होता था, तब अख़बार इस बातचीत का ज़रिया बनते थे। असल में, हम उम्र, अनुभव और ओहदे में हमसे बड़े लोगों को व्यक्तित्व विकास पर सलाह देने का दावा नहीं कर सकते; इसके बजाय, हम उनसे खुलकर बातचीत कर सकते हैं। बच्चों में एक बेहतर और सर्वांगीण व्यक्तित्व विकसित करने की कोशिश ज़रूर करनी चाहिए, क्योंकि उम्र बढ़ने के साथ-साथ चरित्र को आकार देना कभी-कभी काफ़ी नहीं होता। जैसा कि कहावत है, "खुद को इतनी ऊँचाई तक ले जाओ कि ईश्वर स्वयं तुमसे पूछें, 'बताओ, तुम्हारी इच्छा क्या है?'" तो फिर, ऐसे व्यक्तित्व का उद्देश्य क्या है?

मुलांचे व्यक्तिमत्त्व आपण घडवितो, तसे प्रयत्न करतो, हट्टी रागीट, लोभस, प्रेमळ, आळशी, उद्योगी, कुरघोडी करणारे, प्रयत्नवादी/जिद्दी, श्रध्दाळू, सुशील, निराशावादी, स्वप्नाळू/कलावंत, घायकूता/उथळ, संयमी, प्रयोगशील, भित्रा/धाडसी, बडबडे/गप्प राहणारे वगैरे. जितके गुण दिसतात किंवा जितके दोष दिसतात तसे व्यक्तिमत्व आकाराला येते. जी मुले ऐकून घेतात, त्यांनाही वाटते, मी पालकांचे अमूक ऐकले म्हणून अमूक घडले. मुले शेवटी फायदा तोट्याचे गणित शिकणारे होतात. कारण जीवनाचा अर्थ ते तसा शिकतात. कितीही शिकवले/शिकण्याची संधी दिली तरी परिस्थितीला प्रतिसाद देण्याची क्षमता रक्तात असते. ती अंगभूत क्षमता इतरांच्या सांगणूकीने जेव्हा घडते त्यात आनंद असतो. पण जेव्हा ती स्वतः शिकतो तेव्हा ती जास्त चांगली असते. याचा अर्थ इतरांची शिकवणूकच नको का? तर ती स्थल, काल मर्यादीत असते. म्हणून इतरांचे ऐकून आपल्याला आपले व्यक्तिमत्त्व घडवता आले पाहिजे. दुसऱ्याला फसवणारे, दुसऱ्याची टर उडवणारे, दुसऱ्याला हसणारे, वगैरे भाग व सांगता कसे विकसित होतात हे आपण लक्षात घ्यावे. एखादा प्रसंगच असा असतो की लहान थोरांना परिस्थितीवश हसू येते. पण ज्यांची संवेदनशीलताच उत्कट आहे त्याला परिस्थितीतले गांभीर्य, तरतम हे लक्षात येते. केवळ संवेदनशीलता उत्कट असून चालत नाही तर तारतम्य पण असावे लागते. खूप अनूभव घेतला की हे निर्माण होते असेही काही नाही. ते समजशक्तीवर पण अवलंबून असते. आपली मुले छान, बुध्दीमान, आणि जगात चमकणारी असावी असे पालकांना वाटणे आणि तसा ते प्रयत्न करणे स्वाभाविक आहे, पण इतर मुलांना जाणवणाऱ्या गोष्टींचा पण विचार झाला तर सामाजिक समतोल किंवा समाजकल्याण विभाग चांगले काम करू शकतो. मुलांची समजशक्ती वाढावी म्हणून विविध खाद्यपदार्थ खायला घालणे आणि मुलांना आवडते ते खायला देणे याचा तोल सांभाळणे गरजेचे नाही का? काय केले की समजेल असे

जेव्हा पालकांना वाटते तेव्हा परिस्थिती त्यांनीच हाताबाहेर जाऊ दिली आहे असा पालकांवर आरोप होतो. पण तसे नसते. मूल हे एक व्यक्तिमत्त्व आणि एक समाजाचा घटक आहे. म्हणून एखादे मूल वेगळे वाटले तर पालकांइतकेच त्या मुलाने स्वतःला समजणे आवश्यक आहे. अनेक पालक म्हणतात, तुझ्यामूळे किती अपमानास्पद परिस्थिती येते. खरच होते तसे. मुलांनी अपमान होईल असे जाणले तर ती चूक आहे. पण परिस्थितीचे परिणाम समजलेच नाही, तर तशी कूवत त्यांच्यात निर्माण नाही झाली. दुसऱ्यासारखे आपले मूल नाही असे वाटणे म्हणजे आपल्या मुलांचा आनंद घेण्याची क्षमता पण आपण दवडणेच नाही का? घरात मूल येते ते अपत्य जन्माचा आनंद देऊनच. रंग कोणताही असो, मूल घरात आले की घर गजबजून जातं. नंतर हेच मूल एक ताप वाटतं. आपल्याविषयी थोडं काही बोललं, आपले ऐकले नाही वगैरे की पालक म्हणून आपली परीक्षा सुरु असते. सर्व गुणसंपन्न मूल हवे असतांनाच सर्व गुणसंपन्न पालक आपण आहोत का, हे आपण कधी स्वतःला विचारतो? मुलांच्या व्यक्तीमत्वातले दोष जरूर कमी व्हावेत. पण गुण हे मुलांनी समजून घेऊन स्वतः वाढवायचे असतात. गुण हे मुलांनी समजून घेऊन स्वतः वाढवायचे असतात. आपले मित्र, मैत्रिणी किती ऱ्पन्न जीवन जगत आहेत हे समजून चित्त शांत नसेल तर अजून आपल्याला मित्र, मैत्रिणी नाहीत असेच समजावे. कारण जिथे मैत्रीत प्रेम आणि शांतता नाही तर तसे व्यक्तिमत्व अजून निर्माण झाले नाही. आणि ही गोष्ट फक्त मैत्री संदर्भातच नसते. कोणत्या कारणास्तव चित्त शांत नाही हे समजणे हा पण अभ्यास आहे. मनाला अमूक एक गोष्ट देऊन त्याला घडवले असे असणे आणि मनाला अमूक एक गोष्ट आठवली, समजली म्हणून ते घडणे, अशा विविध पध्दतीने व्यक्तीमत्व विकास घडतो. असे करतांना व्यक्ती अंतर्गत दोष निर्माण होण्याची शक्यता नाकारता येत नाही. ती ओळखणे ही सुद्धा आवश्यकता आहे. समाजात आपण नावे ठेवण्याची कामगिरी करून तसे काही फारसे साध्य करत नाही. असे ऐकीवात आहे, की एक काळ होता जेव्हा एखाद्या विषयावर उघड टिका होत असे पण ती टिका समयोचित आणि व्यक्तीचे जीवन संपन्न होण्यासाठी होत असे. जिथे वैयक्तिक संपर्क शक्य नाही, तिथे वर्तमानपत्र हा आधार होता. खरे तर समाजातील वयाने, अनूभवाने आणि सर्वाथाने मोठ्या व्यक्तींना व्यक्तिमत्त्व घडण्याचे सल्ले आपण देऊ नाही शकत. जर असे असेल तर आपण त्यांच्याशी त्यांच्याबरोबर उघड चर्चा करू शकतो. मुलांचे व्यक्तिमत्त्व सुजाण, संपन्न घडण्यासाठी त्यांनी जरूर प्रयत्न करावेत. कारण वाढलेले वय कधी कधी व्यक्तीमत्वाला आकार द्यायला कमी पडू शकते. कोणीतरी म्हटले आहे

खुद को करो बुलंद इतना खुदा बंदेसे पुछे, बोल तेरी रझा क्या है? असे व्यक्तिमत्व कशासाठी?

०६/०४/२६

हम जीवन कब जिएंगे?

पाबंदियाँ दमनकारी और अवांछित लगती हैं। कुछ वयस्क विभिन्न कारणों से पाबंदियाँ लगाते हैं। यदि वे स्वयं कारण जानते हैं, तो ठीक है, लेकिन यदि वे कारण नहीं जानते, तो कारण जानना या पता लगाना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि युवा पीढ़ी स्वाभाविक रूप से पाबंदियों को नापसंद करती है। दबाव या अन्य कारणों से भी पाबंदियाँ लगाई जाएँ, तो वे विद्रोह करते हैं। लेकिन यदि वे कारण समझ लें, तो वे कभी ऐसा व्यवहार नहीं करते। दूसरों को सफल होते देखना स्वाभाविक प्रेरणा है और हमें भी ऐसा ही जीवन जीना चाहिए। जिन घरों में माता-पिता समझदार होते हैं, वे कभी ऐसा व्यवहार नहीं करते। वे जीवन का अर्थ समझते हैं। वे थोड़ा-बहुत जानते हैं कि बच्चों को कहाँ स्वतंत्रता देनी है और कहाँ पाबंदियाँ लगानी हैं। यह ज़रूरी नहीं कि वे पूरी तरह से समझें। छोटे बच्चे सोचते हैं, वे जीवन कब जिएँगे? लेकिन जिन लोगों ने जीवन के कई बुरे अनुभव देखे हैं, वे उन्हें जीवन के असली अर्थ का उत्तर बता देते हैं। स्वतंत्रता एक ऐसी चीज है जिसका एक बार अनुभव हो जाए, तो आप उसे बार-बार पाना चाहते हैं। यही बात हर चीज पर लागू होती है। जो व्यक्ति स्वतंत्रता और बंधनों की सही समझ के साथ जीता है, वह कभी यह सवाल नहीं करता कि वह कब जिएगा। क्योंकि उसे लगता है कि वह मरने वाला है। व्यवहार में गलतियों और अपरिपक्व उम्र के कारण, जीवन अक्सर अर्थहीन लगता है। जीवन का अर्थ खोजने में समय लगता है। और एक बार मिल जाने पर, उसे जीना आसान नहीं होता। तो फिर इतने सारे सिद्धांत क्यों? अक्सर तो ऐसे सिद्धांतों के बारे में किसी को पता भी नहीं होता, इसीलिए। जब भी आपके मन में यह सवाल उठे कि आप कब जिएंगे? पहले अपने सवालों को समझें, आपको जवाब मिल जाएंगे, उस दिन जिएं जिस दिन आप उन्हें जी सकते हैं।

०७/०४/२६

क्या यही जीवन है?

किसी के कितने बच्चे हैं? उनकी लव लाइफ़ में क्या नया हो रहा है? वे भौगोलिक रूप से कहाँ रहते हैं? ऐसी बातें सिर्फ़ उत्सुकता में जानना और आधिकारिक तौर पर जानना—इन दोनों में बहुत फ़र्क है। अगर दुनिया में खाने-पीने जितनी ही कोई ज़रूरी चीज़ है, तो वह है किसी की लव लाइफ़। बहुत से लोग मानते हैं कि यही वह चीज़ है जो

इंसान की गहरी भावनाओं को जगाती है—हालांकि इसके अपवाद भी हो सकते हैं। असल में, एक "आदर्श" ज़िंदगी शायद ही कभी सामने आती है, लेकिन लोगों की कल्पनाओं में बसने वाली रोमांटिक कहानियाँ अक्सर सामने आती हैं। और सच तो यह है कि प्यार खूबसूरत होता है। मेरी नज़र में, प्यार के किसी भी रूप को कमतर नहीं समझना चाहिए। क्या यह कहना गलत नहीं है कि "तुम आदर्श राम की भूमिका निभाओ और मैं अफ़ेयर में उलझा रहूँ"? कोई दूसरा यह तय नहीं कर सकता कि किसी को आदर्शवाद अपनाना चाहिए या नहीं। फिर भी, ज़िंदगी में ऐसी बातें अक्सर सिर्फ़ उत्सुकता की वजह से उठती हैं। चाहे किसी के पास कितनी भी दौलत हो या दुनिया कितनी भी समृद्ध हो, बच्चों की संख्या—या उस दौलत के इस्तेमाल—का फ़ैसला पूरी तरह से निजी मामला होता है। भावनाएँ अक्सर बुद्धि पर हावी हो जाती हैं; इसीलिए आदर्श अक्सर सिर्फ़ थ्योरी बनकर रह जाते हैं—शायद सबके लिए नहीं, लेकिन कुछ मामलों में ज़रूर। आख़िरकार, क्या साथ-साथ रहना ही ज़िंदगी का सार नहीं है? क्या बिना सोचे-समझे दोहराव का चक्र—"बीते हुए कल के नक्शेकदम पर चलना"—सच में जीना है? इस सवाल के महत्व को समझना ज़रूरी है। हम अच्छी बातचीत और मज़ेदार फ़िल्मों का आनंद लेते हैं, फिर भी हम अक्सर यह नहीं समझ पाते कि ऐसी चीज़ों का बड़ों पर भी कितना गहरा और स्थायी असर पड़ सकता है। इसीलिए सिर्फ़ बातें करना छोड़कर असलियत में जीना शुरू करना बहुत ज़रूरी है। हम अक्सर असलियत को नकारात्मक रूप से देखते हैं क्योंकि हमें समझ की कमी होती है—या शायद इसलिए कि हम समझना ही नहीं चाहते। आख़िरकार, या तो किसी को दूसरों को जवाब देना पड़ता है या खुद के लिए जवाब ढूँढ़ना पड़ता है। "क्या यही सच में जीना है?"—इस सवाल का जवाब वही व्यक्ति दे सकता है जो इसे पूछता है और इसे महसूस करता है। सब कुछ एकतरफ़ा कोशिश पर निर्भर नहीं करता; सामूहिक ताकत मायने रखती है—हर क्षेत्र में। फिर भी, ऐसे पल आते हैं जब इंसान सोचने लगता है, "यह क्या है?" क्या ज़िंदगी का मतलब यही है? सामाजिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो लोगों को अपनी ज़िंदगी की चुनौतियों का सामना करने और एक सार्थक जीवन जीने में मदद करे। जो लोग बड़े सपने देखते हैं—और जिनके सपने खूबसूरत होते हैं—मैं उन्हें उन सपनों को सच करने के लिए शुभकामनाएँ देता हूँ! जो लोग ज़िंदगी के हर पहलू में सवालों से जूझते हैं, उनके लिए समाधान सच्ची कोशिश और प्रार्थना के मेल में है। खुद बनाई गई एक साधारण सी झोपड़ी की खूबसूरती पर ध्यान देना, चटपटी गपशप में उलझने से कहीं बेहतर है, है ना? आदर्श प्यार ज़िंदगी के

लिए प्रेरणा का काम करता है। वहीं, चटपटी गपशप पुरुषों और महिलाओं, दोनों की ऊर्जा खत्म कर देती है। मुझे लगता है कि समाज में इस बात की जागरूकता की कमी है, क्योंकि जब भी लोग इकट्ठा होते हैं, ऐसी बातें ज़रूर होती हैं। अगर मकसद ज्ञान पाना है, तो क्या "होम मिनिस्टर" जैसे शानदार प्रोग्राम मौजूद नहीं हैं? इसमें प्यार के बारे में बातचीत का विषय भी शामिल है। लेकिन क्या ज़िंदगी सिर्फ़ ऐसे अलग-अलग विषयों के प्रोग्राम तक ही सीमित है? क्या इस सवाल का कभी जवाब मिलेगा? अगर हम अपने बच्चों की ज़िंदगी को बेहतर बनाना चाहते हैं, तो चटपटी गपशप बंद होनी चाहिए और उन्हें सही तरह की जानकारी मिलनी चाहिए।

०८/०४/२६

पेंच

अच्छा काम चल रहा था। अच्छी चीज़ें आड़े आ गईं। मुसीबत शब्द हमारे कानों में अक्सर गूंजता है। हम मानते हैं कि हमने जो काम शुरू किया, वह किसी और की वजह से मुसीबत में पड़ गया। अक्सर, सबके लिए मददगार होने के बावजूद, हमें एहसास होता है कि किसी ने हमें धक्का दिया है। हम सोचते हैं, क्या हमने किसी को निराश किया? क्या हमने जानबूझकर किसी को चोट पहुंचाई, क्या हमारी वजह से किसी को नुकसान हुआ? व्यापार में भी यही बात लागू होती है। एक तरफ, जब हम कोई व्यवसाय शुरू करते हैं, तो हम कहीं न कहीं से मदद लेते हैं। अपवाद हो सकते हैं। लेकिन मैं सिर्फ साधारण बातों की बात कर रहा हूं। यह मदद देते समय, कुछ अपेक्षाएं होती हैं। अगर काम समय पर पूरा हो जाता है, तो ठीक है। अन्यथा, बैठक वहीं खत्म हो जाती है और नया व्यवसाय शुरू हो जाता है। अगर वहां भी अपेक्षाएं पूरी हो जाती हैं, तो ठीक है, अन्यथा फिर से समस्या खड़ी हो जाती है। हम अक्सर महसूस करते हैं कि दूसरे तय करते हैं कि हमें कितना विकास करना चाहिए। यह सच हो सकता है। लेकिन अगर हमारी राय/विचार सही हैं, तो यह विश्वास कि सही चीज़ होगी, बहुत महत्वपूर्ण है। हम लगातार सोचते रहते हैं कि मैं कितना असफल या कितना सफल हूं। या मुझे लगातार बाधाओं का सामना क्यों करना पड़ता है? मुझे ऐसा क्यों लगता है कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हो रही है? हमारी भावनाएँ अक्सर अस्पष्ट और धुंधली होती हैं। ऐसे समय में, मुझे दादा-दादी और नाती-पोतों के बीच का रिश्ता या अच्छे शिक्षकों और छात्रों के बीच का रिश्ता याद आता है। जब कई साल बीत जाते हैं या हम विचारों में बहुत डूबे होते हैं, तो हमारे चेहरे धुंधले पड़ जाते हैं, लेकिन धीरे-धीरे हमें याद आने लगता है। जीवन के उतार-चढ़ाव में किसी के साथ जो दुश्मनी होती है,

वह जीवन के बुरे समय में महसूस होती है, और इसके कारणों को हम खुद का विश्लेषण करके समझ सकते हैं। लेकिन यह सोचना दुर्लभ है कि मेरी सारी समस्याओं की जड़ मेरे भीतर ही छिपी है। हम दूसरों की कहानियाँ पढ़ते हुए जीते हैं कि उन्होंने हमारा साथ नहीं दिया, मदद नहीं की, शिक्षा नहीं दी, और दूसरों ने क्या नहीं किया या क्या नहीं दिया। जिस दिन यह सब बंद होगा, शायद उस दिन से जीवन थोड़ा शुरू होगा। मुझे लगता है कि यह हर पेशेवर के लिए सच है। जब हम हर दिन उठते हैं और काम करते हैं, तो हमें लगता है कि हम अपने काम में रम गए हैं। लेकिन हमें यह नहीं दिखता कि बाधा कहाँ है। जब हम जीविका के लिए कोई काम करते हैं और स्थिति को संभालते हैं, तो हम समझते हैं कि बाधा स्पष्ट नहीं है। हम इसे महसूस करते हैं लेकिन खुद पर विश्वास नहीं करते। यह आत्मविश्वास कहाँ से आता है कि मैं यह कर सकता हूँ? रस्सी बल से नहीं बांधी जाती। व्यापार में पूरी तरह असफल व्यक्ति मानो फंस गया हो। उसे इसके कारणों का पता लगाना चाहिए...

०९/०४/२६

मैं आपको आपके गुणों के बारे में बताता हूँ।

भक्त भगवान से कहता है, "अपने अस्तित्व के लिए नहीं, बल्कि मैं आपको देखने के लिए तरसता हूँ। लेकिन आप कहीं दिखाई नहीं देते। देखिए, मेरी आत्मा थक गई है, मैं स्वयं को भूल जाता हूँ। लेकिन आप मुझे याद रखते हैं। आप मेरी मुक्ति की चिंता करते हैं। है ना? तब आप मुझे संत के रूप में प्रकट होते हैं। कभी मैं अपनी क्षमता के अनुसार आपकी पूजा करता हूँ, कभी लापरवाही से काम लेता हूँ, कभी आपको पूरी तरह भूल जाता हूँ। आपका रूप निराकार है, लेकिन मुझे इस बात का भी ज्ञान नहीं है कि आप गुणों से रहित नहीं हैं। आपका यह रूप ही मेरी स्मृति और आपकी पहचान है। हे भगवान, मैं दुःख में, जब मुझे कुछ चाहिए होता है, तब आपको क्यों याद करता हूँ? आप जो सुख देते हैं, उसमें मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ? यद्यपि आप निराकार हैं, फिर भी मैं जानता हूँ कि आप अद्वैत हैं। आपका अस्तित्व एक है। और मैं इसे समझता हूँ। इस निराकार रूप को देखकर, मैं आपका पूर्ण रूप देखूँगा। आप निराकार हैं, लेकिन आप गुणों से रहित नहीं हैं। इसलिए आप ही वह हैं जिनके पास रूप और गुण हैं, लेकिन आप ही उनसे अधिक प्रेम करते हैं जिनमें इनकी कमी है। भगवान की खोज केवल एकांत में ही होती है। तभी हम किसी चीज की खोज करते हैं।" अप्राप्य। कभी-कभी हम अपनी ही खुशी में डूबे रहते हैं। हम खुशी की तलाश में रहते हैं। उनकी

कृपा सभी रूपों में बनी रहे। भक्त कहता है, “भगवान का यह उपहार, आप कभी न भूलें।” भले ही मैं भूल जाऊं, आप सदा मेरे साथ हैं, ताकि मैं अपने मार्ग से न भटकूं।

***** समाप्त *****

sjeet